महिलाओं से

[नारी-जीवन की समस्याओं का विवेचन]

लेखक—

महात्मा गांधी

प्रकाशक—

श्री गान्धी ग्रन्थागार

सी ७/१४० सेनपुरा

बनारस

महत्वपूर्ण सम्मति

श्री गाधी ग्रन्थागार के संस्थापक श्री रमाशकरलाल श्रीवास्तव '(वशारद' महात्मा गाधी जी के व्यक्त विचारो का संग्रह कर बड़ा ही उपयोगी और प्रशंसनीय काम कर रहे हैं। वर्तमान भारत के महात्मा जो युगकर्त्ता कहे जा सकते हैं और उनकी छाप राष्ट्र के सभी अङ्गो पर पडी है। श्री रमाशंकरलाल जी ने ऐसा प्रबन्ध किया है कि देश के एक एक समूह के प्रति गाधी जी के क्या आदेश और उपदेश हैं, उसे पृथक-पृथक ग्रन्थो मे सग्रह किया जाय। हमारे सामने ग्रन्थमाला का प्रथम खण्ड है, जिसमे विद्या-र्थियो के प्रति महात्माजी के सन्देशो का संग्रह है। अवश्य ही प्रकाशक ने बड़े परिश्रम से भिन्न-भिन्न स्थानो से खोज कर इन लेखो और वक्तव्यो को एकत्र किया है। इसमे कोई सन्देह नही है कि इन सब अमूल्य शब्दो को दोहरा कर पढ़ने और मनन करने से हम सब का लाभ होगा। जैसी स्थिति इस समय देश की हो गई है और जैसी गलत-फहमियाँ फैलाई जा रही हैं, उनमे ऐसे ग्रन्थों का विशेप मूल्य और इनके अध्ययन की विशेप आवश्यकता है।

श्री प्रकाश बी० ए० एल-एल० बी० (कैंटब)
बार-ऐट-लॉ, एम० एल० ए० (सेंट्रल)

दो शब्द

महात्मा गान्धी की ७४वीं वर्षगाँठ के अवसर पर सेंट्रल जेल बनारस मे एकत्र भिन्न-भिन्न जगहों के नजरबन्द काँग्रेस-कार्यकर्त्ताओ ने सर्व-सम्मति से यह प्रस्ताव पास किया कि जिस तरह महात्मा जी के लेखो एवम् वक्तव्यो का सग्रह अग्रेजी में "गान्धी सीरीज" के नाम से प्रकाशित हुआ है उसी तरह उनकी कृतियों का हिन्दी अनुवाद भी "गान्धी ग्रन्थावली" के नाम से प्रकाशित कराया जाय। जिससे गान्धी-विचार के सम्बन्ध में फैली हुई गलतफहमियाँ दूर हों और सर्वसाधारण को गान्धी-साहित्य सुलभ मूल्य मे एक ही जगह से मिलता रहे।

निर्धारित योजना के अनुसार गान्धी जी की सारी कृतियों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। ग्रन्थावली का पहिला खण्ड 'विद्यार्थियो से' प्रकाशित हो चुका है, और थोडे ही समय में इसकी कई हजार प्रतियाँ बिक चुकी हैं। दूसरा खण्ड 'महिलाओ से' आपके हाथ में है।

बन्धुओ ! जीवन मे अध्ययन का स्थान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। पर अध्ययन होना चाहिए उन पुस्तकों का, जो प्रकाशक के आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं वरन् मानव जाति के उत्थान में सहायक होने की दृष्टि से निकाली जाती हैं। गान्धी भारत के युगकर्त्ता और महान विचारक हैं। उनकी कृतियाँ जीवन-युद्ध में अग्रसर होने के लिये प्रकाशस्तम्भ का काम देगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

श्री गाधी ग्रन्थागार
पुरास सोनवानी
बलिया
सन्० १९४३ ई०

संचालक.—
रमाशंकर

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

महिलाओं से

हिन्दू पत्नी

नीचे एक भाई के लम्बे पत्र का सारांश दे रहा हूँ, जिसमें उन्होंने अपने विवाहिता बहन के दुःख का वर्णन किया है —

"थोड़े समय पहले मेरी बहन का विवाह एक ऐसे व्यक्ति के साथ हो गया, जिसके चारित्र्य से हम अनजान थे। वह व्यक्ति बाद में इतना लम्पट और विषयी साबित हुआ है कि अनन्त व्यभिचार और विषय भोग करते हुए भी उसकी वासना तृप्त नहीं होती। मेरी अभागिन बहन को विवाह के बाद शीघ्र ही पता चला कि उसके 'स्वामी' दिन दिन निर्बल होते चले जा रहे हैं, उसने उन्हें समझाया। लेकिन वह इसके इस औद्धत्य को सह न सके और उसे 'सबक सिखाने' की गरज से उसके सामने ही व्यभिचार करने लगे। वह उसे बेतों से मारते, खड़ी रखते, औंधी टाँगते और भूखों मरने को विवश करते हैं। एक बार अपने 'स्वामी' की व्यभिचार लीला का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए बहन एक खम्भे से बाँध दी गयी जिससे वह भाग न सके। मेरी बहन का

हृदय टूक टूक हो गया। उस की निराशा की हद नही। उसके सन्ताप को देख कर हमारा हृदय जल उठता है। लेकिन हम लाचार है। कृपा कर कहिये हम या हमारी बहन क्या करे ? हिन्दू धर्म की शर्म भरी अवस्था का एक चित्र है—उस हिन्दू धर्म में जिसमे स्त्रियो को न अधिकार प्राप्त है, न रियायते ही। अगर आदमी निर्दय और हृदयहीन है, तो बेचारी स्त्री का कोई सहारा इस दुनिया में नही। आदमी अपने जीवन मे चाहे जितना व्यभिचार करे, चाहे जितनी शादियाँ करे, कोई उसकी ओर अँगुली उठाने वाला नही। लेकिन स्त्री जहाँ एक बार व्याही गयी, उसे सर्वथा अपने स्वामी की दया का पात्र बनकर रहना पडता है। एक दो नहीं हजारो बहनें इस अन्याय का शिकार बनकर रात दिन आर्त स्वर से रोती कलपती रहती हैं। जब तक हिन्दू धर्म से ये और ऐसी ही अन्य बुराइयो का नाश नही होता, क्या उन्नति की आशा की जा सकती है ?"

पत्र लेखक एक सुशिक्षित व्यक्ति है। उन्होंने अपने सारे पत्र में अपने बहन के दु खों का रोमाञ्चकारी चित्र खींचा है। इस सारांश में वे सब सारी बाते नही आ सकतीं। पत्र लेखक ने अपना पूरा नाम और पता भी भेजा है। उन्होने हिन्दू धर्म की जो निन्दा की है, वह असीम दु ख वेदना का परिणाम होने से क्षम्य भले हो, किन्तु उनका यह सर्वव्यापी कथन उदाहरण के आधार पर खडा किया गया है, अत· अतिरञ्जित है। क्योंकि आज भी लाखों हिन्दू ललनाएँ अपनी गृहस्थी की रानी बनकर पूर्ण सन्तोष और सुख की जिन्दगी बिताती हैं।

अपने पतियों पर इतना प्रभुत्व प्रेम के कारण उन्हें प्राप्त होता है। पत्र लेखक ने निर्दयता का जो उदाहरण पेश किया है, वह हिन्दू धर्म की बुराई का चिन्ह नहीं, बल्कि मनुष्य स्वभाव में निहित उस बुराई का नमूना है जो किसी एक ही जाति या धर्म के मनुष्यों में नहीं पायी जाती, बल्कि सब जातियों और सब धर्मों के मनुष्यों में मिलती है? क्रूर पति के खिलाफ तलाक दे देने की प्रथा से भी उन स्त्रियों की रक्षा नहीं हुई है जो न तो अपना अधिकार जताना चाहती हैं। अतएव सुधारकों को चाहिये कि वे और नहीं तो सुधारों के खातिर ही अतिरंजन करने या अतिशयोक्ति से काम लेने से बाज आयें।

तथापि इस पत्र में जिस घटना का उल्लेख किया गया है वैसी घटना हिन्दू समाज के लिये सर्वथा असाधारण नहीं है। हिन्दू संस्कृति ने स्त्री को गुलाम बनाकर उसे पति के सर्वथा आधीन रखकर बड़ी भारी भूल की है! इसके कारण पति कभी कभी अपने अधिकार का दुरुपयोग करते हैं और पशुवत् व्यवहार करने पर उतारू हो जाते हैं। इस तरह के अत्याचार का उपाय कानून का आश्रय लेने में नहीं, बल्कि विवाहिता स्त्रियों को सच्चे अर्थ में सुशिक्षित बनाने और पतियों के अमानुषिक अत्याचार के विरुद्ध लोकमत जागृत करने में है। प्रस्तुत मामले में जिस उपाय से काम लेना चाहिए, वह अत्यन्त सरल है। इस संकटग्रस्त बहन के दुःख को देखकर रोने या अपने लाचारी का अनुभव करने के बजाय उसके भाई और दूसरे रिश्तेदारों को चाहिए कि वे उसकी रक्षा करें। उसे समझावें तथा विश्वास दिलावें कि एक

पापी दुराचारी पति की खुशामद करना या उसकी सँगति की आशा रखना उसका कर्तव्य नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है उसका पति उसकी जरा भी चिन्ता नही रखता, तनिक भी पर्वा नहीं करता। अतएव कानूनी बंधन को तोडे विना ही वह अपने पति से अलग रह सकती है और अपने आप यह अनुभव कर सकती है कि उसका व्याह कभी हुआ ही नही। अवश्य ही एक हिन्दू पत्नी के लिये जो तलाक नहीं दे सकती इस सम्बन्ध में कानून की रू से भी दो मार्ग खुले हैं—एक तो मारपीट करने के कारण पति को सजा दिलाने का और दूसरा उससे जीविका की सहायता पाने का। लेकिन अनुभव से मुझे पता चला है कि अगर सर्वदा नही तो बहुधा तो अवश्य ही यह उपाय निरर्थक से भी बुरा सिद्ध हुआ है। इसके कारण किसी की सती स्त्री को कभी सुख नहीं मिला, उलटे पति का सुधार असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य जरूर बन गया है। समाज को इस रास्ते कदापि न जाना चाहिए। पत्नी को तो किसी हालत में भी नही। प्रस्तुत मामले में तो लडकी के माता-पिता उसको निवाह लेने में समर्थ हैं। लेकिन जिन सताई हुई स्त्रियो को आश्रय प्राप्त न हो, उन्हें भी आश्रय देनेवाली अनेक संस्थाएँ देश मे दिन-दिन बढ रही हैं। एक और प्रश्न रह जाता है। ये युवती स्त्रियाँ जो अपने क्रूर पति का साथ छोड़कर अलग होती हैं या जिन्हें पति स्वयं घर से निकाल देते है। जो तलाक से मिलने वाली सुविधा नहीं प्राप्त कर सकती, अपनी विषयेच्छा को कैसे तृप्त करेंगी। मेरे विचार में यह कोई इतना गम्भीर प्रश्न नहीं है। क्योंकि जिस समाज ने युगों से तलाक

की प्रथा को त्याज्य मान रखा है उस समाज की स्त्रियाँ एक बार वैवाहिक जीवन का कटु अनुभव पा लेने पर दुबारा विवाह करना ही नहीं चाहती। जब किसी समाज का लोकमत इस तरह की सुविधा प्राप्त करना चाहता है तो मेरे विचार में वह उसे नि सन्देह मिल भी जाती है। पत्र लेखक के पत्र से जहाँ तक मैं समझ सका हूँ उनकी यह शिकायत तो नही है कि पत्नी अपनी विषयेच्छा तृप्त नही कर सकतीं। शिकायत तो पति की भयंकर और बेलगाम व्यभिचार की है जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ। मनोवृत्ति को पलट देना ही इसका उपाय है। हमारी अनेक और-और बुराइयों के समान ही बेबसी की भावना भी एक काल्पनिक बुराई है। दूषित कल्पना के कारण शोक और दु ख का साम्राज्य समाज में फैला हुआ है, वह थोड़े से मौलिक विचार और नये दृष्टिकोण के पाते ही नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। ऐसे मामलों में मित्रों और रिश्तेदारों को चाहिए कि वे अत्याचार के शिकार को शिकारी के पंजे से छुड़ा कर ही सन्तोष न कर बैठें। बल्कि ऐसी स्त्री को समझा कर उसे सार्वजनिक सेवा के योग्य बनाने का प्रयत्न करें। इन स्त्रियों के लिए इस तरह की शिक्षा पति के शंकास्पद सहवास से कहीं अधिक सुखद और लाभप्रद होगी।

एक महिला मित्र के प्रश्न

मेरी एक स्त्री मित्र ने जिन्हें मेरी बुद्धि और सत्यता पर कुछ विश्वास है, मुझसे पेचीदे प्रश्न किये है। मै इन प्रश्नो को इस भय से टाल जाना चाहता था कि उनके उत्तर से ऐसे पति क्रुद्ध होकर विवाद के लिये न उद्यत हो जॉय जो अपने अधिकारो के लिये सशकित रहा करते है। पर ऐसे सशकित पति मुझे क्षमा करेगे क्योकि वे जानते है कि मुझ में और मेरी स्त्री मे कभी कभी खटपट होते हुए भी स्वयं विवाहित जीवन के चालीस वर्ष सुख से व्यतीत किया है।

पहला प्रश्न

पहिला प्रश्न उपयुक्त और समयानुकूल है (वास्तविक प्रश्न मराठी भाषा मे है और मैने उसका स्वतन्त्र रूप से अनुवाद कर दिया है)।

"क्या किसी स्त्री अथवा पुरुष को केवल रामनाम कहने से ही और बिना राष्ट्र सेवा किये ही आत्मज्ञान हो सकता है ? मै यह प्रश्न इसलिये करती हूँ कि कुछ बहिनों की धारणा है कि उन्हें घरबार के काम करने और कभी-कभी गरीबो की सहायता करने के अतिरिक्त और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।"

इस प्रश्न ने केवल स्त्रियो को ही नहीं बल्कि बहुत से पुरुषो को भी उलझन में डाल रक्खा है और मेरे लिये तो भार स्वरूप हो ही गया है। मेरा दर्शन-शास्त्र के उस वाद के अनुयायियों से भी परिचय है जो निष्क्रियता और समस्त प्रयत्नों की निष्फलता की शिक्षा देता है।

मैं इस मत से उस समय तक सहमत नहीं हो सकता जब तक कि मैं स्वयं इसका विश्लेषण न कर सकूँ। मेरे विचार से उन्नति करने के लिये प्रयत्नशील होना आवश्यक है और यह प्रयत्न यह सोच कर ही न किया जाय कि उसका परिमाण लाभदायक ही होगा। 'रामनाम' अथवा इसी प्रकार का कोई नाम आवश्यक है, जपने के लिये नहीं बल्कि आत्मशुद्धि के लिये जिससे आपके प्रयत्न में सहायता मिले और आप यह अनुभव करें कि आप कोई पथ-प्रदर्शक हैं, अत. 'राम नाम' अथवा कोई अन्य नाम 'प्रयत्न' का स्थानापन्न कदापि नहीं हो सकता। वह तो आपको ठीक मार्ग बताने में तथा आपके साहस को बढ़ाने में सहायक हो सकता है। यदि सारा प्रयत्न निष्प्रयोजन ही है तो कुटुम्ब की चिन्ता और कभी-कभी गरीबों की सहायता ही से क्या लाभ? पर इसी प्रयत्न में ही राष्ट्र-सेवा के कीटाणु विद्यमान हैं और मेरे विचार से राष्ट्र-सेवा का अर्थ है—मानव-सेवा—कौटुम्बि-सेवा की ओर अधिक ध्यान न देना भी राष्ट्र-सेवा है। निःस्वार्थ कुटुम्ब-सेवा करने से मनुष्य राष्ट्र-सेवा की ओर प्रेरित होता है। 'राम-नाम' मनुष्य को विरक्त तथा दृढ़ बनाता है और कठिन परिस्थितियों में चित्त को डांवाडोल नहीं होने देता। मेरे विचार से सबसे अधिक गरीब की सेवा तथा अपने और उसके बीच कोई भेद मान कर मनुष्य को आत्मज्ञान हो सकता है, अथवा नहीं।

दूसरा प्रश्न

"हिन्दू धर्म के अनुसार सबसे महान आदर्श यह है कि स्त्री पूर्ण-

रूप से-पति भक्त और पति से सम्बद्ध हो चाहे पति प्रेम का अवतार हो अथवा पिशाच ही क्यों न हो। यदि पत्नी के सम्बन्ध मे यही चरित्र उत्तम माना जाय तो क्या पति की ओर से विरोध किये जाने पर भी पत्नी को राष्ट्र-सेवाकार्य करना चाहिये ? अथवा उतना ही करना चाहिये जितना करने के लिए पति उसे आज्ञा दे ?"

पति के सम्बन्ध मे मै राम को और पत्नी के सम्बन्ध में सीता को अपना आदर्श मानता हूँ। परन्तु सीता राम की दासी नही थी अथवा यूँ कहिये कि दोनो एक दूसरे के दास तथा दासी थे। राम ने सदैव सीता के विचारो का आदर किया। यदि प्रेम सच्चा है तो किया गया प्रश्न उठता ही नही और जहाँ सच्चा प्रेम नही है वहाँ पति-पत्नी का कोई बन्धन ही नही है। पर आजकल का हिन्दू कुटुम्ब एक पहेली के समान है पति तथा पत्नी का जब विवाह होता है, दोनो एक दूसरे के सम्बन्ध में कुछ नही जानते। प्रथा के द्वारा सुरक्षित धार्मिक स्वीकृति और विवाहित जीवन के भली प्रकार चलने के कारण अधिकांश हिन्दू घरो में शान्तिमय समय व्यतीत होता है। परन्तु यदि स्त्री अथवा पुरुष के विचार असाधारण हुए तो आपस मे खटपट होने की सम्भावना है। पति के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का सन्देह नही किया जाता। कर्तव्य के विचार से वह यह आवश्यक नहीं समझता कि अपनी पत्नी की इच्छाओ का भी उसे ध्यान रखना चाहिये, वह पत्नी को जिसे अपने पति के विचारो से ही सन्तुष्ट रहना पडता है प्राय अपनी इच्छाओं को दबाना पडता है। मेरे विचार से यह समस्या हल की जा सकती

है। मीराबाई ने हमें इसका हल बताया है। पत्नी को अपने विचारों के अनुसार चलने का पूर्ण अधिकार है और मृदुल बनकर तथा निर्भय होकर किसी भी परिणाम के लिये उद्यत रहना चाहिये जब कि उसे विश्वास हो कि उसका निश्चय न्याययुक्त है और वह एक उच्च अभिप्राय के लिये पति के सम्मुख अड़ गयी है।

तीसरा प्रश्न

यदि पति मांस भक्षी है और पत्नी मांस खाना पाप समझती है तो क्या पत्नी को अपने ही विचारों के आधार पर चलना चाहिये ?

क्या उसे प्रेमयुक्त उपायों से पति द्वारा मांसभक्षण अथवा इसी प्रकार के उसके अन्य कार्य छुड़ाना चाहिये ? अथवा क्या वह पति के लिये मांस पकाने के लिये बाध्य है या इससे भी पतित कार्य अर्थात यदि पति उसे मांस खाने के लिये कहे तो क्या वह मांस खाने के लिये बाध्य है ? यदि आप यह कहते हैं कि पत्नी का अपने विचारानुकूल चलना चाहिये तो एक सम्मिलित कुटुम्ब इस दशा में कैसे चल सकता है जब कि एक तो दूसरे को विवश करता है और दूसरा विरोध करता है ?

इस प्रश्न का आंशिक उत्तर दूसरे प्रश्नोत्तर में दिया जा चुका है। पत्नी अपने पति द्वारा किये अपराधों में सम्मिलित होने के लिये बाध्य नहीं है। यदि वह किसी कार्य को अनुचित समझती ही है तो उसे केवल उचित कार्य ही करना चाहिये। पर इस विचार से कि पत्नी का कार्य घर का प्रबन्ध करना है और भोजन बनाना है और पति का कर्त्तव्य परिवार के लिये धनोपार्जन है, और पति तथा पत्नी दोनों

जो स्त्री अपने पिता के परिवार पर गर्व करती है और अपने पति की आज्ञा का उलंघन करती है, राजा को चाहिये कि उसे बहुत से लोगों के सामने कुत्ते से नुचवाये। (मनु ८—३७१)

जो स्त्री अपने पति की आज्ञा का उलंघन करती है। उसके हाथ का खाना किसी को नही खाना चाहिये। ऐसी स्त्री को इन्द्रियलोलुप मानना चाहिये। (अङ्गिरस, ६६)

यदि पति दुराचारी हो अथवा मद्यप हो अथवा शारीरिक व्याधि से पीडित हो और पत्नी उसकी आज्ञाओ का उलंघन करे तो उसे तीन महीने तक अपने बहुमूल्य कपडों और गहनो से वचित रखना चाहिये। (मनु १०—७८)

यह सोचकर दु ख होता है कि स्मृतियो मे ऐसे श्लोक हैं, जिनपर उन पुरुषो की श्रद्धा नही हो सकती जो अपनी ही भाँति स्त्री की स्वाधीनता की कामना करते हैं और उसे समस्त जाति की माता मानते है। दु ख यह सोच कर और बढ जाता है कि सनातनियो की ओर से प्रकाशित होने वाले एक पत्र में ये श्लोक इस प्रकार छपे है जैसे वे धर्म के अङ्ग हो। स्वभावत· स्मृतियो में ऐसे श्लोक है जो स्त्री को उसका उचित स्थान प्रदान करते हैं। और उसे बडे आदर की दृष्टि से देखते हैं। प्रश्न उठता है कि उन स्मृतियों का क्या किया जाय, जिनमें ऐसे श्लोक है जो उसी में दिये हुए अन्य श्लोको के विपरीत और नैतिक भावना के विरुद्ध हैं। मैं इन पृष्ठों में अनेक बार लिख चुका हूँ कि धर्मग्रन्थों के नाम पर जो कुछ छपता है, उसमें सभी को ईश्वर की

वाणी अथवा देववाणी के रूप में नहीं लेना चाहिये। लेकिन हर कोई यह तय नहीं कर सकता कि कौन-सी बात अच्छी और प्रामाणिक है तथा कौन-सी बात बुरी है। इसलिये एक ऐसी अधिकारी संस्था की आवश्यकता है, जो धर्मग्रन्थों के नाम पर जो सब छपा है उसका संशोधन करे, ऐसे श्लोकों को छाँट दे जिनका नैतिक मूल्य नहीं है। और जो धर्म और नीति के विरुद्ध हैं। तथा ऐसा संस्करण हिन्दुओं के पथ-प्रदर्शन के लिये उपस्थित करे। यह विचार इस पवित्र कार्य के मार्ग में बाधक न होना चाहिये कि सर्व साधारण हिन्दू और धार्मिक नेता माने जाने वाले व्यक्ति ऐसी संस्था की बात प्रामाणिक नहीं मानेंगे। जो काम सचाई से और सेवा भाव से किया जायँगा, वह समय बीतने पर अपना प्रभाव डालेगा और निश्चय ही उन लोगों की सहायता करेगा जो इस प्रकार की सहायता बुरी तरह चाहते हैं।

स्त्री और वर्ण

"वर्ण का तात्पर्य अधिकारो अथवा विशेषाधिकारो का समूह नहीं है, यह केवल कर्तव्य और धर्म को निर्धारित करता है। वह स्त्री जो अपने कर्तव्य को जानती है और उसका पालन करती है, अपने उच्च पद का अनुभव करती है। वह घर की मालिक है, रानी है, दासी नही है।"

एक माननीय मित्र लिखते हैं

"वर्ण के सम्बन्ध में अभी हाल मे जो कुछ आपने लिखा उससे पता चलता है कि वर्ण के सिद्धान्त पर जो आपने थोडा प्रकाश डाला है वह केवल पुरुषो के लिये ही लागू होता है। तो फिर स्त्री के लिये क्या है ? किस बात से स्त्री का वर्ण निश्चित किया जायगा ? कदाचित् आप यह कहेंगे कि विवाह के पूर्व स्त्री का वही वर्ण होगा जो उसके पिता का होगा और विवाह के पश्चात् उसका वर्ण पति के समान होगा। तो क्या इसका यह तात्पर्य है कि आप मनु की कुप्रसिद्ध कहावत का समर्थन करते हैं कि स्त्री अपने जीवन में किसी भी समय स्वतन्त्र नहीं हो सकती, अर्थात् विवाह के पूर्व वह माता व पिता के रक्षण में, विवाहोपरान्त पति के रक्षण में और विधवा होने पर अपने बच्चों के रक्षण में रहे ?"

"जो कुछ भी हो पर यह सत्य है कि यह युग स्त्री की सम्मति लेने का है और नि सन्देह उसने स्वतन्त्र धन्धे की खोज के लिये पुरुष के

साथ बराबरी का पद ग्रहण कर लिया है। आजकल तो यह प्राय. देखा गया है कि स्त्री किसी स्कूल की अध्यापिका है और उसका पति लेन देन का रोजगार करता है। इन परिस्थितियों से स्त्री का वर्ण क्या होगा? वर्णमिश्र विभाजन के अनुसार पुरुष अपने माता-पिता के धन्धे को ही अपनायेगा, अत: उसका वर्ण माता पिता के समान होगा और इसी प्रकार स्त्री भी अपने माता-पिता के वर्ण को ही अपनायेगी, और उनसे आशा भी यही की जाती है कि विवाहोपरान्त भी वे अपने-अपने वर्णों अथवा धन्धों को नहीं छोड़ेंगे। उनके बच्चों का वर्ण क्या होगा? अथवा वर्ण का चुनाव बच्चे स्वयं स्वतन्त्र रूप से करेंगे? यदि ऐसा ही हो तो माता-पिता के वर्ण को अपनाने के सिद्धान्त का क्या होगा जिसका वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आप दावा करते हैं।'

आज कल की परिस्थियों से यह प्रश्न करना मेरे विचार से व्यर्थ है, जैसा कि मैने अपने लेख से बताया है आज कल वर्णों के सम्बन्ध में गड-बडी होने के कारण वास्तव में वर्ण है ही नही। वर्ण का सिद्धान्त चलता ही नहीं। आजकल का हिन्दू समाज अव्यवस्थित है और चारो वर्ण केवल नाम के ही हैं। यदि हम वर्ण के अनुसार विचार करें तो आज कल हर एक स्त्री अथवा पुरुष के लिए केवल एक ही वर्ण है, अर्थात् हम एक शूद्र हैं।

वर्ण धर्म के अंग पर जैसा कि मेरा विचार है, एक लड़की का वर्ण उसी प्रकार अपने पिता के समान होगा जिस प्रकार कि उसके भाई का। विभिन्न वर्णों के बीच विवाह बहुत कम होते हैं। अत. विवाहोपरान्त

की लडकी के वर्ण में कोई अन्तर नहीं होता। परन्तु यदि पति का वर्ण भिन्न हो तो विवाहोपरान्त पत्नी का वर्ण पति के समान हो जायगा और उसे पिता का वर्ण छोडना होगा। इस प्रकार वर्ण से बदलने से न तो किसी पर कलक ही और न तो किसी योग्यता पर ही सदेह होता है, क्योंकि इस नव जीवन के युग में वर्ण के अधार पर चारों वर्ण सामाजिक विचार से बराबर हैं।

मै इसे नियम के रूप में नहीं मानता कि पत्नी अपने पति से स्वतंत्र होकर अपना कोई धन्धा अपनायेगी। उसके लिए यही काफी है कि वह बचो को देख भाल करे और घर संभाले। सुव्यवस्थित समाज में परिवार चलाने का अतिरिक्त भार उन पर नही होना चाहिये। पुरुष का धम है कि वह गृहस्थी चलाये और स्री घर का प्रबन्ध करे और इस प्रकार दोनो एक दूसरे के कार्य में योग तथा सहायता देते रहेंगे।

इस प्रकार स्त्री के अधिकारो का न तो हनन होता है और न उसकी स्वतन्त्रता ही छीनी जाती है। मैं मनु के इस कथन से सहमत नही हूँ कि स्त्री 'स्वतन्त्र नहीं हो सकती।' इससे यही पता चलता है कि जिस समय उन्होंने यह नियम बनाया था, उस समय स्त्रियाँ पुरुषों के आधीन रक्खी जाती थीं। हमारे साहित्य मे पत्नी को अर्द्धांग और 'सहधर्मिणी' के नाम से सम्बोधित किया गया है। इसलिए यदि पति-पत्नी को देवी कह कर सम्बोधन करे तो कोई हँसी की बात नहीं है। परन्तु अभाग्यवश एक समय ऐसा आया जब कि स्त्री के बहुत से अधिकार छीन लिए गये और उसका पद नीचा कर दिया गया। परन्तु उसका वर्ण ज्यों का त्यों

रहा, क्योंकि वर्ण का तात्पर्य अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों का समूह नहीं है यह केवल कर्तव्य और धर्म को निर्धारित करता है। हमें कोई कर्तव्य-विहीन नहीं कर सकता जब तक हम स्वयं ऐसा न चाहें। वह स्त्री जो अपने कर्तव्य को जानती है। और उसका पालन करती है वही अपने उच्च पद का अनुभव करती है। वह घर की मालिक है, रानी है, दासी नहीं।

अब मुझे इस सम्बन्ध में कदाचित् अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मेरे कथनानुसार यदि समाज में स्त्री का उपरोक्त कर्तव्य माननीय है तो उसके बच्चों के वर्ण की समस्या का अन्त हो जाता है और उस दशा में पति अथवा पत्नी के वर्ण में कोई भेद नहीं रह जाता।

महिलाओं की स्थिति

एक मित्र जिन्होंने सफलतापूर्वक अभी तक विवाह की इच्छा का विरोध किया है, लिखते है :—

"कल मलाबारी हाल बम्बई मे महिलाओ की एक समिति की बैठक हुई जिसमे कई सुन्दर व्याख्यान दिये गये और कई प्रस्ताव पास किये गये। शाम के लिये शारदा-बिल का विषय निर्धारित था। हम लोग बहुत प्रसन्न है कि आप लडकियो के लिए १८ साल की अवस्था विवाह के लिए उपयुक्त समझते है। दूसरा महत्वपूर्ण विषय, जिस पर वाद-विवाद हुए, उत्तराधिकार के नियम थे। यदि आप 'नव जीवन' या 'यंग इण्डिया, मे इस विषय पर एक जोरदार लेख लिखते तो बडी ही सहायता मिलती। स्त्रियो को जन्मजात अधिकारो की प्राप्ति के लिए भीख माँगना या लडना क्यो पडे ? यह एक अजीब करुण और हास्यास्पद बात है कि स्त्रियो से ही उत्पन्न पुरुष उनके विषय मे ऊँची-ऊँची बातें करे और सज्जनता पूर्वक उनके लिये उचित भाग देने का वादा करे। यह देने की बात कितनी निरर्थक है ? किसी से छीनी गयी वस्तु को वापस देने मे कौन-सी वीरता और सज्जनता है ? किस विषय में स्त्रियाँ पुरुषो से कम है ? उनका उत्तराधिकार पुरुषो से कम क्यो हो ? दोनो का अधिकार समान क्यो न रहे ? दो दिन पहले हम कुछ लोगों के साथ इसी बात पर वाद-विवाद कर रहे थे। एक महिला ने कहा,—"हम लोग इस कानून मे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहती

और पूर्ण सन्तुष्ट हैं। यह बिलकुल उचित है कि लड़का जिसके पीछे पारिवारिक रीतियाँ और नाम चलते हैं उसे अधिक भाग मिलना चाहिये। वह परिवार का स्तम्भ है।" हम लोगों ने पूछा—और आपका लड़कियों के विषय में क्या विचार है, बीच ही में एक युवक बोल पड़े। ओह दूसरा उनकी देख-भाल करेगा" दूसरा! सदा दूसरा!! यह दूसरा व्यक्ति ही सारे झगड़ों की जड़ है। दूसरे की आवश्यकता ही क्यों हो? ऐसा क्यों मान लिया जाय कि कोई दूसरा रहेगा? लोग ऐसे बातें करते हैं जैसे लड़कियाँ कोई गट्ठर हों, जिनका भार किसी दूसरे पुरुष के मिलने तक उनके पिता का परिवार उठाए और जब वह मिल जाय, तो उसे छुटकारे की साँस के साथ सौंप दिया जाय। यदि आप लड़की होते, तो क्या सचमुच आपको इस बात पर क्रोध न आता।

पुरुष ने स्त्रियों के प्रति जो अत्याचार किये हैं उन पर क्रोध आने के लिये मुझे लड़की होने की आवश्यकता नहीं। मैं 'उत्तराधिकार' को स्त्रियों के लिये बहुत कम मानता हूँ। उत्तराधिकार से कहीं बड़ी बुराई का वर्णन शारदाबिल में है। लेकिन मैं स्त्रियों के अधिकारों के मामले में कोई सुलह नहीं करना चाहता। कानूनन उन्हें पुरुषों की अपेक्षा किसी प्रकार शक्तिहीन नहीं रखना चाहिये। मैं तो लड़कों और लड़कियों के साथ पूर्ण-समानता का व्यवहार करना चाहता हूँ। जैसे जैसे स्त्रियों को अपनी शक्ति का ज्ञान होता जायगा, (जैसा कि उनकी शिक्षा के अनुपात से अवश्य होगा) वे स्वयं जिस असमानता की दृष्टि से देखी जाती हैं, उससे घृणा करने लगेंगी।

किन्तु कानून की असमानता हटाना अपर्याप्त होगी। इस बुराई की जड़ जितना बहुत लोग समझते हैं, उससे कहीं गहरी है। वह मनुष्य के हृदय में शक्ति और समृद्धि के प्रति जो लालच की भावना है, उसमें तथा और नीचे पारस्परिक-वासना में है। मनुष्य ने सदा से शक्ति चाही है और सम्पत्ति पर उसका अधिकार होने से उसे शक्ति मिलती है। पुरुष अपनी मृत्यु के उपरान्त प्रसिद्धि भी चाहता है जो शक्ति पर निर्भर है। यदि सम्पत्ति उत्तरोत्तर टुकड़ों में बँटती जाय, (जैसा पुरुष और स्त्री के साथ समानता का व्यवहार करने पर अवश्य ही होगा) तो ऐसा नहीं हो सकता। इसीलिये सम्पत्ति उत्तराधिकार अधिकांश रूप से सबसे बड़े लड़के को मिलता है। बहुधा स्त्रियाँ विवाहित हैं और कानून के विरुद्ध होने पर भी वे अपने पति की शक्ति और सुविधाओं में भाग लेती हैं। वे अपने पति की पत्नी होने में ही गर्व मानती हैं। और यद्यपि वे असमानता के व्यवहार के विरुद्ध जहाँ कहीं वाद-विवाद होता है, आवाज उठाती हैं। जब कार्यरूप में परिणत करने का प्रश्न आयेगा, तो वे अपनी इन वर्तमान सुविधाओं को छोड़ने के लिये प्रस्तुत न होंगी।

अत. मैं चाहूँगा कि भारतीय शिक्षित महिलाएँ अनुचित कानूनों के विरोध के साथ साथ इस बुराई की जड़ को ही नष्ट करने की चेष्टा करें। स्त्री त्याग और सहन शीलता का अवतार है और सामाजिक जीवन में उसके आगमन का परिणाम समाज का परिणाम समाज का परिशोधन और सम्पत्ति संग्रह तथा असंयत आकांक्षाओं का दमन होना चाहिये। उन्हें ज्ञात होना चाहिये कि लाखों पुरुष ऐसे हैं जिनके पास

आने वाली पीढ़ी को देने के लिये कोई सम्पत्ति नहीं। उनसे हमें यह सीखना चाहिये कि पैत्रिक सम्पत्ति का न होना और अच्छा है। चरित्र और शिक्षा के लिये जो सुविधाएँ माता-पिता सन्तान को देते हैं, वही ऐसी सम्पत्ति है जो वे अपनी सन्तानों के बीच समान रूप से बाँट सकते हैं। माता-पिता को चाहिये कि वे बालक-बालिकाओं को स्वावलम्बी बनाएँ, जिससे वे अपने पसीने के बल से जीविका उपार्जन कर सकें। इस प्रकार छोटे बच्चों के पालन पोषण का भार स्वाभाविक रूप से बड़े बच्चों पर आएगा। अगर धनी लोग अपने बच्चों को खानदानी जायदाद के गुलाम बनाने की आकांक्षा की जगह पर ऐसी शिक्षा दें कि वे स्वतंत्र हो सकें, तो उनके बच्चों के स्वभाव से आडम्बर प्रियता जाती रहेगी। खानदान की जायदाद पर निर्भर रहने से उद्योग की प्रवृत्ति मर जाती है और ऐश्वर्य और आलस्य में पलने वाली कामनायें बल पाती हैं। जाग्रत महिलाओं का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे युगों पुरानी इस प्रथा का पता लगा कर नष्ट करने का प्रयत्न करें।

पारस्परिक वासना भी स्त्रियों के विकास को रोकने वाले कारणों में से रही हैं, इस विषय में उदाहरण की आवश्यकता नहीं। अज्ञात रूप से स्त्री ने पुरुष को कई प्रकार से अप्रत्यक्ष सूक्ष्म तरीकों से घेर रखा है और पुरुष ने उसी प्रकार अज्ञात रूप से स्त्री पर अधिकार जमाने की व्यर्थ चेष्टाएँ की हैं और इसके परिणाम स्वरूप दोनों के विकास में बाधा पड़ी है। इस प्रकार यह एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसके सुलझाने के लिये भारत माता की शिक्षित पुत्रियों की आवश्यकता है।

उन्हें पाश्चात्य ढङ्ग के अनुकरण की आवश्यकता नहीं, यह वहीं के लिये उचित है। उन्हें भारतीय वातावरण और भारतीय मेधावियो के अनुरूप ढङ्ग का उपभोग करना चाहिये। इनके हाथ बली, नियन्त्रणशील, शोधनकारी और दृढ होने चाहिये जिससे वे हमारी संस्कृति की अच्छी बातो को सुरक्षित रख सके और निकृष्ट तथा अधोशील को बिना संकोच अलग कर सके। यह सीता, द्रौपदी, सावित्री और दमयन्ती जैसी स्त्रियो का कार्य है, न कि पुरुषो की नकल करने वाली स्त्रियो का।

महिलाओं के प्रति व्यवहार

कटक की श्रीमती सरला देवी लिखती हैं—

"क्या आप ऐसा नहीं मानते कि हमारे यहां स्त्रियों के प्रति जो दुर्व्यवहार किया जाता है, वह उतना ही भयानक रोग है जितना अस्पृश्यता ? मैं जितने राष्ट्रीयतावादी युवकों के सम्पर्क में आयी हूँ, उनमें ६० प्रतिशत का दृष्टिकोण पाशविक है। भारतीय असहयोगियों में से कितने ऐसे हैं जो स्त्रियों को भोग विलास का साधन नहीं समझते ? क्या आत्मशुद्धि जो सफलता के लिए अनिवार्य है, बिना स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण मे कोई परिवर्तन किये सम्भव है ?"

मैं यह मानने में असमर्थ हूँ कि स्त्रियों के प्रति जो व्यवहार किया जाता है, अस्पृश्यता के बराबर ही भयानक रोग है। श्रीमती सरला देवी ने इस कुप्रथा के विषय मे अधिक बढ़ा कर कहा है। और न तो असहयोगियों के प्रति किया गया दोषारोपण ही माना जा सकता है। अतिशयोक्ति से किसी विषय का महत्व कम ही होता है। साथ ही मुझे यह स्वीकार करने मे कोई अड़चन नही कि पूर्ण-स्वराज प्राप्त करने के लिये पुरुषों के हृदय में स्त्रियों के लिए जो आदर पवित्रता की भावना है, उसे कहीं अधिक विकसित और परिष्कृत करना पड़ेगा। माननीय एंड्रूज, ने श्रीमती सरला देवी की अपेक्षा कहीं अधिक सत्य बात कही है "अपनी पतित बहनों की मानहानि पर दृष्टिपात करने का हमारा साहस नहीं होता" कोई भी असहयोगी बड़े जोश के साथ कहता हुआ यह पाया जा सकता है

कि कुमार्ग पर जानेवाली इन बहनों में से बहुतों ने अपने को असहयोग के लिये 'रिज़र्व' कर रखा था, यह हमारे लिये एक अपमान जनक बात है।

इस विषय में जो चारित्रिक संगठन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, सहयोगियों और असहयोगियों में कोई भेद नहीं हो सकता। हम पुरुषों को जब तक एक भी स्त्री हमारी वासना के वशीभूत रहे, लज्जा से अपना सिर नीचा किये रखना चाहिये। ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति को अपनी वासना का साधन बनाकर हम पशुओं से भी नीचे उतरें, इसकी अपेक्षा मैं पुरुष-जाति का सर्वनाश देखना चाहूँगा। किन्तु यह केवल भारतवर्ष ही का प्रश्न नहीं, बल्कि सारे संसार का प्रश्न है। और मैं इन्द्रिय सुख से पूर्ण आधुनिक कृत्रिम जीवन का विरोध करता हूँ और लोगों से प्राचीन सात्विक जीवन ग्रहण करने को कहता हूँ, (जिसका द्योतक चरखा है) क्योंकि मैं जानता हूँ कि बिना सादगी के हम अपनी इस पाशविक स्थिति से ऊपर नहीं उठ सकते। मैं अपनी महिलाओं के लिए अधिक से अधिक स्वाधीनता चाहता हूँ। बाल विवाह से मुझे घृणा है और विधवा बालिका को देख कर मैं काँपने लगता हूँ तथा स्त्री के देहान्त के पश्चात् तुरन्त विवाह करने वाले पुरुष को देखकर मैं क्रोध से पागल हो उठता हूँ। मैं ऐसे माता-पिता को जो अपनी बालिकाओं को बिल्कुल अशिक्षित रखते हैं और किसी धनाढ्य व्यक्ति के साथ विवाह करने के लिए उनका पालन पोषण करते हैं बड़ी नीची दृष्टि से देखता हूँ। किन्तु इस दुःख और क्रोध के साथ-साथ मैं इसकी

कठिनाइयों को भी अनुभव करता हूँ। स्त्रियों को वोट देने का अधिकार और कानूनी समानता अवश्य मिलनी चाहिये, परन्तु यह प्रश्न यहीं नहीं समाप्त होता। केवल यह वहाँ से प्रारम्भ होता है जहाँ स्त्रियाँ राष्ट्र के राजनीतिक निर्माण पर प्रभाव डालने लगती हैं।

मेरा क्या उद्देश्य है, इसके लिए मैं एक सज्जन मुसलमान मित्र के वाद विवाद को उद्धृत करूँगा जो उनके और के बीच हुआ था और जिसका वर्णन उन्होंने मुझसे बड़े सुन्दर रूप से किया था। वे स्त्रियों के समर्थकों की एक सभा में बैठे थे और उन्हें ऐसी जगह देख कर एक महिलामित्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। और उसने उनसे वहाँ उपस्थित होने का कारण पूछा। मुसलमान मित्र ने बताया, "मेरे यहाँ आने के दो मुख्य और दो गौण कारण हैं। मेरे शैशव काल ही में मेरे पिता का देहान्त हो गया, अत मेरे विकास का पूर्ण श्रेय मेरी माँ को है। फिर मेरा विवाह एक स्त्री से हुआ जो मेरे जीवन की सच्ची सहचरी थी। अब मेरे कोई पुत्र नहीं केवल चार लड़कियाँ हैं जो सभी बहुत छोटी हैं और उनसे मुझे पिता के रूप में बड़ा स्नेह है। क्या यह आश्चर्यजनक बात है कि मैं स्त्रियों का समर्थक हूँ। मुसलमानों पर यह सबसे बड़ा दोषारोपण किया जाता है कि वे स्त्रियों के प्रति उदासीन रहते हैं।

इस्लाम स्त्रियों के लिये समानता का व्यवहार सिखाता है और मेरा विचार है कि पुरुष ने अपनी वासना के लिये स्त्री को पतित किया है। और उसकी आत्मा के स्थान में उसने उसके शरीर की उपासना में

यहाँ तक सफलता पायी है कि आज स्त्री को यह भी ज्ञात नही की वह जो शारीरिक सौन्दर्य की ओर इतनी झुकी रहती है, उसके गुलामी का चिन्ह है ?" इतना कहते कहते उनका गला भर आया। "यदि ऐसा नही है तो हमारी पतित बहनें शारीरिक सौंदर्य में इतना मन क्यो लगाती है ? क्या हमने उनकी आत्मा को कुचल नही डाला है ?" अपने को सम्भालने के बाद उन्होने कहा, "नही, मै स्त्रियो के लिये कृत्रिम स्वतन्त्रता ही नही चाहता वल्कि उन सभी सम्बन्धो को तोड देना चाहता हूँ जो उन्हें उनकी इच्छा से बाँधे हुए हैं।' इसलिये वे सज्जन अपनी लडकियों को एक स्वतन्त्र पेशे के योग्य बनाना चाहते थे।

इस वाद विवाह को और वर्णन करने की आवश्यकता नही। मेरी इच्छा है कि मेरे सम्वाददाता इन मुसलमान मित्र की बात पर ध्यान पूर्वक विचार करे और फिर प्रश्न को सुलझाने की चेष्टा करें। स्त्रियाँ अवश्य ही यह अपने मन से निकाल दें कि वे पुरुषों की वासना के पात्र है। उनकी उन्नति पुरुषो की अपेक्षा उन्ही के हाथो में है। यदि उन्हें पुरुषो की समानता प्राप्त करनी है, तो उन्हें अपने पति के लिये भी शारीरिक सौंदर्य की ओर मन न देना चाहिये। मेरे ध्यान से नहीं आता कि सीता ने एक भी क्षण शारीरिक सौंदर्य द्वारा राम को प्रसन्न करने में बिताया होगा।

स्त्रियों का पुनर्जीवन

बम्बई भगिनी समाज के वार्षिक अधिवेशन में व्याख्यान देते हुए गांधी जी ने कहा :—

यह जानना आवश्यक है कि स्त्रियों के पुनर्जीवन मे हमारा क्या तात्पर्य है। इसमें स्त्रियों के जीवन की पहले से ही कल्पना कर ली गयी है और यदि ऐसा है तो हमे देखना चाहिये कि पुनर्जीवन का प्रश्न उठा क्यों और कैसे ? इन बातों पर अधिक सोच विचार करना हमारा प्र म कर्त्तव्य है। समस्त हिन्दुस्तान की यात्रा करने मे मैने अनुभव किया है कि सभी वर्तमान आन्दोलन हमारी जनता के थोडे से लोगों तक ही सीमित है जो कि एक वृहत प्रकाश कुंज से एक चिनगारी के समान है।

करोडो स्त्री और पुरुष इस प्रचार से अनभिज्ञ हैं। और हमारे देश के ८५ प्रतिशत लोग अपना जीवन उनके आस पास जो हो रहा है उनमे बिना हाथ बँटाए बिता रहे हैं। ये स्त्री और पुरुष अनजान होने पर भी अपने जीवन मे कुशलता और सफलता पूर्वक भाग लेते हैं। दोनों को या तो एक सी शिक्षा मिलती है या मिलती ही नहीं। फिर भी वे एक दूसरे की यथोचित सहायता करते हैं। उनके जीवन में जो भी अपूर्णता है, उसका कारण शेष १५ प्रतिशत लोगों के जीवन में मिलेगा। यदि भगिनी-समाज की हमारी बहनें इन ८५ प्रतिशत लोगों के जीवन का निकट से अध्ययन करें, तो उन्हें एक सुन्दर सामाजिक कार्यक्रम मिलेगा।

अपने निरीक्षण को मैं ऊपर आये हुये १५प्रतिशत लोगों तक ही सीमित रखूँगा, फिर भी स्त्रियों और पुरुषों की उभयनिष्ट कमजोरियों पर विचार विनिमय करना संगत नहीं। हम जिस विषय को समझने जा रहे हैं वह पुरुषों के अपेक्षाकृत स्त्रियों का पुनर्जीवन है। नियमों के नियन्ता अधिकतर पुरुष रहे हैं। और पुरुषों ने इसमें सदा ईमानदारी और न्याय नहीं किया है। स्त्रियों का सुधार करते समय हमें सब से अधिक ध्यान उन चीजों को हटाने पर देना चाहिये जिन्हें शास्त्रों ने स्त्रियों के जन्मजात कहा है। इसे कौन और किस प्रकार करेगा? मेरी राय में इस कार्य के लिये हमें सीता, दमयन्ती और द्रौपदी की भाँति दृढ और आत्मसंगत नारियों का निर्माण करना होगा। इस प्रकार की स्त्रियों को समाज उसी आदर से देखेगा जिससे इनकी पुरातन प्रतिकृति को। उनकी वाणी में वही शक्ति होगी, जो शास्त्रों में है। स्मृतियों में उनके विषय में जो ऊटपटाँग बातें कही हैं, उन पर हमें लज्जा आयेगी। और हम उन्हें भूल जायँगे। इस प्रकार के विद्रोह हिन्दू समाज में पहले भी हुए हैं और आगे भी होंगे और इनसे हमारा विश्वास और बढता है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारा यह संगठन शीघ्र ऐसी स्त्रियाँ पैदा करने में सफल हो।

हम स्त्रियों के पतन के मुख्य कारणों पर विचार कर चुके हैं और उन आदर्शों पर भी हम प्रकाश डाल चुके हैं, जिनसे उनकी वर्तमान दशा में सुधार हो सकता है। निश्चय ही इन आदर्शों को समझनेवाली स्त्रियों की संख्या बहुत कम होगी, इसलिये हम साधरण स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं, (यदि वे करना चाहें) इस पर विचार करेंगे। उनकी

सबसे पहली कोशिश यह होनी चाहिये कि अधिक से अधिक स्त्रियों के मन में उनकी वर्तमान स्थिति का सच्चा और उचित ज्ञान जगायें। मैं यह नहीं समझता कि ऐसा साहित्यिक शिक्षा ही के द्वारा किया जा सकता है। इससे तो हमारे उद्देश्य की पूर्ति अनिश्चित काल के लिये स्थगित हो जायगी और इतनी लम्बी अवधि आवश्यक नहीं, ऐसा मैंने हर कदम पर अनुभव किया है। स्त्रियों बिना किसी प्रकार की साहित्यिक शिक्षा दिये, उन्हें उनकी शोचनीय दशा का ज्ञान कराया जा सकता है। स्त्री पुरुष की सहचरी है, उसमें पुरुष के समान ही हर प्रकार की बौद्धिक शक्ति होती है और पुरुष के हर छोटे से छोटे कार्य में भाग लेने का और उसी की भाँति स्वाधीनता का अधिकार है। जिस प्रकार पुरुष को अपने क्षेत्र में प्रमुख स्थान मिला है उसी प्रकार स्त्री को अपने क्षेत्र में मिलना चाहिये। ऐसा लिखना पढ़ना सीखने के फलस्वरूप नहीं वरन् स्वाभाविकत होना चाहिये। किन्हीं प्रचलित सामाजिक कुरीतियों के बल से कुछ मूर्ख और निकम्मे लोगों को स्त्रियों के ऊपर वे अधिकार प्राप्त हैं जिनके वे बिलकुल अयोग्य हैं। हमारे बहुत से कार्य तो स्त्रियों के दुर्दशा के कारण बीच में ही समाप्त हो जाते हैं और इस प्रकार हमारी चेष्टाओं का समुचित फल नहीं मिलता। हम लोगों की वैसी ही दशा है जैसी छोटी बातों की ओर ध्यान देने वाले और बड़ी बातों की ओर लापरवाह रोजगारी की होती जो अपने व्यापार में पर्याप्त पूँजी नहीं लगता।

वैसे तो बिना पढ़े लिखे इस दशा में काफी काम किया जा सकता है, फिर भी मेरा दृढ़ विश्वास है कि बिना उसके सदा काम नहीं चल

सकता। पढने लिखने से मस्तिक की वृद्धि और विकास होता है और हमार अच्छे कार्यों के करने को चेतना आती है। ऐसा कह कर मैं पढने लिखने की उचित उपयोगिता ही समझ रहा हूँ। स्त्रियो की अशिक्षा के कारण पुरुषों को उनसे अधिक अधिकारों का उपयोग करने में कोई न्याय नहीं। परन्तु इन स्वाभाविक अधिकारो की रक्षा में समर्थ होने के लिये उनमें सुधार करके के लिये शिक्षा की आवश्यकता है, और फिर विना शिक्षा के करोडों लोगो को आत्मज्ञान प्राप्त होना असम्भव है। वहुत सी पुस्तकें निर्दोष आनन्द देनेवाली है, लेकिन विना शिक्षा के उनका आनन्द हम नही प्राप्त कर सकते।

इसमें कोई अतिशयोक्ति नही कि विना शिक्षा के पुरुप पशुओ से अधिक ऊँचे नहीं रहता। अत शिक्षा स्त्रियो के लिये उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार पुरुषों के लिये, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि दोनो को एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाय। सबसे पहले तो हमारी सरकार की शिक्षा-पद्धति में वहुत सी कमियाँ है और उसस वहुत कुछ हानि होती है। उससे दोनो को वचाना चाहिये। उसकी वर्तमान वुराइयाँ हट जाने पर भी, स्त्रियो के लिये हर दृष्टिकोण से वह उपयोगी और उचित नहीं होगी। स्त्री और पुरुप समान है, परन्तु एक दूसरा नहीं ले सकता उनका एक अनुपम जोडा है, और उनसे से एक दूसरे का पूरक और सहायक है। अत एक के विना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस प्रकार किसी एक के लिये हानिकारक रीति का दूसरे पर भी समान रूप से वुरा प्रभाव पडेगा। स्त्रियो की शिक्षा के

विषय में विचार करते समय इस बात का सदा विशेष ध्यान रखना चाहिये। पुरुष का बाहरी बातों में प्रमुख स्थान है, अतः उसे उनका विशेष ज्ञान होना चाहिये और दूसरी ओर गृहकार्य स्त्री का क्षेत्र है, अतः उन्हें बाल बच्चों के पालन-पोषण, उनकी शिक्षा इत्यादि गार्हस्थ्य सम्बन्धी कार्यों की विशेष शिक्षा मिलनी चाहिये। परन्तु इससे यह अर्थ नहीं कि दोनों ज्ञानोपार्जन में कोई दृढ़ और निश्चित दीवार खड़ी की जाय या किसी प्रकार के ज्ञान किसी के लिये बन्द रख जाय। किन्तु जब तक दोनों की शिक्षा के माध्यम में उपर्युक्त मौलिक सिद्धान्तों का ध्यान न रक्खा जायगा, स्त्री और पुरुष के जीवन का पूर्ण विकास असम्भव है।

मैं कुछ शब्द इस बारे में भी कहना चाहता हूँ कि अंग्रेजी की शिक्षा हमारी स्त्रियों के लिये आवश्यक है या नहीं। मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि साधारण रूप से पुरुषों या स्त्रियों, किसी के लिये अंग्रेजी की शिक्षा आवश्यक नहीं। सच पूछा जाय तो जीविका-उपार्जन तथा राजनैतिक क्षेत्रों के लिये अंग्रेजी आवश्यक है और मैं ऐसा नहीं मानता कि स्त्रियों की जीविका के लिये अथवा व्यापार के लिये उद्योग करना उचित है। जो थोड़ी बहुत स्त्रियाँ जो अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करना चाहें या जिन्हें इसकी आवश्यकता हो, पुरुषों के लिये खुले स्कूलों में प्राप्त कर सकती हैं। स्त्रियों के स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का परिणाम यह होगा कि हमारी असमर्थता और भी बढ़ जायगी।

मैंने लोगों को बहुधा यह कहते सुना और पढ़ा है कि अंग्रेजी साहित्य

रूप से चेष्टा की जाय, बडे बडे सुधार के कार्य इस समय स्थगित कर दिये जा सकते हैं और इस प्रकार स्वराज के लिये बिना उसका नाम तक लिये बहुत बडी सेवा की जा सकती। जब छापे की कलें नही थीं और व्याख्यान देने के भी साधन बहुत सीमित थे और आज की तरह जब कि मनुष्य १००० मील प्रतिदिन यात्रा कर सकता है, वह नही चल सकता था (वह कठिनाई के साथ २४ मील जा पाता था) उस समय हमारे पास प्रचार करने का एक ही साधन था— हमारे कार्य और उतने असीम शक्ति की आज हम वायु की गति से इधर से उधर व्याख्यान समाचार पत्रों के लिये लेख लिखते फिरते हैं, फिर भी हमे कमी का अनुभव होता है और हमारे निराशा से भरी आवाज आकाश मे गूँजती रहती है। मै अकेले इस विचार का मानने वाला हूँ कि पुरातन काल की भाँति हमारे कार्यों का जनता पर कितने भी व्याख्यानो और लेखों की अपेक्षा कही अधिक प्रभाव पडेगा। आपके इस एसोशियेशन से मेरी यह हार्दिक प्रार्थना है कि आपके सदस्य जो कुछ भी करे उसमे शान्त और ऐसे कामो को अधिक महत्व दें, जिनसे दूसरो को कष्ट न पहुँचे।

स्त्री धर्म क्या है ?

एक बहुत पढ़ी-लिखी बहन का पत्र, कुछ हिस्से निकाल देने के बाद यहाँ देता हूँ :—

आपने अहिंसा और सत्याग्रह के जरिये दुनियाँ को आत्मा का गौरव दिखा दिया है। मनुष्य के पशु स्वभाव को जीतने की समस्या इन्हीं दो शब्दों से हल हो सकती है।

उद्योग के जरिये शिक्षा एक महान कल्पना ही नहीं है बल्कि हम अपने बच्चों को स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं तो शिक्षा का एकमात्र सही तरीका भी यही है। आप ही ने यह बात कही है और एक ही वाक्य में शिक्षा की सारी विशाल समस्या हल कर दी है। उसकी तफसील तो हालत और तजुर्बे से ही तय हो सकती है, मेरी अर्ज है कि स्त्रियों का सवाल भी जरूर हल कर दें। राजा जी कहते हैं कि हम स्त्रियों का कोई सवाल ही नहीं है। शायद राजनीतिक मानें में न हों। कदाचित् धन्धे के बारे में भी कानून द्वारा हमें निश्चित बनाया जा सकता है, अर्थात् सभी पेशे औरत, मर्द सबके लिये समान रूप में खोल दिये जा सकते हैं।

मगर फिर भी हम स्त्री हैं, और स्त्री के गुण-दोष पुरुष से भिन्न हैं, इस बात में अन्तर नहीं पड़ता। हमें अपने स्वभाव के दोषों को दूर करने के लिये अहिंसा और सत्याग्रह के अलावा कुछ और सिद्धान्त भी चाहिये।

पुरुष की तरह स्त्री की आत्मा भी ऊँचा उठने की कोशिश करती है, मगर ऐसे नर को अपनी आक्रमणकारी भावना, काम-वासना और दुःख पहुँचाने की पशु वृत्ति आदि से छुटकारा पाने के लिये अहिंसा और ब्रह्मचर्य की जरूरत है, ठीक उसी तरह नारी को भी कुछ ऐसे उसूलों की आवश्यकता है जिनसे वह अपने स्वभाव के दोष दूर कर सके, क्योंकि वे दोष पुरुष के दोषों से अलग तरह के हैं और आमतौर पर कहा जाता है कि वे प्रकृति से ही स्त्री के साथ लगे हुए हैं। स्त्री होने के कारण ही उसके जो स्वाभाविक गुण-दोष हैं, उसका जिस तरह लालन-पालन और शिक्षण होता है, और उसके लिये जैसा वातावरण पैदा हो जाता है, वह सब उसके विरुद्ध पडता है।

और ये चीजें यानी उसका स्वभाव, उसकी तालीम और उसका वायु-मंडल, उसके काम में हमेशा खलल डालती, उसका रास्ता रोकती और आमतौर पर यह कहने का मौका देती है कि "आखिर तो औरत ही है" जब मैं कहती हूँ कि स्त्री होना ही उसके गले का हार हो गया है, तो मेरा मतलब यही है। मेरे ख्याल से हमारी समस्या ठीक तौर पर हल हो जाये और अपने सुधार का सही तरीका हमारे हाथ लग जाये तो सहानुभूति और कोमलता आदि जो हमारे स्वाभाविक गुण हैं उन्हें बाधक होने के बजाय हम साधक बना सकती हैं। जैसा आपने पुरुषों और बच्चों के बारे में हल बताया है उसी तरह हमारा सुधार भी हमारे ही भीतर से होना चाहिये। मैंने स्वभाव, शिक्षा और वातावरण की बात कही है। अपनी बात साफ समझानेके लिए मैं एक मिसाल देती हूँ।

कुदरत ने औरत को कोमल, नरम दिल, हमदर्द और बच्चों की माँ बनाया है। इन चीजों का असर उस पर अनजान में भी बहुत होता है। इसलिये जब उसे कुछ करना पड़ता है तो वह बेहद भावुक हो जाती है। मर्दों के सम्पर्क में आने पर बड़ी बड़ी गलतियाँ कर बैठती है। जिस वक्त उसे सख्त रहना चाहिये उस वक्त उसका दिल पिघल जाता है। वह जल्दी ही खुश और नाराज हो जाती है, उसे आसानी से अपने पर गर्व हो जाता है और आमतौर पर भोलेपन के काम करती है।

जब मैं आपसे मिलने आयी तब हालांकि उस मुलाकात की मुझे बड़ी उत्सुकता थी और पहली बात उसका विचार करते करते मुझे नींद भी नहीं आयी थी, फिर भी जब मैं आपके सामने गयी और आपने मुझे बैठ जाने को कहा तो मैं श्रीदेसाई की लम्बी-चौड़ी पीठ की आड़ में जा बैठी। वहाँ से न मैं आपकी बात सुन सकती थी और न आपका मुँह देख सकती थी। यह मेरा कितना भोलापन था। इतना ही नहीं, मैंने देख लिया कि मैं अपनी बात भी नहीं समझा सकती, मेरी जबान ही नहीं चलती थी। इसकी वजह से यह समझती हूँ कि मेरे स्वभाव पर भावुकता सवार रहती है और आसानी से काबू के बाहर हो जाती है। अवश्य ही, यह खास दोष तो उचित तालीम से निकल जाता। मगर मैं कह सकती हूँ कि सम्भव है, मैं और कोई ऐसा ही भोलेपन का काम कर बैठूँ।

मेरी एक सखी ने मुझे वे उत्तर दिखाये थे जो उसने राष्ट्रीय योजना-उपसमिति की स्त्रियों के काम के बारे की प्रश्नावली पर लिख

भेजे थे। आप जरूर जानते होंगे कि ये सवाल नम्बरवार होते हैं और कुछ इस तरह के हैं—देश के जिस भाग में आप रहती हैं, वहाँ किस हद तक स्त्रियों को अपने हक से सम्पत्ति रखने, हासिल करने, उत्तराधिकार में मिलने, बेचने या दे डालने का अधिकार है ?

जिन अनेक काम धन्धों में अलग-अलग योग्यता की स्त्रियों को लगने की जरूरत हो सकती है उसके लिए स्त्रियों को उचित शिक्षा और तालीम देने का क्या बन्दोबस्त और सुविधाएँ हैं ? वगैरः वगैरः।

मेरी सखी ने प्रश्नों का उत्तर न दे कर यह लिखा है—"यह कहना जरा भी सच नहीं है कि प्राचीन काल में स्त्रियों को शिक्षा जैसी कोई चीज मिलती ही न थी।" उसने यह भी लिखा है कि "वैदिक युग में विवाह होने पर पत्नी को कुटुम्ब में तुरन्त प्रतिष्ठा का स्थान दिया जाता था और वह अपने पति के घर की मालकिन बन जाती थी" आदि आदि। उसने मनुस्मृति से भी प्रमाण दिये हैं।

मैंने उससे पूछा कि जब सवाल आज के जमाने के बारे में पूछे गये हैं तो पुराने रीति-रिवाज का हाल लिखने की क्या जरूरत थी ? वह यह सोच कर कि निबन्ध के रूप में उत्तर बढ़िया रहता है कुछ मुँह-ही-मुँह कहती रही और फिर तेज होकर बोली, "श्रीमती ...अमुक का जवाब तो मुझसे भी बुरा है।"

मेरी समझ से मेरी सखी को यह भूल ठीक तालीम न मिलने के कारण हुई है और तालीम उसे स्त्री होने के कारण ही नहीं दी गयी। यह तो मुहर्रिर भी जानता है कि जब कोई सवाल पूछा जाता है तो उसके

जवाब में दूसरे ही विषय पर निबन्ध नहीं लिखना चाहिए। मेरे ख्याल में मुझे उदाहरण देते जाने और अपनी बात समझाते रहने की जरूरत नहीं है। आपको सब प्रकार की स्त्रियों का इतना विशाल अनुभव है कि आप जान गये होंगे कि मेरा यह कहना सही है या नहीं कि अत्यन्त महत्त्व पूर्ण सिद्धांत से स्त्रियाँ सुधर सकती हैं, वही उन्हें मालूम नहीं है।

आपने मुझे 'हरिजन' पढ़ने की सलाह दी थी। मैं शौक से पढ़ती हूँ। मगर अब तक अन्तरात्मा के लिए कोई सलाह मेरे देखने में नहीं आई। राष्ट्रीय आजादी के लिए कातना और लड़ना तो उस तालीम के कुछ पहलू ही हैं। उनमें समस्या का सारा हल समाया हुआ नहीं दीखता, क्योंकि मैंने ऐसी स्त्रियाँ देखी हैं जो कातती हैं और कांग्रेस के आदर्शों पर अमल करने की कोशिश तो जरूर करती हैं लेकिन फिर भी वही बड़ी बड़ी भूलें कर बैठती हैं जिनका कारण उनका स्त्री होना ही है। मैं पुरुषों के जैसी नहीं बनना चाहती। लेकिन जैसे आपने पुरुषों की पशु प्रकृति के सुधार के लिए अहिंसा दिखाई है, वैसे हमें भी वह पाठ पढ़ा दीजिये। जिससे हमारा भोलेपन का दोष दूर हो जाये। कृपा कर के बताइए, हम कैसे अपने स्वभाव का सदुपयोग करें और अपनी बाधाओं को सुविधा बना लें। यह स्त्री होने का भार हमेशा मेरे मन पर रहता है। जब कभी मैं किसी को नाक-भौं सिकोड़ कर यह कहते सुनती हूँ कि "आखिर स्त्री है" तो मेरी आत्मा में वेदना होती है (अगर आत्मा में भी वेदना हो सकती हो तो।) एक पुरुष से मैंने इन बातों की चर्चा की तो वह मेरी हँसी उड़ाकर कहने लगा, आपने हमारे मित्र

के घर उस बच्चे को देखा था ? वह गाडी बनाकर खेल रहा था और चग चग करता जब खम्भे के पास पहुँचा तो उसके चौतरफ घूमने के बजाय उसने अपने कन्धों से धक्का दे कर उसे गिराने की कोशिश की। वह अपने बाल-स्वभाव से यह समझता था कि मैं उसे गिरा दूँगा। आपकी बात से मुझे वह याद आता है। आप जो कहती हैं, वह मनोवैज्ञानिक बात है। आप उसे समझने और सुलझाने का जो प्रयत्न करती है, उस पर मुझे हँसी आती है।"

स्त्रियों का काम

प्रश्न—आप कहते है :—"स्त्री को घर छोड कर घर रक्षा के लिए कन्धे पर बन्दूक धरने के लिये कहना या प्रोत्साहित करने से स्त्री और पुरुष दोनो का ही नाश होगा। यह तो फिर जङ्गली बनना हुआ। लेकिन उन करोडो महिलाओं के लिये क्या कहिएगा, जो कृषि करती तथा कारखानों में मजदूरी करती हैं। उन्हें भी तो घर त्यागकर जीविका कमानी पडती है। क्या आप उद्योग-धन्धों को मिटा देंगे ? और फिर वही पाषाण-युग को खींच लावेंगे ? क्या यह फिर से जङ्गली बनना या विनाश का आरम्भ नहीं होगा ? आपकी कल्पना से समाज की वह नयी व्यवस्था कौन-सी होगी, जिसमें स्त्रियों से काम लेने में पाप न होगा ?

उत्तर—करोंडों स्त्रियों का अगर बरबस घर छोड कर अपनी जीविका पडती है तो यह बुरी बात है। पर यह उतनी बुरी बात नहीं है,

'जितनी कन्धों पर बंदूक रखना। वास्तव में मजदूरी करने में कोई बर्बरता नहीं है। अपने घरों की देख-भाल करते हुए अगर स्त्रियाँ स्वेच्छा से खेतों पर भी काम करती हैं तो इसमें मुझे कोई बर्बरता दिखाई नहीं पड़ती। मेरी कल्पना में समाज की जो नई व्यवस्था है उसमें सभी अपने अपने सामर्थ्य के अनुसार काम करेंगे और उन्हें अपने श्रम का उचित मूल्य मिलेगा। इस नई व्यवस्था में स्त्रियाँ थोड़े समय के लिए काम करेंगी, पर उनका मुख्य काम घर की देख भाल करना होगा। चूँकि मैं अपनी नयी व्यवस्था में बन्दूक को स्थायी चीज नहीं मानता। इसलिए जहाँ तक पुरुषों का सम्बन्ध है वहाँ भी उसका प्रयोग धीरे धीरे कम होता जायगा, जब तक उसका इस्तेमाल होता रहेगा, तब तक उसे एक अनिवार्य बुराई समझ कर सहन किया जायगा। पर मैं जान बूझ कर इस बुराई की छूत स्त्रियों को नहीं लगने दूँगा।

स्त्रियों का विशेष कर्त्तव्य

यूरोप संकट पर आपने जो लेख लिखा है, उसे मैंने बड़े चाव से पढ़ा। यह विल्कुल स्वाभाविक था आप इस समय ऐसा लेख लिखें। जब मानवता सर्वनाश के गर्त्त पर हो, आप अपने को कैसे रोक सकते थे ?

प्रश्न यह है कि क्या संसार उस पर ध्यान देगा ?

इङ्गलैंड से आये हुए मित्रों के पत्र व्यवहार देखने से पता चलता है कि उस भयानक सप्ताह में लोगों को अत्यन्त कष्ट सहन करना पड़ा। और मैं निश्चय पूर्वक जानता हूँ कि कुछ अंश तक यही वात संसार भर के लिए लागू है। पैशाचिक-साधनों, आधुनिक युद्ध के और उनके परिणाम स्वरूप जो भयानक पाशविकता और हत्या होती है, उसकी कल्पना मात्र से ही लोग पहले की अपेक्षा दूसरे ही ढङ्ग से सोचने लगे है। एक अँगरेज मित्र ने लिखा है "युद्ध के रुक जाने का समाचार सुन कर लोगों ने जो आराम की साँस ली और ईश्वर के प्रति हर प्राणी ने जो अनुग्रहपूर्ण विचार प्रकट किये ऐसी चीजें है, जिन्हें मै कभी नही भूल सकता।" फिर भी अकथनीय कष्टों का भय अपने निकटवर्ती सम्बन्धियों को खोने की आशङ्का अपने देश को पराजित देखने की मान हानि, ये ही ऐसे कारण है जिनसे लोग युद्ध से घृणा करते है। क्या दूसरे राष्ट्र के पराजय से युद्ध रुक जाने पर हम प्रसन्न है ? क्या यदि मर्यादा के त्याग की चर्चा हमसे की गयी होती तो हम और तरह से सोचते ? हम युद्ध से इसलिये घृणा करते हैं कि हम जानते हैं, झगड़ों के निर्णय का

यह अच्छा मार्ग नहीं है या हमारी यह घृणा हमारे भय और आशङ्का के कारण है ? यदि युद्ध को संसार से मिटाना है तो इन प्रश्नों का समुचित उत्तर मिलना आवश्यक है।

"इस संकट के समाप्त होने पर हम क्या देखते हैं ? शस्त्रीकरण के लिये पहले से भी अधिक जोरदार जाति, सभी सुलभ साधनों—पुरुष स्त्री, धन, योग्यता, मस्तिष्क—का ऐसा विस्तृत और बृहद अभूतपूर्व संगठन जो युद्ध की प्रतीक्षा कर रहा है।

कहीं से भी स्पष्ट घोषणा नहीं हो रही है कि "युद्ध नहीं होगा।" क्या यह बात का द्योतक नहीं कि युद्ध आज के लिये चाहे समाप्त हो गया हो, किन्तु डैमाक्लिस की तलवार की तरह यह अब भी हमारे सिरों पर लटक रहा है। स्त्री की हैसियत से मुझे दुख है कि हमारी जाति ने संसार की शान्ति स्थापना में वह योग नहीं दिया जो उसे देना चाहिये था। यह जानकर मुझे बड़ा दुःख होता है कि युद्ध-भूमि पर सचमुच लड़ने के लिये स्त्रियों का संगठन किया जा रहा है और फिर युद्ध के दिनों में स्त्रियों ही का हृदय निचोड़ा जाता है और उन्हीं की आत्मायें विध्वंस होती हैं, जिनकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती। इन सबका वर्णन नहीं किया जा सकता। हम लोगों ने हर युग में श्रेष्ठतर भाग क्यों नहीं चुना ? हमने निर्मम, पाशविक, और निर्दय शक्ति के समक्ष घुटने क्यों टेके ? यह हमारे आत्मिक, विकास की दुखद व्याख्या है। हमने उच्च आदर्श को नहीं समझा। मुझे अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि यदि स्त्रियों ने हृदय से

अहिंसा के महत्त्व और उसकी शक्ति को समझा होता तो संसार मे शान्ति और सुख ही होते ।

‘ आप हम भारती स्त्रियो का प्रोत्साहन और संगठन क्यो नही करते ? आप हमे दाहिना हाथ बनाने की ओर ध्यान क्यो नहीं देते ? कई बार मेरी इच्छा हुई कि आप केवल इसी काम के लिये एक बार भारतवर्ष भर का भ्रमण कीजिये। मुझे विश्वास है कि आपको स्त्रियों का आश्चर्य-जनक सहयोग मिलेगा, क्योकि भारतीय नारियोका हृदय दृढ है और संसार में शायद ही किसी और देश की नारियो ने इतना सुन्दर त्याग किया हो। यदि आप हमे कुछ बनाएँ तो हम दु ख और शोक मे डूबते हुए संसार को शान्ति का मार्ग बताने मे समर्थ हो सकेंगी”—एक महिला के इस पत्र को प्रकाशित करते हुए मुझे कुछ हिचक हो रही है। परन्तु मै अपनी सीमाएँ जानता हूँ। मुझे लगता है कि मेरे भ्रमण-करने के दिन समाप्त हो गये अब तो मुझे चाहिये लेखो द्वारा जो कुछ कर सकता हूँ, करूँ, किन्तु मौन प्रार्थना में मेरा विश्वास बढता जा रहा है। यह अपने तई एक कला है और शायद सबसे ऊँचे जिसके लिए अत्यन्त परिष्कृत प्रयत्नो की आवश्यकता है। मै मानता हूँ कि अहिंसा के सर्वोत्तम रूप का प्रदर्शन स्त्री ही का कार्य है। किन्तु एक स्त्री के हृदय को द्रवित करने के लिए पुरुष की क्या जरूरत। यदि यह पत्र केवल मुझे यह जानकर कि (जैसा माना जाता है) मै अहिसा का सामाजिक रूप से प्रयोग करने में सबसे बडा ज्ञाता हूँ, तो मै नहीं चाहता कि भारतीय स्त्रियों को उपदेश देता फिरूँ। मैं अपने संवाददाता को यह विश्वास दिलाता कि मुझमें इच्छा

की कमी नही जो मुझे उसकी अपील के अनुसार कार्य करने से रोक रही हो। मेरा विचार है कि यदि कांग्रेस के लोग अपना विश्वास अहिंसा में दृढ़ रक्खें रहें और अहिंसात्मक कार्यक्रम पर पूर्णरूप से मन लगाकर चलते रहें, तो स्त्रियाँ स्वयं बदल जायँगी। और सम्भव है उन्हीं में से कोई ऐसी निकल आये जो मेरी अपेक्षा कही आगे निकल जाय, जहाँ पहुँचने की मुझे आशा भी न हो, क्योंकि स्त्री पुरुष की अपेक्षा अहिंसा के विषय में खोज करने तथा निर्भीकता पूर्वक काय करने के लिए अधिक उपयुक्त है। जिस प्रकार मेरा विश्वास है, पाशविक शौर्य में पुरुष स्त्री से बढ़कर है, उसी प्रकार आत्म त्याग में स्त्री पुरुष की अपेक्षा सदा कही बढ़कर है।"

महिलाएँ और सैनिकता

यूरोप में यह प्रश्न पूछा गया कि स्त्रियां सैनिकता के विरुद्ध किस प्रकार लड़ें। इटली की एक प्राइवेट में गांधी जी से कहा गया कि वे इटली की स्त्रियों को कुछ ऐसी बातें बतायें जो भारत की स्त्रियां से सीख सकें।

पेरिस में महात्मा जी ने कहा, "यदि स्त्रियाँ भूल जांय कि वे पुरुषों से कम शक्तिशाली हैं तो पुरुषों की अपेक्षा युद्ध के विरोध में कहीं अधिक कार्य कर सकती हैं। आप लोग स्वय सोचिये यदि सिपाहियों और सेना नायकों की मातायें, स्त्रियां और बालिकायें उन्हें किसी भी रूप में युद्ध में भाग लेते हुए न देखना चाहें तो क्या हो?"

लासेन मे उन्होंने कहा, ' मै नहीं समझता कि मुझमें युरोप की स्त्रियों को सन्देश देने की शक्ति है। यदि मेरे सन्देश को सुन कर वे क्रोधित न हो, तो मैं चाहता हूँ कि वे अपना ध्यान भारत की स्त्रियो की ओर ले जायँ जो गतवर्ष पूर्ण रूप से एकता पूर्वक लडने को खडी हुई और मै सचमुच विश्वास करता हूँ कि योरोप को अहिंसा की शिक्षा उसकी स्त्रियो द्वारा ही मिल सकती है। यहाँ मैं इसका समर्थक हूँ कि नारी आत्मत्याग का साक्षात रूप है किन्तु दुर्भाग्य वश आज उसे इसका ज्ञान नहीं रहा कि उसकी सत्ता पुरुष से कितनी ऊँची है। जैसा कि टाल्सटाय कहा करते थे "स्त्रियाँ पुरुष के वश में होकर चल रही हैं।" यदि वे अहिंसा की शक्ति को समझ ले तो उन्हें पुरुषों से शक्ति हीन समझा जाना कभी पसन्द न होगा।"

स्त्रियो की एक टोली से बात करते हुए उन्होंने कहा, "अहिंसात्मक युद्ध का सबसे बड़ा गुण यह है कि स्त्रियाँ उसी प्रकार भाग ले सकेंगी जैसे पुरुष। अहिसात्मक युद्ध में स्त्रियों को ऐसी कोई सुविधा नही होती और स्त्रियो ने गत अहिसात्मक युद्ध मे पुरुषो की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली भाग लिया था। और इसका कारण बिलकुल सीधा-सादा है। अहिंसात्मक युद्ध मे अधिक से अधिक सहन शक्ति की आवश्यकता होती है और स्त्रियों से अधिक और पवित्र सहन शक्ति है किस में? भारतवर्ष की स्त्रियों ने परदे को फाड फेंका और वे राष्ट्र के लिये लडने को मैदान में आ गयीं। उन्होने देखा कि देश उनसे गृहस्थी के कामो के अतिरिक्त कुछ और माँग रहा था। उन्होंने गैर कानूनी नमक बनाये,

विदेशी कपड़े और नशीली वस्तुओं की दूकानों पर धरने दिये और ग्राहकों तथा दूकानदारों दोनों को रोकने की चेष्टा की। रात में वे पीने वालों के साथ बड़े साहस और उदारता के साथ उनके अड्डों पर गईं। उन्होंने जेल की सजायें काटीं, और लाठियों की चोटें खाईं, और उनकी तरह साहस बहुत कम पुरुषों ने दिखाई थी। यदि पाश्चात्य स्त्रियां पाशविकता में पुरुषों से जीतना चाहती हों तो भारतीय स्त्रियों के पास कोई सदेश दा शिक्षा नहीं है। उन्हें अपने पतियों और बालकों को लोगों की हत्या करने के लिये भेजकर आनन्द नहीं अनुभव करना चाहिये और न उन्हें इस बहादुरी के लिये बधाई ही देनी चाहिये।"

—महादेव देसाई

भारतवर्ष की महिलाओं से

डांडी यात्रा के अवसर पर गांधी जी ने भारतवर्ष की स्त्रियों से निम्न अपील की थी —

कुछ बहनों में "इस पवित्र संग्राममें भाग लेने" की बड़ी उत्सुकता दिखाई देती है, यह बहुत स्वस्थ चिन्ह है। इससे यह पता चला कि नमक कर के विरुद्ध विदेशी आन्दोलन चाहे जितना आकर्षक क्यों न हो, उनके लिये इनसे अपने को सीमित करने ही के बदले में कोयला लेना है।

इस अहिंसात्मक संग्राम में उन्हें पुरुषों से कहीं अधिक भाग लेना चाहिये। स्त्रियों को पुरुषों से शक्तिहीन कहना उन पर दोषारोपण करना

है। यदि शक्ति का अर्थ पाशविकता से है तो सचमुच स्त्री पुरुष की अपेक्षा कम पाशविक होती है, किन्तु यदि इससे चारित्रिक शक्ति का अर्थ हो तो स्त्री पुरुष से कहीं बढ कर है। क्या उसमें पुरुष से अधिक बुद्धि, साहस, आत्मत्याग और सहन शक्ति नही है? स्त्री के बिना पुरुष की सत्ता ही न होती। यदि हमारे जीवन का उद्देश्य अहिंसा है, तो भविष्य का निर्माण स्त्रियों ही के हाथ में है।

यह विचार मेरे मन में बरसों से जमता रहा है कि जब कभी आश्रम की स्त्रियों ने पुरुषों के साथ चलना चाहा है तो मेरे मन में किसी ने कहा है कि वे नमक के कानून को तोड़ने की अपेक्षा कहीं बड़ा कार्य करने के लिए हैं।

मुझे ऐसा लगता है कि वह कार्य मैं जान गया हूँ। सन् १९२१ में पुरुषों द्वारा विदेशी कपड़े तथा नशीली वस्तुओं की दूकानो पर दिया गया धरने को आशातीत सफलता प्राप्त हुई और उसकी असफलता बाद में इस लिये हुई कि उसमें हिंसा आ गयी। यदि एक वास्तविक प्रभाव पैदा करना है तो धरना देने का कार्य फिर प्रारम्भ करना पड़ेगा। यदि यह अन्त तक शान्त रहे तो लोगों को शिक्षा देने का सर्वोत्तम मार्ग होगा। इसके लिए बलात्कार से रोकने की नहीं, वरन् भावनायें बदलने की आवश्यकता होगी। और भावनाएँ बदलने के लिये स्त्रियों से अधिक प्रभाव कौन डाल सकता है?

नशीली वस्तुओ और विदेशी कपडे का बहिष्कार अन्त में कानून

द्वारा ही होगा। किन्तु जब तक नीचे से जोर न लगाया जायगा, कानून बनेगा ही नहीं।

इससे किसी को विरोध न होगा कि ये दोनों राष्ट्र के लिए परम आवश्यक हैं। नशीली वस्तुओं से लोगों की चारित्रिक शक्ति क्षीण हो जाती है, विदेशी कपडे से देश की आर्थिक दशा बिगडती है और इससे लाखों आदमियों की जीविका छिनती है। प्रत्येक दशा में घर पर आपत्ति आती है और इसे स्त्रियों को ही सहना पड़ता है। वे स्त्रियां जिनके पति मद्यपान करते हैं जानती हैं कि इस आदत का कितना घातक परिणाम होता है। हमारे गांवों की तमाम स्त्रियां यह भी जानती हैं कि बेकारी कैसी होती है। आज चर्खा संघ में एक लाख से ऊपर स्त्रियां और दस हजार से कुछ कम पुरुष हैं।

भारत की स्त्रियों को चाहिये कि वे इन दोनों कामों को अपने हाथ में लें और उनमें विशेष ज्ञान प्राप्त करें। इस प्रकार वे राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए पुरुषों से अधिक काम करेंगी। इससे उनमें शक्ति और आत्मविश्वास आयेगा, जिससे अब तक वे दूर रही हैं।

उनकी अपील से विदेशी कपडे के दूकानदारों, ग्राहकों और नशीली पेय पदार्थों के रोजगारियों तथा उनका प्रयोग करने वाले लोगों का हृदय अवश्य ही पिघलेगा। कम से कम स्त्रियों से यह आशङ्का नहीं की जा सकती कि वे इन चारों में से किसी के साथ हिंसात्मक व्यवहार करेंगी या करने की इच्छा करेंगी और न सरकार ही इस प्रकार के शान्तिपूर्ण और से आंख बचा सकती है।

इसकी विशेषता यह होगी कि इसके आरम्भ करने और चलाने का काम पूर्ण रूप से स्त्रियों के ही हाथ में होगा। जितनी भी सहायता वे चाहें या जितनी भी सहायता की उनको आवश्यकता हो, वे पुरुषों से प्राप्त करें, परन्तु पुरुष उनके नीचे कार्य करें।

इस काम मे हजारो शिक्षित और अशिक्षित स्त्रियाँ भाग ले सकती हैं। ऊँची शिक्षा पायी हुई स्त्रियो को इस प्रकार जनता के साथ घुसने, मिलने और उन्हें हर प्रकार की सहायता देने का अवसर मिलेगा।

विदेशी वस्त्रों के वहिष्कार का अध्ययन करने पर उन्हें पता चलेगा कि खादी बिना यह असम्भव है। मिल-मालिक स्वयं स्वीकार करेगे कि निकट भविष्य मे मिले भारतवर्ष की आवश्यकता भर का कपडे नहीं तैयार कर सकतीं। यदि अनुकूल वातावरण हो तो खादी हमारे गाँवो में असंख्य घरों में काती जा सकती है। स्त्रियों को चाहिये कि अपना पूरा बेकारी का समय सूत कातने में लगा कर अनुकूल वातावरण निर्माण करें। खादी का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में सूत कातने पर ही निर्भर है। मार्च के पिछले दस दिनो मे मैंने तकली में वह शक्ति पायी है जो कभी नही देखी थी हालांकि बहुत सी असुविधाएं थीं।

इसका प्रभाव आश्चर्यजनक होता है। खेल खेल ही में विना किसी और कार्य में बाधा पहुँचाए मेरे साथियों ने प्रति दिन चार वर्ग गज कपड़ा बुनने भर को १२ काउण्ट खादी का सूत काता। युद्ध निरोध के रूप में खादी अजेय है।

दोनों सुधारों का नैतिक फल बहुत महत्वपूर्ण है और राजनैतिक परिणाम

भी कम महत्वपूर्ण न होगा। नशीली वस्तुओं का प्रयोग रोकने से २५ करोड़ लगान की कमी होगी और विदेशी कपड़े के बहिष्कार से भारतवर्ष के करोड़ों आदमी मिल कर कम से कम ६० करोड़ की बचत करेंगे। नमक के कर से यह कहीं लाभदायक होगा। इन दोनों कामों की सफलता से नमक कर के रद्द हो जाने की अपेक्षा अधिक आर्थिक लाभ होगा। दोनों सुधारों के नैतिक मूल्य का अनुमान भी नहीं किया जा सकता।

लेकिन कुछ बहनें कह सकती हैं कि इसमें कोई उत्तेजना और साहसिकता नहीं है। यदि वे पूरा मन लगाकर काम करें, तो उन्हें काफी उत्तेजना और साहसिकता मिलेगा। आन्दोलन समाप्त कर सकने के पहिले सम्भवत उन्हें जेल जाना पड़ेगा। बहुधा उनकी मानहानि और शारीरिक आघात भी हो सकता है। इस प्रकार की मानहानि और चोट सहन करने का उन्हें गर्व होगा। ऐसी सहनशीलता से इसका अन्त भी शीघ्र ही होगा। यदि भारत की स्त्रियें मेरी अपील के अनुसार कार्य करना चाहती हैं, तो उन्हें शीघ्रता करनी चाहिये। यदि भारतवर्ष भर का कार्य एक साथ न उठाया जा सके, तो वे सूबे, जो संगठन कर सकते हैं, करें। दूसरे सूबे भी जल्द उसका अनुकरण करेंगे।

मद्यपान का अभिशाप

एक बहिन लिखती हैं —

गाँव में जाने पर जब मैंने सुना कि इन आदमियों में मद्यपान ने भयंकर उत्पात मचा रखा है, तो मुझे बड़ा दु:ख हुआ। कुछ स्त्रियों की आँखों में आँसू भरे हुए थे। वे क्या कर सकती हैं? एक भी ऐसी स्त्री नहीं, जो हमारे बीच से सदा मद्य को बाहर निकाल देने को पसन्द न करती हो। यह न जाने कितने घरेलू दु:खों, गरीबी और गिरे हुए स्वास्थ्य और शरीर नाश का कारण है। हम मामूली स्त्री को ही पुरुष के इस दुर्व्यसन का बोझ उठाना पड़ता है। मैं स्त्रियों को क्या करने की सलाह दे सकती हूँ? क्रोध और उसके साथ निर्दयता का सामना करना बड़ा ही कठिन है। मैं कितना चाहती हूँ कि इस प्रान्त के नेता अपनी समझ शक्ति, और दिमाग साम्प्रदायिक बटवारा के अन्याय पर खर्च करने की जगह इस बुराई को दूर करने में लग जाते। हम ऐसी मामूली चीजों के लिए असली बातों की उपेक्षा कर रहे हैं, जो हमारे देशवासियों की नैतिक मर्यादा में उन्नति होने पर अपने आप हल हो जा सकती हैं। बचा, आप मद्यपान के सम्बन्ध में लोगों से एक लिखित अपील नहीं कर सकते? इस व्याधि के कारण लोगों को पूर्णत महानाश की ओर जाते देख कर महा शोक होता है।

जो पीते हैं, उनसे मैं अपील करूँगा तो वह व्यर्थ जायगी और ऐसा होना लाजिमी है। वे 'हरिजन' नहीं पढ़ते। अगर पढ़ते भी हैं तो

उपहास करने के लिए पढ़ते हैं। उन्हे मद्यपान की आदत मे होनेवाली बुराई को जाननेकी कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती। वे उस बुराई से चिपटे हुए हे। पर मैं इस बहिन को और उसके द्वारा हिन्दुस्तान की समस्त नारियों को याद दिलाना चाहूँगा कि डांडीयात्रा के समय भारत की स्त्रियों ने मेरी सलाह सुनी थी। और मद्यपान के खिलाफ युद्ध करना और चरखा चलाना उनकी विशेषता बन गयी थी। इस लेखिका (बहिन) को यह बात याद करना चाहिये कि हजारों स्त्रियों ने निर्भय होकर शराब की दूकानों पर धरना दिया था और इस दुर्व्यसन में फँसे हुए लोगों से अपनी आदत छोड़ देने की उनकी अपील प्रायः सफल हुई थी। अपने स्वेच्छापूर्वक अंगीकृत इस कार्य मे उनको मद्यपतियों की गालियाँ सुननी पड़ीं और कभी-कभी उनके हाथ मार पीट भी खानी पड़ी। शराब की दूकानों पर धरना देने के अपराध में सैकडों जेल गयीं। उनके उत्साहपूर्ण कार्य ने सारे देश पर अद्भुत प्रभाव डाला। पर दुर्भाग्य वश सविनय अवज्ञा के बन्द हो जाने से तथा उसके बन्द होने से पहले से ही, इस काम में ढिलाई आ गयी। इस शिथिलता के कारण इससे मैं आना नहीं चाहता। किन्तु इस काम के लिए आज भी कार्यकर्त्ताओं की जरूरत है। स्त्रियों की प्रतिज्ञा अधूरी पड़ी है। वह एक खास अवधि के लिए नही ली गयी थी और वह तब तक पूरी नहीं हो सकती जब तक कि सारे देश में मद्यपान निषेध की घोषणा न कर दी जाय। स्त्रियों का भाग उज्ज्वलतर था। पुरुष में जो श्रेष्ठतम है, उसे अपील करके शराब की दूकानों को सूनी कर मद्यनिषेध की सफ-

लता उनका काम था। अगर उन्होंने अपना काम जारी रखा होता, तो उनकी सद्भावना और शालीनता ने निश्चय ही पियक्कडो को उनके इस दुर्व्यसन से उबार लिया होता।

पर अभी कुछ गया नहीं है। आज भी स्त्रियाँ इस आन्दोलन का संगठन कर सकती है। जिनके सम्बन्ध मे लेखिका ने लिखा है। उनकी पत्नियाँ यदि मद्यनिषेध के सम्बन्ध मे सच्ची हैं, तो वे जरूर ही अपने पतियो का स्वभाव बदल देंगी। स्त्रियाँ नहीं जानतीं कि वे अपने पतियो पर अच्छी दिशा में कितना असर डाल सकती है। निःसन्देह वे अनजाने यह प्रभाव रखती हैं, पर इतना ही काफी नही है। उन्हें इसका ज्ञान भी होना चाहिये और यह ज्ञान उन्हें शक्ति देगा और बतायेगा कि वे उन्हें अपने जीवन सगी से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये। करुणा की बात यह है कि अधिकाश स्त्रियाँ अपने पतियो के कार्यों मे दिलचस्पी नहीं लेतीं। वे सोचती है कि उन्हें इसका अधिकार नही है। उनको यह नहीं समझ पडता कि उन्हें ठीक वैसे ही अपने पतियो के चरित्र की रक्षा करने का अधिकार है जैसे उनके पतियो को उनके चरित्र का अभिभावक होने का अधिकार है। इससे साफ बात और क्या हो सकतो है कि पति और पत्नी एक दूसरे के गुण दोष में समान रूप से भागीदार हैं? पर सिवा स्त्री के दूसरा कौन पतियो में उनकी शक्ति और कर्तव्य का भाव जगा सकता है? यह तो असल में मद्यपान के विरुद्ध स्त्रियो के आन्दोलन का एक हिस्सा है।

ऐसी योग्य स्त्रियाँ काफी तादाद में होनी चाहिये जो मद्यपान

सम्बन्धी आंकड़ों तथा जिन कारणों से मद्यपान की ओर प्रवृत्ति होती है, उनका और उनसे छूटने के उपायों का पूरी तरह अध्ययन करें। उन्हें पिछली बातों से सबक लेना चाहिये और जानना चाहिये कि पियक्कड़ों से मद्यपान छोड़ देने की अपील करने मात्र से स्थायी प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस व्यसन को एक रोग समझकर इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। दूसरे शब्दों में कुछ स्त्रियों को शोधी विद्यार्थियों का रूप ग्रहण करना होगा और इस विषय में अनेक प्रकार के शोध करने होंगे। सुधार की हरेक शाखा में लगातार अध्ययन की जिससे अपने विषय पर पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त हो जाय, जरूरत है। जिन सुधार आन्दोलनों की खूबियाँ स्वीकार की जा चुकी हैं, उनकी आंशिक या सम्पूर्ण असफलता के मूल में अज्ञान ही रहा है। क्योंकि प्रत्येक कार्य के लिए जो सुधार के नाम पर चलता है जरूरी नहीं कि वह इस नाम से पुकारे जाने के योग्य हो।

— —

नव विवाहितों से

हूदी में गांधी सेवा संघ की वार्षिक सभा में गांधीजी ने अपनी पोती और महादेव देसाई के लड़कों का विवाह संस्कार किया संस्कार समाप्त होने पर उन्होंने नव विवाहितों से कहा —

तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मेरा संस्कारों में वहीं तक विश्वास है जहाँ तक वे हमारे भीतर कर्तव्य को जाग्रत करते हैं। जब से मैंने अपने

बारे में सोचना शुरू किया, मेरा यही विचार रहा है। तुम लोगों ने जिन मन्त्रों का उच्चारण किया है और जो प्रतिज्ञाएँ ली हैं, वे सभी संस्कृत में थीं और उनका अनुवाद तुम्हारे वास्ते किया गया। हमारे यहाँ संस्कृत भाषा थी, क्योंकि मैं जानता हूँ, संस्कृत शब्दों में ऐसी शक्ति है कि किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकती है।

पति इस संस्कार के अवसर पर जो इच्छाएँ प्रकट करता है उनमें से एक यह है कि उसकी स्त्री सुन्दर और स्वस्थ पुत्र की माँ हो। इससे मुझे कोई धक्का नहीं लगा। इसका अर्थ यह नहीं कि सन्तानोत्पत्ति आवश्यक है। परन्तु यह कि यदि संतानोत्पत्ति करनी हो तो धार्मिक रूप से विवाह संस्कार होना आवश्यक है। जिसे सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा न हो उसे विवाह करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं। वासना की तृप्ति के लिए किया विवाह ही नही है, व्यभिचार है। अतः आज के संस्कार का यही अर्थ है कि संभोग तभी किया जाय जब स्पष्टतः संतान की इच्छा हो। और ऐसा प्रार्थना के साथ करना चाहिये। इसके पहले का काम प्रेमाचार नहीं है जिसका उद्देश्य लैङ्गिक उत्तेजना और सुख की प्राप्ति है।

इस प्रकार जीवन भर में स्त्री-पुरुष केवल एक बार संभोग कर सकते हैं, यदि उन्हें दूसरे सन्तान की इच्छा न हो। जो स्वस्थ नहीं हैं उनके संभोग करने की आवश्यकता नहीं और यदि वे ऐसा करें तो केवल व्यभिचार होगा। यदि तुमने यह समझा हो कि विवाह वासना-तृप्ति के लिए ही किया जाता है तो इसे भूल जाओ। यह एक अंध-

विश्वास है। सारे संस्कार पवित्र अग्नि के सामने किये जाते हैं। अग्नि को अपनी सारी वासना भस्म कर डालते हो। मैं तुमसे एक और प्रचलित अंधविश्वास से बचने को कहूँगा। यह कहा जाता है कि निरोध और आत्मसंयम ठीक नहीं और लैङ्गिक भूख की स्वतन्त्र तृप्ति तथा स्वच्छन्द प्रेम नितान्त स्वाभाविक है।

इससे अधिक भयानक अंधविश्वास कोई रहा ही नही। हो सकता है तुम आदर्श की प्राप्ति में असमर्थ हो, किन्तु इससे यह अर्थ नहीं कि तुम अधर्म को धर्म मानो, और आदर्श को अपवित्र करो। अपनी कम-जोरी के समय में जो मैं कह रहा हूँ, उसे स्मरण करो। इससे तुम बच सकोगे और दृढ़ होगे। विवाह का उद्देश्य ही संयम और वासना का परिस्करण है। यदि इसका कोई और उद्देश्य है, तो वह विवाह नहीं और उसका उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति नहीं, बल्कि कुछ और ही है।

तुम विवाह द्वारा मित्रता और समानता के सूत्र में बँध रहे हो। यदि एक स्वामी है तो दूसरी स्वामिनी – दोनों जीवन में एक दूसरे का स्वामी, सहायक और सहयोगी है। मै बालकों से यह कहता हूँ 'तुम लडकियो में ऐसी भावना जगाओ, उनके सच्चे शिक्षक और मार्ग प्रदर्शक बनो। लेकिन कभी उन्हें रोकने या गलत रास्ता दिखाने की चेष्टा मत करो। अपने भीतर विचारो, शब्दों और कार्यों में साम्य रक्खो। तुम्हारी आत्मा एक हो, तुम्हारे बीच कुछ गोपनीय न रहे।

आडम्बर मत करो। जो तुम्हारे लिए असाध्य हो उसमें अपना स्वास्थ्य मत नष्ट करो। संयम से स्वास्थ्य कभी नहीं बिगड़ता बल्कि बाह्य

दमन से आत्म संयत पुरुष को दिन प्रति दिन अधिक शक्ति और शान्ति प्राप्त होती है। सब से पहले विचारों का सयम होना चाहिये। अपनी कमी का अनुभव करो और जो तुम कर सको उतना ही करो। मैंने तुमको आदर्श बताया है और तुम इसे प्राप्त करने की यथाशक्ति चेष्टा करो। यदि तुम असफल रहे तो दु.ख और लज्जा की बात नहीं। मैंने यही बताया है कि यज्ञोपवीत-सस्कार की भाँति विवाह भी एक पवित्र संस्कार और नया जन्म है। मेरे कथन से तुम्हें कमजोरी और भय नहीं मानना चाहिये। विचार, शब्द और कार्य का पूर्ण सामंजस्य प्राप्त करना ही सदा तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये। विचारों को पवित्र रक्खो, फिर सब ठीक हो जायगा। विचारों से अधिक शक्तिशाली कुछ नहीं है। कवि शब्द का और शब्द विचार का अनुगामी है। सारा संसार एक महान विचार का परिणाम है और जब विचार महान है और पवित्र होता है तो उसका फल महान और पवित्र ही होता है। यह पवित्र आदर्श तुम्हारा कवच बने, यही मेरी कामना है और मैं विश्वास दिलाता हूँ किसी प्रकार की लालच तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकती और न किसी प्रकार की अपवित्रता ही तुम्हें छू सकती है।

जो तमाम सस्कार बताये गये हैं, उन्हें याद करो। मधुपर्क संस्कार ही को लो। सारा संसार मधुमय है और सबको अपने अपने भाग लेने पर तुम भी अपना भाग लो। इससे त्यक्त भाव के साथ भाग का बोध होता है।

उनसे एक वर ने पूछा क्या यदि सन्तानोत्पत्ति न करना हो, तो विवाह होना नहीं चाहिये।

निश्चय ही न होना चाहिये। मैं प्लेटो के मतानुसार किये गये विवाह में विश्वास नहीं करता। कुछ लोगों ने स्त्रियों की रक्षा के लिए विवाह किये थे, किन्तु उनका शारीरिक एकता का उद्देश्य न था और इस तरह के विवाह कम हुए भी हैं। पवित्र विवाहित जीवन के विषय में जो कुछ मैने लिखा है, उसे तुम्हें पढ़ना चाहिये। मैं महाभारत में प्रतिदिन जो कुछ पढ़ता हूँ उसका मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ रहा है। ऐसा कहा गया है कि व्यास ने नियोग किया था वे सुन्दर नहीं, वरन् इसके विरूद्ध ही थे। ऐसा दिखाया गया है कि वे भयानक थे और उन्होंने संयोग के पूर्व अपने सारे शरीर में घी लगाया था। उन्होंने सभोग वासना के लिए नहीं बल्कि संतानोत्पत्ति के लिए किया था। सतान की इच्छा स्वाभाविक है और जब एक बार यह इच्छा पूरी हो जाय फिर पति पत्नी मिलन की आवश्कता नही।

मनु ने पहले बच्चे को धर्मज कहा है—कर्तव्य की भावना से उत्पन्न किया गया—और उसके बाद वालो को कामज लैङ्गिक सम्बन्धी नियमों का यह सार है और ईश्वर नियम के अतिरिक्त है ही क्या? नियम पूर्वक चलना ही ईश्वर की आज्ञा मानना है। याद रखो, तुमसे तीन बार दुहराने को कहा गया था। मैं किसी प्रकार नियमोका उल्लंघन नहीं करूंगा। यदि थोड़े भी लोग नियम पूर्वक रहते तो एक हृष्ट पुष्ट और सच्चे पुरुषों और स्त्रियों की जाति बन जाती।

याद रक्खो, मुझे अपने विवाहित जीवन का आनन्द तब मिला, जब मैंने 'बा' की ओर वासना की दृष्टि से देखना छोड़ दिया। मैंने उस समय

संयम की प्रतिज्ञा ली जब पूर्ण युवक था और समाज द्वारा स्वीकृत रूप से विवाहित जीवन का आनन्द ले सकता था। यकायक मुझे ज्ञात हुआ की मेरा जन्म एक विशेष संदेश देने को हुआ था। जब मेरा विवाह हुआ था तो मैंने ऐसा नहीं जाना था। लेकिन सचेत होने पर मैंने देखा कि विवाह जिस संदेश को लेकर मेरे पास आया था, विवाह उसी के लिए था। मैंने अपना धर्म पहचाना। हमें सच्चा सुख प्रतिज्ञा लेने के बाद ही मिला। वैसे तो 'बा, दुबली पतली दिखाई देती है, किन्तु उनका गठन सुन्दर है और वे सुबह से शाम तक काम करती है। यदि मैं उन्हें अपनी वासना का साधन बनाये रहता तो ऐसा वह कभी नही कर पाती।

फिर भी इस विचार से कि मैंने कुछ वर्ष तक विवाहित जीवन का भोग कर लिया था, मैं देर में सचेत हुआ। ठीक समय पर जगाये जा रहे हो, यह तुम्हारा सौभाग्य है। मेरे विवाह के समय परिस्थितियाँ बडी बुरी थी और तुम्हारे लिए परिस्थितियाँ बडी मंगल सूचक हैं। मुझमें एक ही चीज थी, मुझे रास्ता दिखाती रही और वह थी सत्यता। इसी ने मुझे बचाया। सत्य मेरे जीवन की नीव है। ब्रह्मचर्य और अहिंसावाद मे सत्य से ही आये। तुम कुछ भी करो, तुम्हें अपने और संसार के प्रति सच्चा होना चाहिये। अपने विचारो को मत छिपाओ। यदि उन्हें प्रकट करने में लज्जा आती हो तो उनको सोचना और भी लज्जाजनक है।

आश्चर्यजनक निष्कर्ष

प्रकाशक की भूमिका के अनुसार विलियम आर थर्सटन संयुक्त राष्ट्र में एक मेजर थे, जिसमें उन्होंने दस साल काम किया था। और इतने समय में उन्होंने चीन इत्यादि कई देशों के विषय में विभिन्न अनुभव किये। उन्होंने अपनी यात्राओं में विवाह के नियमों और रीतिरिवाजों का अध्ययन किया और फलस्वरूप उन्हें इस पर एक पुस्तक लिखने की इच्छा हुई। इस पुस्तक में जिसका नाम 'विवाह के सम्बन्ध में थर्सटन के विचार' है और जो गतवर्ष न्यूयार्क के टिफैनी प्रेस से निकली है, केवल ३२ पृष्ठ हैं और वह एक घण्टे से कम में पढ़ी जा सकती है। लेखक ने विस्तृत रूप से तर्क वितर्क नहीं किया है, बल्कि कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जो प्रकाशक के मतानुसार आश्चर्यजनक हैं। प्राक्कथन में लेखक ने यह निश्चित रूप से कहा है कि उनके निष्कर्ष, युद्ध के व्यक्तिगत अनुभवों, हकीमों के निरीक्षणों और सामाजिक स्वास्थ्य पाठ तथा औषधि सम्बन्धी गणना के आधार पर निकाले गये हैं। उनके निष्कर्ष ये हैं।

१—"प्रकृति सदा से यही चाहती है कि स्त्री अपने निवास और भोजन के लिए तथा सन्तानोत्पत्ति का स्वाभाविक अधिकार प्राप्त करने के लिए पुरुष के साथ बँधी रहे और वह एक ही घर और शय्या सेवन करने को, चाहे वह अभिलाषी हो या न बाध्य रहे।

२—विवाहित जीवन में प्रतिदिन जो कलह और अशान्ति प्रचलित सामाजिक नियमों और रीति रिवाजों के कारण उत्पन्न होते हैं, उनसे ६०

प्रतिशत स्त्रियाँ अंशतः वेश्याओं का जीवन व्यतीत करती हैं। ऐसा केवल इसलिए होता है कि स्त्रियों को यह विश्वास कराया जाता है कि इस प्रकार का वेश्याजीवन नियमानुसार होने तथा अपने पतियों का प्रेम प्राप्त करने के लिए आवश्यक होने के कारण उचित और स्वाभाविक है।"

लेखक ने आगे चल कर असंयत और सतत संभोग के परिणाम दिखाये हैं, जिन्हें मैं निम्नलिखित रूप में रख रहा हूँ।

(अ ' स्त्रियों के अधिक ...होने, असामयिक रूप से विकसित होने, रोगी, क्रोधी, अशान्त बाल-बच्चा की ठीक से देखभाल करने में असमर्थ होने का कारण यही है।"

(ब) "गरीबों में इससे अनचाही संतान वृद्धि होती है।"

(स) "सम्पन्न लोगों में असंयत संभोग का परिणाम संतति निरोध के कृत्रिम साधनों का प्रयोग और गर्भपात होता है।"

"यदि बड़े पैमाने पर लोगों में सन्तति निरोध या किसी भी रूप में कृत्रिम साधनों का प्रयोग स्त्रियों के लिए किया जाय, तो सारी जाति रोगग्रस्त, चरित्रभ्रष्ट और अन्त में वह नष्ट हो जायगी।" *

(द) "अधिक संभोग से सुन्दर जीविका उपार्जन के लिए आवश्यक शक्ति का नाश होता है।" "आजकल संयुक्तराष्ट्र में पुरुषों की अपेक्षा २० लाख स्त्रियाँ अधिक विधवा हैं। इनमें से युद्ध में मारे गये पुरुषों के कारण विधवाएँ कम हैं।" *

---

* लेखक के शब्द हैं।

(य) "आजकल प्रचलित विवाह के नियमों और रीतियों में स्त्री और पुरुष दोनों में निस्सारता की भावना जागती है।" "संसार में आज जो निर्धनता और बड़े बड़े शहरों में जो अशान्ति और कष्ट फैला हुआ है, वह इसलिए नहीं कि करने के लिए अच्छे काम नहीं हैं, बल्कि इसी लिए कि वर्तमान विवाह के नियमों के कारण, असयत भोग विलास फैला हुआ है।" *

(फ) "मनुष्य जाति के भविष्य के विचार से सब से भयानक गर्भ के दिनों का संभोग है।"

इसके बाद लेखक ने चीन और भारत के विषय में विचार प्रकट किये हैं जिस पर मैं कुछ नहीं कहना चाहता। यहां पहुँच कर पुस्तक का आधा समाप्त हो जाता है। दूसरे आधे में उन्होंने कुछ सुझाव दिये हैं। उनमें मुख्य यह कि पति और पत्नी अलग कमरों में और अनिवार्य रूप से अलग अलग बिस्तरों पर रहें और उन्हें तभी इकट्ठा होना चाहिये जब उनकी और विशेष रूप से स्त्री की इच्छा हो। विवाह के नियमों में जिन परिवर्तनों को सुझाया गया है, उन्हें मैं नहीं लिखना चाहता। ससार भर में विवाह के नियमों में जो एक लगभग सर्वनिष्ठ बात है, वह है एक ही कमरे में और एक ही बिस्तरे का सेवन और इनकी लेखक ने तीव्र अलोचना की है। और यह ठीक है। इसमें कोई सदेह नहीं कि हमारा बहुत कुछ वासना चाहे स्त्री हो या पुरुष, यह धार्मिक

* लेखक के शब्द हैं।

अन्धविश्वास है, कि विवाहित स्त्री पुरुष एक ही कमरे में और एक ही बिस्तरे पर रहें। इस प्रकार के अन्धविश्वास से प्रभावित वातावरण मे रहने के कारण हम इसके भयानक परिणाम को नही समझ सकते।

लेखक ने कृत्रिम साधनो का भी उतना ही तीव्र विरोध किया है।

लेखक के अन्य सुझावों मे से बहुत से ऐसे है जो कार्य रूप मे हमारे लिए अधिक लाभदायक नही और उनके लिए कानून की सम्मति भी आवश्यक है। किन्तु प्रत्येक पति और पत्नी यह दृढ निश्चय कर सकती है कि आज से अलग कमरो और बिस्तरो का प्रयोग करेंगे और केवल उस पवित्र कार्य के लिए मिलेंगे जो पुरुषो और पशुओ दोनो के लिए है।

पशु इस नियम का पालन बराबर करता है। मनुष्य ने गलत रास्ता चुना और यह बडे दु:ख की बात है। कृत्रिम साधनो के प्रयोग करने से हर स्त्री इनकार कर सकती है। पुरुष और स्त्री दोनो को यह समझ लेना चाहिये कि कामेच्छा के दमन से रोग नही पैदा होते, बल्कि स्वास्थ्य और स्फूर्ति मिलती है। यदि शरीर के साथ मन भी सहयोग दे।

लेखक का विश्वास है कि ससार में फैली हुई तमाम खराबियो के लिए आजकल के विवाह के नियम ही उत्तरदायी है। मैने जो दो सुझाव रखे है, उनके निर्णय के लिए लेखक की भाँति विश्वास करने की आवश्यकता नही। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध पर स्वस्थ रूप से विचार करें और भविष्य की पीढ़ी के लिए अपने को संरक्षक समझें तो बहुत से कष्ट मिट जायँगे।

संतान निग्रह की एक समर्थक

गरीबों की सेवा में देने के लिए अपना सर्वस्व लेकर आने वाले उस गरीब के विपरीत श्रीमती हाऊमाटिन थी। वे इङ्गलैंड की थीं और संतान निग्रह आन्दोलन की उत्साही कार्यकर्त्री थी। वे अपना मन्त्र हिन्दुस्तान की गरीब जनता की सहायता के लिए इङ्गलैंड से लेकर आयी थीं और उनके आने का एक उद्देश्य यह भी था कि वे या तो गांधी जी को अपने विचारों का बनावें या स्वयं उनके विचारों की हो जायँ। वे पहली वार हिन्दोस्तान में आयी थीं। गरीबों को उन्होंने पहले शायद ही देखा हो। इस लिए वे ब्रिटिश गरीब बस्तियों के बारे में अपने अनुभवों की जिक्र करती रही और 'बेचारी स्त्री' के पक्ष समर्थन में जोरदार दलीलें रखी जिसे बली पुरुष की इच्छा के सम्मुख नत होना पड़ता है।

उनकी पहली ही बात पर महात्मा गांधी ने कहा, कोई बेचारी, स्त्री तो है ही नहीं। 'बेचारी स्त्री, पुरुष की अपेक्षा कहीं सबल है और यदि आप हिन्दोस्तान के गाँवों में चलें, तो मैं आपको यह दिखा सकता हूँ। वह आपसे बतायेगी कि यदि वह इसे न पसन्द करे तो उसको बाध्य करनेवाला स्त्री या पुरुष कोई पैदा ही नहीं हुआ। यह मैं अपनी पत्नी के सम्बन्ध में हुए अपने अनुभव द्वारा कह रहा हूँ और मैं उदाहरण अकेला नहीं। यदि दब जाने की अपेक्षा मर जाने का संकल्प हो, तो कोई दानव भी एक स्त्री को जीतने के लिए विवश नहीं करता। यह तो एक पारस्परिक समझौते की

बात है। पुरुष और स्त्री दोनों पाशविक और दैवी शक्तियो का मिश्रण है। यदि हम पाशविक शक्ति का दमन कर सकें, तो अच्छा ही है।"

"लेकिन यदि पुरुष अधिक सन्तान न पैदा करने के लिए दूसरी स्त्रियों के पास जाता है तो स्त्री के पास क्या चारा है?"

"सो अब आप अपना तर्क बदल रहे हैं। यदि आप अपनी बात अच्छी तरह न समझ लेंगे तो गलत निर्णय पर पहुँचना अनिवार्य है। बातों की कल्पना करके पुरुष को अपुरुष और स्त्री को अस्त्री बनाने की कोशिश न करे। अपने सिद्धान्त का आधार समझने में जब मैंने यह कहा था कि आपका सतान निग्रह प्रचार ही पर्याप्त भूमिका है, तो उस परिहास के पीछे एक गंभीर बात थी, क्योकि मै जानता हूँ कि वहुत से पुरुष और स्त्री ऐसे है जो समझते हैं कि संतान निग्रह में ही उनकी मुक्ति है।"

श्रीमति हाऊ मार्टिन बोलीं, "मैं इसमें संसार की मुक्ति नहीं देखती पर मेरा कहना यह है कि बिना किसी प्रकार की संतान निग्रह के मुक्ति नहीं हो सकती। हो सकता है कि आप इसके लिए एक मार्ग ग्रहण करें और मैं दूसरा। मैं आपके मार्ग का समर्थन करती हूँ, लेकिन हर अव-सर पर नहीं। आप, ऐसा जान पड़ता है एक सुन्दर कार्य को निषेधपूर्ण समझते हैं। दो पशु जब वे एक नवजीवन की सृष्टि करने जाने लगते हैं तब वे दैविकता के अधिक निकट होते हैं। उस कार्य में कुछ बहुत ही सुन्दर है।"

"यहाँ भी अब फिर मुझमें है—गाँधी जी ने उत्तर दिया, "मैं स्वीकार करता हूँ कि नवजीवन की उत्पत्ति दैविकता के अधिक निकट है। मैं

सिर्फ यह चाहता हूँ कि मनुष्य उस कार्य के निकट एक दैविक भाव के साथ जाय। मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि स्त्री पुरुष का सम्मिलन केवल नव जीवन की सृष्टि की ही कामना से हो, दूसरी से नहीं। लेकिन यदि वे दोनों केवल प्रेमालिंगन के लिए एक दूसरे के निकट जाते हैं, तो वे पाशविकता के अधिक निकट हो जाते हैं। दुर्भाग्यवश आदमी यह भूल जाता है कि वह दैविकता के निकट है और पाशविक अन्तर्प्रेरणा के पीछे पड़ कर पशु के समान हो जाता है।"

"लेकिन आप पशुत्व से क्यों घृणा करते हैं?'

"मैं नहीं करता। पशु अपनी प्रकृति के नियम को पूरा करता है। शेर अपने गौरव में एक सुन्दर जीवन है। मुझे खा लेने का उसे पूरा अधिकार है। लेकिन पंजे बढ़ा कर आप पर झपट पड़ने का अधिकार मुझे नहीं है। उस स्थिति में, मैं अपने को नीचे गिरा देता हूँ और पशु से भी बदतर बन जाता हूँ।"

"श्रीमति हाऊ मार्टिन ने कहा, "मुझे खेद है कि मैंने अपनी बात इस बुरे ढङ्ग से कही। मैं यह स्वीकार करती हूँ कि बहुत-सी स्थिति में इससे उसकी मुक्ति नहीं। लेकिन उच्च जीवन के लिये सहायक अवश्य होगा। मैं समझती हूँ, आप मेरा अभिप्राय समझ गये हों। यद्यपि मुझे भय है कि मैं अपने अभिप्राय को स्पष्ट नहीं कर सकती।"

"न, न, मैं आपसे कोई अनुचित लाभ उठाना नहीं चाहता। किन्तु मैं चाहता हूँ कि आप मेरे दृष्टिकोण के सम्बन्ध में समझ लें, भ्रान्तियों के साथ न मोंगे। पुरुष को दो मार्गों में से एक को चुनना होगा—उन्नति-

शील या अधोशील किन्तु यदि उसमें पशुत्व है, तो वह अधोशील मार्ग को अधिक आसानी से चुनेगा। और विशेषतया जब कि वह मार्ग उसे एक सुन्दर आवरण के अन्दर पेश किया जायगा।

पाप को आसानी से स्वीकार करता है यदि वह सदाचार के आवरण के साथ हो और यही काम मेरी स्टोक्स आदि कर रहे हैं। यदि मुझे संभोग-कार्य का प्रचार करना होता, तो मैं जानता हूँ कि पुरुष इसे तुरन्त स्वीकार कर लेता। मैं जानता हूँ कि आप ऐसे लोग स्वार्थ रहित जोश मे अपने सिद्धान्त के लिये यदि गला फाड फाड कर चिल्लाये तो प्रत्यक्ष रूप से आपको सफलता भी मिल सकती है, लेकिन मै यह भी जानता हूँ कि आप निश्चित अत भी प्राप्त करें। इसमें सन्देह नहीं जो हानि आप कर रही हैं उसका ज्ञान आपको न होगा। अधोशील अन्तर्प्रेरणा के लिये न तो किसी प्रकार के प्रचार की जरूरत है, न तर्क की। यह तो उनमें है ही। और आप इसे संयमित और नियन्त्रित न करेंगी तो बीमारियों का खतरा है।'

श्रीमती हाऊमार्टिन जो अभी तक ऐसा प्रतीत होता था कि दैविक और पाशविक के अन्तर को स्वीकार कर रही थीं, बोलीं कि उन दोनो में कोई अन्तर नहीं है और जैसा कि लोग कल्पना करते है, उससे कहीं अधिक वे दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं। वास्तव में संतान निग्रह के सिद्धान्त के पीछे यही बात है और उसके समर्थक यह भूल जाते है कि यही उनका आनन्द चरण है।

"सो आपका विचार यह है कि पाशविक और दैवी एक ही है। क्या आपको सूर्य में विश्वास है? और यदि आप विश्वास करती हैं, तो

क्या आप यही नहीं सोचतीं कि छाया भी होगा ?" गांधी जी ने पूछा।

"आप छाया को पाशविक क्यों कहते हैं ?"

"यदि आप चाहें तो इसे 'अनीश्वर' कह सकती हैं।"

"मैं यह नहीं समझती कि छाया में 'अनीश्वर' है। जीवन तो सब जगह है ?"

"जीवन के अभाव की सी एक चीज है। क्या आप जानती हैं कि हिन्दू शरीर में जीवन के निकल जाने के बाद अपने प्रिय से प्रिय जन के शरीर को जला कर राख कर देते हैं। सभी जीवों में एक अनिवार्य एकता है, लेकिन विरोध भी है और मनुष्य को उसे चीर कर एकता प्राप्त करनी पड़ती है, लेकिन मस्तिष्क द्वारा नहीं मैं या कि आप करने की कोशिश कर रही हैं। जहाँ सत्य है वहाँ असत्य भी है। जहाँ प्रकाश है वहाँ छाया भी होगी विस्तृत जागृति का अनुभव आप तबतक नहीं कर सकतीं जबतक कि आप बुद्धि, ज्ञान और शरीर को पूर्णतया अपने अधिकार में न कर लेंगी।"

श्रीमती हाऊ मार्टिन परेशान दिखाई पड़ने लगीं और समय बीतता जा रहा था, लेकिन गांधी जी ने कहा—"नहीं, मैं आपको और अधिक समय देने को तैयार हूँ। लेकिन इसके लिए आप वर्धा आवें और मेरे पास ठहरें मैं भी आप ही की तरह इसका समर्थक हूँ और जब तक आप मुझे अपने विचारों वाला न बना लें या मैं आपको अपने विचारों वाली न बना लूँ, तब तक आप हिन्दोस्तान से न जायें।"

दूसरे कामों के कारण यह वार्तालाप समाप्त हो गया, लेकिन जब मैं उस वार्तालाप को सुन रहा था तो मुझे असीसी के संत फांसिस के यह

शब्द स्मरण हो आये—"प्रकाश ने नीचे की ओर देखा तो उसे अंधकार दिखाई दिया 'मैं वहाँ जाऊँगा' प्रकाश ने कहा। शांति ने नीचे की ओर देखा तो उसे यह दिखाई दिया और शांति ने कहा,—मैं वहाँ जाऊँगी, प्रेम ने नीचे की ओर देखा तो घृणा दिखाई दी। प्रेम ने कहा, मैं वहाँ जाऊँगा' और यह शब्द मांस पिंड बनकर हमारे साथ रहने लगे।"

श्रीमती सैंगर और संतति निग्रह

श्रीमती सैंगर ने मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है :—

"अपने लेख (विदेशियों के नये नये हमले) में मेरे और गांधीजी के बीच हुई बातचीत देते हुए आप कहते हैं कि 'इल्लस्ट्रेटेड वीकल' के अपने लेख में मैंने उस बातचीत का सिर्फ एक ही पहलू रखा है। आपकी यह बात बिल्कुल ठीक है। उस लेख में, दरअसल, उसी पर मैं विचार भी करना चाहती थी।

मुझे यह भी बता देना चाहिये। उस लेख को छपने के लिये भेजने से पहले मैंने आपकी और गांधी जी की एक प्रिय और वफादार मित्र म्यूरियल लेस्टर को पढ़कर सुना दिया था—और जिसे आप "परदे की ओट मे दुर्भाव" कहते हैं, वह बात उन्होंने ही सुझाई थी। कृपया इस बातका यकीन रखें कि जो बहादुर स्त्री-पुरुष हिन्दुस्तानकी आजादीके लिए प्रयत्न कर रहे हैं उन सबके प्रति मेरे मन में अत्यधिक श्रद्धा और सम्मान का ही भाव

है। मैंने अभी तक जो कुछ किया है उस पर आप नजर डालें तो हिन्दुस्तान में आजादी प्राप्त करने के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों की मदद की गरज से सन् १९१७ में जो पहला दल अमेरिका में संगठित हुआ था, उसमें मेरा भी नाम आपको मिलेगा।

एक और बात भी आपके लेख में ऐसी है जिसमें मैं समझती हूँ, आप गलती पर हैं। वह यह कि आप उसमें यह जाहिर करते मालूम पड़ते हैं कि हमारी बातचीत में गांधी जी ने (ऋतुकाल के बाद के कुछ दिनों को छोड़कर) ऐसे दिनों में समागम के उपाय को स्वीकार कर लिया है, जिनमें गर्भ रहने की सम्भावना प्राप्त नहीं होती। मेरे ख्याल में आप टाइप किये हुए वक्तव्य को देखें तो उसमें उनका यह कथन आपको मिलेगा, यह बात मुझे उतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है।" हालांकि मैंने और निश्चित बात कहने का आग्रह किया। लेकिन इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं कहा। ऐसी हालत में आपने सार्वजनिक रूप से जो कथन उनका बताया है, मेरे ख्याल में, वह आपने ठीक नहीं किया, और अन्त में आपने प्रचारकों के "व्यापार" की जो बात लिखी है, मैं नहीं समझती कि उसमें गांधी जी आपसे सहमत होंगे। वह क्या, और जिस भावना का वह सूचक है वह आप जैसे व्यक्ति के लायक नहीं है जिसने कि निःस्वार्थ भाव से जनसेवा का कार्य किया है।

संतति-निग्रह के कार्यकर्त्ता जिस बात को मानव स्वतन्त्रता एवं प्रगति के लिये मनुष्य मात्र का मौलिक स्वत्व मानते हैं उसके लिये

निःस्वार्थ भाव से और बिना किसी परिश्रम के उन्होंने संग्राम किया है और अभी भी कर रहे हैं। फिर जो अपना विरोधी हो उसके बारे में यों ही कोई ऐसी बात कह देना तो सर्वथा अनुचित असौजन्य पूर्ण और असत्य है, जो दरअसल बिलकुल बे-बुनियाद हो।

इसमें जहाँ तक "पर्दे की ओट में दुर्भाव" से सम्बन्ध है, मैं प्रसन्नता से और कृतज्ञता पूर्वक अपनी भूल स्वीकार करता हूँ। लेकिन यह मानना होगा कि जिस शोखी और तुनक मिजाजी के लहजे में वह लेख लिखा हुआ है उससे यही भाव टपकता है, हालांकि अब मैं यह मान लेता हूँ कि उनका ऐसा भाव नहीं था।

दूसरी गलती के बारे में श्रीमती सैंगर को यह याद रखना चाहिये कि उन्होंने तो ' बातचीत के सिर्फ एक पहलू को ही" लिया है। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं नहीं समझता कि यह कहकर कि ऋतुकाल के बाद के कुछ दिनों को छोड़कर ऐसे दिनों में समागम की बात गांधी जी सहन कर लेंगे, जिनमें गर्भ रहने की सम्भावना प्राप्त नहीं होती, क्योंकि इसमे आत्मसंयम की थोड़ी बहुत भावना तो है। मैंने उन्हें किसी ऐसी स्थिति में डाल दिया है जो उन्हें पसन्द नहीं है। मैं तो सिर्फ यही बताना चाहता था कि अपने विरोधी की बात को भी जहाँ तक सम्भव हो, किस तत्परता के साथ गांधीजी स्वीकार कर लेते हैं। उन्होंने जिस कारण यह कहा कि "यह बात मुझे उतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है" वह इस विषय में बड़ी मुद्दे की बात है। क्योंकि श्रीमती सैंगर के उपाय (कृत्रिम संतति निग्रह) से जहाँ महीने

के सभी दिनों में विषय भोग में प्रवृत्त होने की छुट्टी मिल जाती है, वहाँ इस विशेष उपाय से किसी हद तक तो आत्मसंयम होता ही है।

"व्यापार" वाली बात मैं समझती हूँ, श्रीमती सेंगर को बहुत बुरी लगी है। लेकिन खुद श्रीमती सेंगर पर मैंने ऐसा कोई आरोप नहीं किया न मेरा ऐसा कोई इरादा ही था। क्योंकि मुझे मालूम है, उन्होंने अपने उद्देश्य के लिये बड़ी बहादुरी और निःस्वार्थ भाव से लड़ाई लड़ी है। मगर यह बात बिलकुल गलत भी नहीं है कि संतति-निग्रह के लिये आजकल जो प्रचार हो रहा है वह तथा संतति-निग्रह के प्रायः सभी उत्साही समर्थकों के यहाँ बिक्री के लिए इस सम्बन्ध का जो आकर्षक साहित्य या औजार आदि होते हैं, वह सब मिलाकर बहुत भद्दा है। इन सबसे तो उस उद्देश्य को हानि ही पहुँचती है, जिसके लिये कि श्रीमती सेंगर निःस्वार्थ भाव से इतना उद्योग कर रही है।

अरण्य-रोदन

"अभी हाल ही में संतति नियमन की प्रचारिका मिसेज सेंगर के साथ आपकी मुलाकात पर एक समालोचना मैंने पढी है। इसका मुझ पर इतना गहरा असर हुआ है कि आपके दृष्टि विन्दु पर संतोष और पसन्दगी जाहिर करने के लिये मैं आपको यह पत्र लिखने बैठा हूँ। आपकी हिम्मत के लिये ईश्वर सदा आपका कल्याण करें।

पिछले तीस साल से मैं लडकों के पढ़ाने का काम करता हूँ मैंने हमेशा उन्हें देह दमन और निःस्वार्थ जीवन विताने के लिये तालीम दी है। जब मिसेज सेंगर हमारे आस पास प्रचार-कार्य कर रही थीं, तब हाई स्कूल के लडके लडकियाँ उनकी दी हुई सूचनाओं का उपभोग करने लग गये थे। और परिणाम का डर दूर हो जाने से उनमें खूब व्यभिचार चल पडा था। अगर मिसेज सेंगर की शिक्षा कहीं व्यापक हो गयी तो सारा समाज विषय सेवन के पीछे पड जायगा और शुद्ध प्रेम का दुनिया से नामोनिशान तक मिट जायगा। मैं मानता हूँ कि जनता को उच्च आदर्शों की शिक्षा देने में सदियो लग जायँगे। पर यह काम शुरू करने के लिये अनुकूल से अनुकूल समय अभी है। मुझे डर है कि मिसेज सेंगर विषय को ही प्रेम समझ बैठी हैं। पर यह भूल है, क्योंकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है, विषय सेवन से इसकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

डॉ० एलेक्सिस केरल भी आपके साथ इस वात मे सहमत हैं कि संयम कभी हानिकारक सिद्ध नहीं होता, सिवाय उन लोगों के कि जो

दूसरी तरह अपने विषयों को उत्तेजित करते हों और पहले से ही अपने मन पर काबू खो चुके हों। मिसेज सेंगर का यह बनाया अधिकांश डाक्टर यह मानते हैं कि ब्रह्मचर्य पालन से हानि होती है, बिल्कुल गलत है। मैं तो देखता हूँ कि यहाँ कई बड़े बड़े डाक्टर अमेरिकन सोश्यल हाईजीन (सामाजिक आरोग्य शास्त्र) के विज्ञान शास्त्री ब्रह्मचर्य पालन को लाभदायक मानते हैं।

आप एक बड़ा नेक काम कर रहे हैं। मैं आपके जीवन-संग्राम के तमाम चढ़ाव उतारों का बहुत रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हूँ। आप जगत में उन इने गिने व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के प्रश्न पर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टि बिन्दु से विचार किया है। मैं आपको यह जताना चाहता हूँ कि महासागर के इस पार भी आपके आदर्शों के साथ सहानुभूति रखनेवाला आपका एक साथी यहाँ पर है।

हम इस नेक काम को जारी रखें ताकी नवयुवक वर्ग सच्ची बात को जान लें, क्योंकि भविष्य उसी वर्ग के हाथों में है।

अपने विद्यार्थियों के साथ अपने एक सम्वाद में से मैं छोटा-सा उद्धरण यहाँ देना चाहता हूँ— निर्माण करो, हमेशा निर्माण करो। निर्माण प्रवृत्ति में से तुम्हें श्रेय मिलेगा, उन्नति मिलेगी, उत्साह मिलेगा, उल्लास मिलेगा। पर अगर तुम अपनी निर्माणशक्ति को आज विषयतृप्ति का साधन बना लोगे तो तुम अपनी रक्षा-शक्ति पर अत्याचार करोगे और तुम्हारे आध्यात्मिक बल का नाश हो जायगा। रचना प्रवृत्ति-शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक का नाम जीवन है, यही आनन्द

है। अगर तुम प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना या संतति का निरोध करके विषय सेवन द्वारा सिर्फ इन्द्रिय सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करोगे, तो तुम प्रकृति के नियम का भंग और अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का हनन करोगे। इसका परिणाम यह होगा, कि अनिवार्य विषयाग्नि धधक उठेगी और आखिर निराशा तथा असफलता मे अन्त होगा। इससे तो हम कभी उन उच्च गुणों का विकास नही कर पायेंगे, जिनके बल पर हम उस नवीन मानव समाज की रचना कर सकें, जिससे कि दिव्यात्मा स्त्री पुरुष हो।

मैं जानता हूँ कि यह सब पूर्वकाल के नबियो के "अरण्य-रोदन" जैसी बात है, पर मेरा पक्का विश्वास है कि यही सच्चा रास्ता है और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी बन पडे पर मै कम से कम उँगली दिखाकर तो अपना समाधान कर लूँ।

संतति नियमन के कृत्रिम साधनो का निषेध करने वाले जो पत्र मुझे कभी कभी अमेरिका से मिलते रहे हैं, उन्हीं में से यह भी एक है। पर सुदूर पश्चिम से हिन्दुस्तान में जो सामाजिक साहित्य आता रहता है, उससे तो पढ़ने वाले के दिल पर बिलकुल जुदा असर पडता है मानो अमेरिका मे तो सिवा बेवकूफो के कोई भी इन आधुनिक साधनों का विरोध नहीं करते है जो मनुष्य को उस अंधविश्वास से मुक्ति प्रदान करते हैं जो अब तक शरीर को गुलाम बनाकर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऐहिक सुख से मनुष्य को वंचित करके उसके शरीर को निष्प्राण बना देने की शिक्षा देता चला आ रहा है। यह साहित्य भी उतना ही क्षणिक नशा पैदा करता है

जितना की वह कर्म जिसकी वह शिक्षा देता है, और जिसे उसके साधारण परिणाम के खतरे से बचाकर करने को वह प्रोत्साहन देता है। पश्चिम से आने वाले केवल उन पत्रों को मैं हरिजन के पाठकों के सामने नही पेश करता जिनमें व्यक्तिगत रूप से इन साधनो का निपेध होता है तो वे साधक दृष्टि से मेरे लिए उपयोगी है। साधारण पाठको के लिए उनका मूल्य बहुत ही कम है। पर यह पत्र खास तौर पर एक महत्त्व रखता है। क्योंकि यह ऐसे शिक्षक का है, जिसे तीस वर्ष का अनुभव है। यह हिन्दुस्तान के उन शिक्षको और जनता (स्त्री पुरुष) के लिए खास तौर पर मार्गदर्शक है, जो उस ज्वार के प्रबल प्रवाह में बहे जा रहे है। संतति नियामक साधनों के प्रयोग में शराब से अनन्त गुना प्रबल प्रलोभन होता है। पर इस मारक प्रलोभन के कारण वह उस चमकीली शराब की अपेक्षा अधिक जायज नही है और चूँकि दोनो का प्रचार बढ़ता ही जा रहा है, इस कारण निराश होकर न इनका विरोध करना भी छोड़ा जा सकता। अगर इनके विरोधियो को अपने कार्य की पवित्रता में श्रद्धा है तो उन्हें उसे बराबर जारी रखना चाहिए। ऐसे अरण्य रोदन से भी वह बल होता है जो मूढ जनसमुदाय के सुर में सुर मिलाने वाले की आवाज मे नही हो सकता क्योंकि अरण्य में रोनेवाले की आवाज मे चिन्तन और मनन के अलावा अटूट श्रद्धा होती है। वहाँ इस सर्वसाधारण के इस शोर की जड में विषय भोग की व्यक्तिगत लालसा और अनचाही सतति तथा दुखिया माताओ के प्रति झूठी और निरीभावुक सहानुभूति के अलावा और कुछ नहीं होता और

इस मामले में व्यक्तिगत अनुभव वाली दलील मे तो उतनी ही बुद्धि है, जितनी की एक शराबी के किसी कार्य में होती है। और सहानुभूति वाली दलील एक धोखे की टट्टी है, जिसके अन्दर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चों के तथा मातृत्व के कष्ट तो कल्याणकारी प्रकृति द्वारा नियोजित सजायें और हिदायतें हैं। समय और इन्द्रिय नियमन के कानून की जो परवा नहीं करेगा, वह तो एक तरह से अपनी खुदकशी ही कर लेगा। यह जीवन तो एक परीक्षा है। अगर हम इन्द्रियों का नियमन नहीं कर सकते, तो हम असफलता को न्यौता देते हैं। कायरों की तरह हम युद्ध से मुँह मोड कर जीवन के एक मात्र आनन्द से अपने आपको वंचित करते हैं।

सन्तति निग्रह

मेरे एक साथी ने जो मेरे लेखों को ध्यान के साथ पढ़ते रहते हैं, जब यह पढ़ा कि संतति निग्रह के लिये सम्भवत. मैं उन दिनों सहवास करने की बात स्वीकार कर लूँगा, जिनमें कि गर्भ रहने की सभावना नहीं होती, तो उन्हें बड़ी बेचैनी हुई। मैंने उन्हें यह समझाने की कोशिश की कि कृत्रिम साधनों से सतति निग्रह करने की बात/मुझे जितनी खलती है उतनी यह नहीं खलती, फिर यह है भी अधिकतर वैवाहिक दम्पतियों के ही लिये। आखिर बहस बढ़ते बढ़ते इतनी गहराई पर चलती गयी जिसकी हम दोनों में से किसी को आशा न थी। मैंने देखा कि यह बात भी उन मित्र को कृत्रिम साधनों से सतति निग्रह करने जैसी ही बुरी प्रतीत हुई। इससे मुझे/मालूम पड़ा कि यह मित्र स्मृतियों के इस बंधन को साधारण मनुष्यों के लिये व्यवहार योग्य समझते हैं कि पति-पत्नि को भी तभी सहवास करना चाहिये, जब कि उन्हें सचमुच संतानोत्पति की इच्छा हो। इस नियम को तो मैं जानता पहले से था, लेकिन उसे इस रूप में पहले कभी नहीं माना था जिस रूप में कि इस बातचीत के बाद मानने लगा हूँ। अभी तक तो पिछले कितने सालों से मैं इसे ऐसा पूर्ण आदर्श ही मानता आया हूँ जिस पर ज्यों का त्यों अमल नहीं हो सकता, इसलिए मैं समझता था कि सन्तानोत्पत्ति की खास इच्छा के बगैर भी विवाहित स्त्री-पुरुष जब तक एक दूसरे की रजामन्दी से सहवास करें तब तक वे वैवाहिक उद्देश्य की पूर्ति करते हुए स्मृतियों के आदेश

का भंग नहीं करते। लेकिन जिस नये रूप में अब मै स्मृति की बात को लेता हूँ, वह मेरे लिये मानों एक इलहाम है। स्मृतियों का कहना है कि जो विवाहित स्त्री-पुरुष इस आदेश को दृढता के साथ पालन करें, वे वैसे ही ब्रह्मचारी है जैसे अविवाहित रहकर सदाचारी जीवन व्यतीत करने वाले होते है। इसे अब मै इतनी अच्छी तरह समझ गया हूँ जैसे पहले कभी नही जानता था।

इस नये रूप से, अपनी काम वासना को तृप्त नहीं करना, बल्कि सन्तानोत्पत्ति की सहवास का एकमात्र उद्देश्य है। साधारण काम पूर्तियो, विवाह की इस दृष्टि से भोग ही माना जायगा। जिस आनन्द को हम अभी तक निर्दोष और वैध मानते आये है, उसके लिये ऐसे शब्द का प्रयोग कठोर तो मालूम होगा, लेकिन प्रचलित प्रथा की बात मै नही कर रहा हूँ बल्कि उस विवाह विज्ञान को ले रहा हूँ जिसे हिंदू ऋषियों ने बताया है। यह हो सकता है कि उन्होंने इसे ठीक ढङ्ग से न रक्खा हो, या वह बिल्कुल गलत ही हो, लेकिन मुझ जैसे आदमी के लिए तो जो स्मृतियो की कई बातों को अनुभव के आधारभूत मानता है, उनके अर्थ को पूरी तरह स्वीकार किये बगैर कोई चारा ही नहीं है। कुछ पुरानी बातों को उनके पूरे अर्थों में ग्रहण करके प्रयोग में लाने के अलावा और कोई ऐसा तरीका मैं नहीं जानता जिससे उनकी सचाई का पता लगाया जा सके, फिर वह जाँच कितनी ही कडी क्यों न प्रतीत हो और उससे निकलने वाले निष्कर्ष कितने ही कठोर क्यो न लगें। ऊपर मैंने जो कुछ कहा है उसको देखते हुए कृत्रिम साधनों या ऐसे दूसरे

उपायो से संतति निग्रह करना बड़ी भारी गलती है। अपनी जिम्मेवारी को पूरी तरह समझते हुए मैं यह लिख रहा हूँ। श्रीमती मार्गरेट सैंगर और उनके अनुयायियों के लिये मेरे मन में बड़े आदर का भाव है। अपने उद्देश्य के लिये उनके अन्दर जो अदम्य उत्साह है उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। यह भी मैं जानता हूँ कि स्त्रियों को अनचाहे बच्चों की सार सम्हाल और परवरिश करने के कारण कष्ट उठाना पड़ता है, उसके लिए उनके मन में स्त्रियों के प्रति बड़ी सहानुभूति है। साथ ही यह भी मैं जानता हूँ कि कृत्रिम संतति-निग्रह का अनेक उदार धर्माचार्यों, वैज्ञानिकों, विद्वानों और डाक्टरों ने भी समर्थन किया है, जिनमें बहुतों को तो मैं व्यक्तिगत रूप से जानता और मानता भी हूँ। लेकिन इस सम्बन्ध में मेरी जो मान्यता है, उसे अगर मैं पाठकों या कृत्रिम संतति निग्रह के महान् समर्थकों से छिपाऊँ तो मैं अपने ईश्वर के प्रति, जो कि सत्य के अलावा और कुछ नहीं है, सच्चा साबित नहीं होऊंगा। और अगर मैंने अपनी मान्यता को छिपाया तो यह निश्चित है कि अपनी गलती को अगर मेरी यह मान्यता गलत हो मैं कभी नहीं जान सकूँगा। अलावा इसके उन अनेक स्त्री-पुरुषों की खातिर भी मैं यह जाहिर कर रहा हूँ जो कि संतति निग्रह सहित अनेक नैतिक समस्याओं के बारे में मेरे आदेश और मत को स्वीकार करते हैं।

संतति निग्रह होना चाहिये इस बात पर तो वे भी सहमत हैं जो इसके लिये कृत्रिम साधनों का समर्थन करते हैं और वे भी जो अन्य उपाय बताते हैं। आत्म संयम से संतति निग्रह करने में जो कठिनाई होती

है उससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन अगर मनुष्य जाति को अपनी किस्मत जगानी है, तो इसके सिवाय इसकी पूर्ति का कोई उपाय ही नहीं है, क्योंकि यह मेरा आन्तरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनों से संतति निग्रह की बात सबने मंजूर कर ली तो मनुष्य जाति का बड़ा भारी नैतिक पतन होगा। कृत्रिम संतति निग्रह के समर्थक इसके विरुद्ध प्राय जो प्रमाण पेश करते है उनके बावजूद मैं यह कहता हूँ।

मेरा विश्वास है कि मुझमें अन्धविश्वास कोई नही है। यह नहीं मानता कि कोई बात इस लिये सत्य है, क्योंकि वह प्राचीन है। न मै यही मानता हूँ कि चूँकि वह प्राचीन है इसलिये उसे संदिग्ध समझा जाय। जीवन के आधारभूत कई ऐसी बातें है, जिन्हें हम यह समझकर योंही नही छोड़ सकते कि उन पर अमल करना मुश्किल है।

इससे शक नही कि आत्मसयम के द्वारा सतति निग्रह है कठिन, लेकिन अभी तक ऐसा कोई नजर नही आया जिसने सजीदगी के साथ उसकी उपयोगिता मे सदेह किया हो या यह न माना हो कि कृत्रिम साधनो की बनिस्बत यह ऊँचे दर्जे का है।

मै समझता हूँ जब हम सहवास को दृढ़ता से मर्यादित रखने के शास्त्रों के आदेश को पूर्णत स्वीकार कर लें और उसको ही सबसे बडे आनन्द का साधन न मानें तो यह अपेक्षाकृत आसान भी हो जायगा। जननेन्द्रियों का काम तो सिर्फ यही है कि विवाहित दम्पति के द्वारा यथासम्भव सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति करें। और यह तभी हो सकता है,

और होना चाहिये जब कि स्त्री पुरुष दोनों सहवास की नहीं, बल्कि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से, जो कि ऐसे सहवास का परिणाम होता है, प्रेरित हों। अतएव सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के बगैर सहवास करना अवैध समझा जाना चाहिये और उस पर नियन्त्रण लगाना चाहिये।

सन्तति निग्रह

हमारे समाज की आज ऐसी दशा है कि आत्मसंयम की प्रेरणा ही उससे नहीं मिलती। शुरू से हमारा पालन-पोषण ही उससे विपरीत दिशा में होता है। माता-पिता की मुख्य चिन्ता तो यही होती है कि जैसे भी हो अपनी सन्तान का ब्याह कर दें जिससे चूहों की तरह वे बच्चे जनते रहें। और अगर कहीं लड़की पैदा हो जाय तब तो जितनी भी कम उम्र में हो सके बिना यह सोचे कि इससे उसका कितना नैतिक पतन होगा, उसका ब्याह कर दिया जाता है। विवाह की रस्म भी क्या है मानो दावत और फजूल खर्ची की एक लम्बी सरदर्दी ही है। परिवार का जीवन भी वैसा ही होता है जैसे कि पहले से होता आया है, याने भोग की ओर बढ़ना ही होता है। छुट्टियां और त्योहार ही इस तरह रखे गये हैं जिससे वैषयिक रहन सहन की ओर ही अधिक से अधिक प्रवृत्ति होती है। जो साहित्य एक तरह से गले चपेटा जाता है उससे भी आमतौर पर विषयोन्मुख मनुष्यों का उसी ओर अग्रसर होने का प्रोत्साहन मिलता है। और अत्यन्त आधुनिक साहित्य तो प्राय. यही

शिक्षा देता है कि विषय भोग ही कर्तव्य है और पूर्ण संयम एक पाप है।

ऐसी हालत में कोई आश्चर्य नहीं कि कामपिपासा का नियंत्रण बिल्कुल असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। और अगर हम यह मानते हैं कि संतति निग्रह का अत्यन्त वांछनीय और बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सर्वथा निर्दोष साधन आत्म संयम ही है तो हमें सामाजिक आदर्श और वातावरण को ही बदलना होगा। इस इच्छित उद्देश्य की सिद्धि का एकमात्र उपाय यही है कि जो व्यक्ति आत्मसंयम साधन में विश्वास रखते हैं वे दूसरों को भी उससे प्रभावित करने के लिये अपने अटूट विश्वास के साथ खुद ही इसका अमल शुरू कर दें। ऐसे लोगों के लिये मैं समझता हूँ, विवाह की जिस धारणा की मैंने पिछले सप्ताह चर्चा की थी वह बहुत महत्त्व रखती है। उसे भली भाँति ग्रहण करने का मतलब है अपनी मन स्थिति को बिल्कुल बदल देना अर्थात् पूर्ण मानसिक क्रान्ति। यह नहीं कि कुछ चुने हुए व्यक्ति ही ऐसा करें बल्कि यह समस्त मानव जातियों के लिये नियम हो जाना चाहिये क्योंकि इसके भंग से मानव प्राणियों का दर्जा घटता है और अनचाहे बच्चों की वृद्धि, सदा बढ़ती रहने वाली बीमारियों की शृंखला और मनुष्य के नैतिक पतन के रूप में उन्हें तुरन्त ही इसकी सजा मिल जाती है। इसमें शक नहीं कि कृत्रिम साधनों द्वारा संतति निग्रह से नवजात शिशुओं की संख्यावृद्धि पर किसी हद तक अंकुश रहता है और साधारण स्थिति के मनुष्यों का थोड़ा बचाव हो जाता है। लेकिन व्यक्ति और

समाज की जो नैतिक हानि इससे होती है। उसका पार नहीं। क्योंकि जो लोग भोग के लिये ही अपनी कामवासना की तृप्ति करते हैं, उनके लिये जीवन का दृष्टिकोण ही बिल्कुल बदल जाता है। उनके लिये विवाह धार्मिक सम्बन्ध नहीं रहता, जिसका मतलब है उन सामाजिक उच्चादर्शों का बिलकुल बदल जाना जिन्हें हम अभी तक बहु-मूल्य निधि के रूप में मानते रहे हैं। निस्सन्देह जो लोग विवाह के पुराने आदर्शों को अन्धविश्वास मानते हैं, उन पर इस दलील का ज्यादा असर न होगा। इसलिये मेरी दलील सिर्फ उन लोगों के लिये है जो विवाह को एक पवित्र सम्बन्ध मानते हैं। और स्त्री को पाशविक आनन्द (भोग) का साधन नहीं, बल्कि सन्तान के धारण और संरक्षण का गुण रखने वाली माता के रूप में मानते हैं।

मैंने और मेरे साथी कार्यकर्त्ताओं ने आत्मसंयम की दिशा में जो प्रयत्न किया है, उसके अनुभव से मेरे विचार की पुष्टि होती है, जिसे कि मैंने यहाँ उपस्थित किया है। विवाह और प्राचीन धारणा के प्रखर प्रकाश में होने वाली खोज से इसे बहुत ज्यादा बल प्राप्त हो गया है। मेरे लिये तो अब विवाहित जीवन में ब्रह्मचर्य बिल्कुल स्वाभाविक और अनिवार्य स्थिति बनकर स्वयं विवाह की तरह एक मामूली बात हो गयी है। संतति निग्रह का और कोई उपाय व्यर्थ और अकथनीय मालूम पड़ता है। एक बार जहाँ स्त्री और पुरुष में इस विचार ने घर किया नहीं कि जननेन्द्रियों का एकमात्र महान कार्य सन्तानोत्पत्ति ही है। सन्तानोत्पत्ति के अलावा और किसी उद्देश्य से सहवास करने को अपने रज-वीर्य की दंडनीय क्षति

मानने लगेंगे और उसके फलस्वरूप स्त्री में होने वाली उत्तेजना को अपनी मूल्यवान शक्ति की वैसी ही दंडनीय क्षति समझेंगे। हमारे लिये समझना बहुत मुश्किल नही है कि प्राचीन काल के वैज्ञानिको ने वीर्य-रक्षा को क्यो इतना महत्व दिया है और क्यो इस बात पर उन्होने इतना जोर दिया है कि हम समाज के कल्याण के लिये उसे शक्ति के सर्वोत्कृष्ट रूप मे परिणत करें। उन्होने तो स्पष्ट रूप में इस बात की घोषणा की है कि जो (स्त्री-पुरुष) अपनी काम-वासना पर पूर्ण नियंत्रण कर ले, वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है जो और किसी उपाय से प्राप्त नही की जा सकती।

ऐसे महा ब्रह्मचारियो की अधिक संख्या क्या, एक भी ऐसा कोई हमे अपने बीच में दिखाई नही पडता। इससे पाठको को घबडाना नही चाहिये। अपने बीच जो ब्रह्मचारी आज हमें दिखाई देते है, वे सचमुच बहुत अपूर्ण नमूने है। उनके लिये तो बहुत यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे जिज्ञासु है जिन्होने अपने शरीर का तो संयम कर लिया है, पर मन पर अभी सयम नही कर पाये है। ऐसे दृढ वे अभी नहीं हुए हैं कि उन पर प्रलोभन का कोई असर ही न हो। लेकिन यह बात इसलिये नही है कि ब्रह्मचर्य की प्राप्ति बहुत दुरूह है। बल्कि सामाजिक वातावरण ही उनके विपरीत है और जो लोग ईमानदारी के साथ यह प्रयत्न कर रहे हैं, उनमें से अधिकांश अनजाने सिर्फ इसी संयम का यत्न करते हैं। जब कि इसमें सफल होने के लिये उन सब विषयों के संयम का यत्न किया जाना चाहिये जिनके चगुल में मनुष्य फँस सकता है। इस तरह

किया जाय तो साधारण स्त्री-पुरुषों के लिये भी ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव नहीं है। लेकिन यह याद रहे कि इसके लिये भी वैसे ही प्रयत्न की आवश्यकता है जैसा कि किसी भी विज्ञान के निष्णात होने के अभिलाषी किसी विद्यार्थी को करना पड़ता है। यहां जिस रूप में ब्रह्मचर्य को लिया गया है, उस रूप में जीवन-विज्ञान में निष्णात होना ही वस्तुत, उसका अर्थ भी है।

अमेरिका की साक्षी

मोण्टाना (अमेरिका) से कुमारी मैबल ई० सिम्पसन ने 'हरिजन'' के सम्पादक को लिखा है —

''मैं आपके पत्र की प्रशंसा करती हूं। यह ठीक है कि आकार में यह बहुत बड़ा नहीं है, लेकिन इसमें जो कुछ रहता है उससे इस अभाव की पूर्ति हो जाती है। गांधी जी ने संतति निग्रह के विषय में सदा की तरह स्पष्टतापूर्वक जो लेख लिखा है, वह मुझे बहुत पसन्द आया। अगर वह बीस वर्ष पहले जब कि संतति-निग्रह से घृणा की जाती थी, और अब जब कि इसका बहुत जोर है, अमेरिका जाते तो वह यह जान जाते कि नैतिक दृष्टि से यह कितना पतनकारक है। लेकिन वह किसी को इस बात का विश्वास नहीं करा सकेंगे, क्योंकि वह मनुष्य को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी वंचित कर देता है,

जिससे इस पथ पर चलने वालों के लिये उच्च नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी वंचित कर देता है, जिससे इस पथ पर चलने वालों के लिये उच्च नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बुद्धिपूर्वक किसी बात का निर्णय करना असम्भव हो जाता है। इस सम्बन्ध मे हिन्दुस्तान ने अगर पश्चिम का अनुकरण किया, तो निश्चय ही वह अपने दो अत्यन्त अमूल्य और सुन्दर रत्नों को खो देगा—एक तो छोटे बच्चो के प्रति प्रेम और दूसरा माता-पिता के प्रति श्रद्धा। अमेरिका ने इन दोनों को गवाँ दिया है और इनका उसे कुछ पता भी नही। क्या आप ब्रह्मचर्य के अर्थ का स्पष्टीकरण कर सकते हैं? मुझसे इसके बारे में पूछा गया है। हालां कि मेरे मन में इसकी कुछ कल्पना तो है, लेकिन वह इतनी निश्चित नही है कि मै दूसरो को समझाने का प्रयत्न करूँ।"

पाठक और पाठिकाएँ इस साक्षी का जो कुछ मूल्य आँकें, वह आँक सकते हैं। मगर मै कहता हूँ कि सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने के विरुद्ध ऐसी साक्षी उन लोगों की साक्षी से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है, जो इनके प्रयोग से फायदा उठाने का दावा करते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। इससे बच्चों की उत्पत्ति रुकती है, इस रूप में इसके फायदे से कोई इन्कार नही करता। कहा सिर्फ यह जाता है कि इसके प्रयोग से जो नैतिक हानि होती है, वह बेहिसाब है। कुमारी सिम्पसन ने हमे ऐसी हानि का भाव बताया है।

अब रही ब्रह्मचर्य के अर्थ की बात सो उसका मूलार्थ इस प्रकार बताया जा सकता है :—

वह आचरण कि जिससे कोई व्यक्ति ब्रह्म या परमात्मा के सम्पर्क में आता है ।

इस आचरण में सब इन्द्रियों का सम्पूर्ण संयम शामिल है । इस शब्द का यही सच्चा और सुसंगत अर्थ है ।

वैसे आमतौर पर इसका अर्थ सिर्फ जननेन्द्रियों का शारीरिक संयम ही लगाया जाने लगा है । इस संकीर्ण अर्थ ने ब्रह्मचर्य को हलका कर के उसके आचरण को प्राय: बिलकुल असम्भव कर दिया है । जननेन्द्रिय पर तब तक संयम नहीं हो सकता, जब तक की सभी इन्द्रियों का उपयुक्त संयम न हो, क्योंकि ये सब अन्योन्याश्रित हैं । मन भी इन्द्रियों में ही शामिल है, जब तक मन पर संयम न हो, खाली शारीरिक संयम चाहे कुछ समय के लिए प्राप्त भी हो जाय, पर उससे कुछ हो नहीं सकता ।

कृत्रिम साधनों से सन्तति निग्रह

एक सज्जन लिखते हैं —

"हाल मे हरिजन में श्रीमती सेंगर और महात्मा गांधी की मुलाकात का जो विवरण प्रकाशित हुआ है, उसके बारे में मै कुछ कहना चाहता हूँ।

इस वातचीत में जिस खास बात की ओर ध्यान नही दिया गया मालूम पडता, वह यह है कि मनुष्य अन्ततोगत्वा कलाकार और उत्पादक है। कम से कम आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही वह संतोष नहीं करता, वल्कि सुन्दरता, रंग-विरंगापन और आकर्षण भी उसके लिये आवश्यक होता है। मुहम्मद साहव ने कहा है कि "अगर तेरे पास एक ही पैसा हा, तो उससे रोटी खरीद ले, लेकिन अगर दो हो, तो एक से रोटी खरीद और एक से फूल।" इसमे एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है—वह यह कि मनुष्य स्वभावत कलाकार है। इसीलिये हम उसे ऐसे कामो के लिये भी प्रयत्नशील पाते हैं, जो महज उसके शरीर धारण के लिये आवश्यक नही। उसने तो अपनी प्रत्येक आवश्यकता को कला का रूप दे रखा है और उन कलाओ की खातिर मनो खून बहाया है। मनुष्य की उत्पादक बुद्धि नयी नयी कठिनाइयों और समस्याओ को पैदा करके उनका तेल निकालने के लिये उसे प्रेरित करती रहती है। रूसी, रस्किन, टालसटाय, थोरो और गांधी उसे जैसा "सरल सादा" वनाना चाहते हैं वैसा वह वन नहीं सकता। युद्ध भी उसके लिये एक आव-

श्यक चीज है, और उसे भी उसने एक महान् कला के ही रूप में परिणत कर दिया है।

उसके मस्तिष्क को अपील करने के लिये प्रकृति का उदाहरण व्यर्थ है, क्योंकि वह तो उसके जीवन से ही बिल्कुल मेल नही खाती है। "प्रकृति उसकी शिक्षिका नही बन सकती।" जो लोग प्रकृति के नाम पर अपील करते है, वे यह भूल करते है कि प्रकृति में केवल पर्वत तथा उपत्यकाएँ और कुसुम क्यारियों ही नहीं है। बल्कि बाढ, झंझावात और भूकम्प भी हैं। कट्टर निराकारवादी नीत्शे का कहना है कि कलाकार की दृष्टि से प्रकृति कोई आदर्श नहीं है। वह तो अत्युक्ति तथा विकृतीकरण से काम लेती है और बहुत सी चीजों को छोड जाती है। प्रकृति तो एक आकस्मिक घटना है। "प्रकृति से अध्ययन करना" कोई अच्छा चिह्न नहीं है। क्योंकि इन नगण्य चीजों के लिये धूल में लोटना अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है। भिन्न प्रकार के बुद्धि के कार्य को, कला विरोधी मामूली बातों को, देखने के लिये यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि हम क्या हैं। हम यह जानते है कि जंगली जानवर अपने शरीर को बनाये रखने की आवश्यकतावश कच्चा मांस खाते हैं। स्वाद वश नही। यह भी हम जानते है कि प्रकृति में तो पशुओं मे समागम की ऋतुएँ होती है। इन ऋतुओं के अतिरिक्त कभी मैथुन होता ही नहीं। लेकिन उसी फिलासफर के अनुसार यह तो अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है, जो स्वभावत मनुष्य अच्छा कलाकार है। इसलिये जब सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता न रहे तब मैथुन कार्य को बन्द कर देना या केवल संता-

नोत्पत्ति की स्पष्ट इच्छा से प्रेरित होकर ही मैथुन करना इतनी प्राकृतिक, इतनी मामूली हिसाव-किताव की सी बात है कि हमारे फिलासफर के कथनानुसार वह उसकी कला प्रेमी प्रकृति को अपील नहीं कर सकता। इसलिये वह तो स्त्री-पुरुष के प्रेम को एक विल्कुल दूसरे पहलू से देखता है। ऐसे पहलू से जिसका सन्तान-वृद्धि से कोई सम्वन्ध नहीं। यह बात हेवलाक एलिस और मेरी स्टोप्स जैसे आप्त पुरुषों के कथनों से उत्पन्न होती है। पर वह शारीरिक सम्भोग के विना अपूर्ण रह जाती है। यह उस समय तक रहेगा जव तक हम इस अश को केवल आत्मा से पूरा नही कर सकते और उसके लिये शरीर यंत्र की आवश्यकता समझते हैं। ऐसे सहवास के परिणाम का सामना विलकुल दूसरी समस्या है। यही संतान निग्रह के आन्दोलन का काम आ जाता है। पर यह काम अगर स्वयं आत्मा की ही पुन. व्यवस्था पर छोड दिया जाय और वाह्य-अनुशासन द्वारा आत्मसंयम के माने इसके अतिरिक्त और कुछ नही है—तो हमें यह आशा नहीं होती कि उससे जिन उद्देश्यों की पूर्ति होनी चाहिये उन सवको वह सिद्ध कर सकेगा। न उससे विना सुदृढ मनोवैज्ञानिक आधार के संतति निग्रह ही हो सकता है।

"अपनी वात को समाप्त करने से पहले मैं यह और कहूँगा कि आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य का महत्व मैं किसी प्रकार कम नहीं करना चाहता। वैषयिक नियंत्रण को पूर्णता पर ले जाने वाली कला के रूप में मैं हमेशा उसकी सराहना करूँगा। लेकिन जैसे अन्य कलाओ की सम्पूर्णता हमारे जीवन मे (और नीत्शे के अनुसार) हमारे सारे

जीवन में, कोई हस्तक्षेप नहीं करती, वैसे ही ब्रह्मचर्य के आदर्श को मैं दूसरी बातों पर प्रमुख पाने का सहारा नहीं बनने दूँगा—जनसंख्या वृद्धि जैसी समस्याओं के हल करने का साधन तो वह और भी कम है। हमने इसका कैसा हौआ बना डाला है, युद्ध कालीन बच्चों के बारे में तो हम जानते ही हैं। जिन सैनिकों ने अपना खून बहाकर अपने देश वासियों के लिये समरांगण में विजय प्राप्त की, क्या हम इसलिये उन्हें इसका श्रेय न देंगे, कि उन्होंने रणक्षेत्र में भी बच्चे पैदा कर डाले ? नहीं कोई ऐसा नहीं करेगा। मैं समझता हूँ कि इन बातों को मद्देनजर रख कर ही शास्त्रों (प्रश्नोपनिषद्) में यह कहा गया है कि 'ब्रह्मचर्यमेव यद्रात्रौरत्या संयुज्यते"—अर्थात् केवल रात्रि में ही (याने दिन के असाधारण समय को छोड़कर) सहवास किया जाय तो वह ब्रह्मचर्य ही जैसा है। यहाँ साधारण वैषयिक जीवन को भी ब्रह्मचर्य के ही समान बताया गया है। उसमें इतनी कठोरता तो जीवन के विविध रूपों में उलट फेर करने के फलस्वरूप ही आयी है।'

जो भी कोई ऐसी चीज हो, जिसमें कोरा शब्दाडम्बर, गाली-गलौज या आरोप आक्षेप न हों उसे मैं सहर्ष प्रकाशित करूँगा, जिससे पाठकों के सामने समस्या के दोनों पहलू आ जायें और वे अपने आप किसी निर्णय पर पहुँच सकें। इसलिये इस पत्र को मैं बड़ी खुशी के साथ प्रकाशित करता हूँ। खुद मैं भी यह जानने के लिये उत्सुक हूँ कि जिस बात के विज्ञान सिद्ध और हितकारी होने का दावा किया जाता है तथा अनेक प्रमुख व्यक्ति जिसका समर्थन करते हैं, उसका उज्ज्वल पक्ष

देखने की कोशिश करने पर भी मुझे वह क्यों इतनी खलती है?

लेकिन मेरे सन्तोष की कोई ऐसी बात सिद्ध नहीं होती जिससे मुझे इसका विश्वास हो जाय कि विवाह जीवन में मैथुन स्वयं कोई अच्छाई है और उसे करने वालो को उससे कोई लाभ होता है। हाँ, अपने खुद के तथा दूसरे अनेक अपने मित्रो के अनुभव पर से इससे विपरीत बात मैं जरूर कह सकता हूँ। हममें से किसी ने भी मैथुन द्वारा कोई मानसिक, आध्यात्मिक या शारीरिक उन्नति की हो, यह मैं नहीं जानता। क्षणिक उत्तेजन और सन्तोष तो उससे अवश्य मिला, लेकिन इसके बाद थकावट भी जरूर हुई। और जैसे ही उस थकावट का असर मिटा नही कि मैथुन इच्छा भी तुरन्त ही जाग्रत हो उठी। हालांकि मैं सदा से जागरूक रहा हूँ, फिर भी अच्छी तरह मुझे याद है कि इस विकार से मेरे कामो मे बडी बाधा पडा है। इस कमजोरी को समझकर ही मैंने आत्मसंयम का रास्ता पकडा और इससे सन्देह नही कि तुलनात्मक रूप से काफी लम्बे-लम्बे समय तक मैं जो बीमारी से बचा रहता हूँ और शारीरिक एवं मानसिक रूप से जो इतना अधिक और विविध प्रकार का काम कर सकता हूँ, कि जिसे देखनेवालों ने अद्भुत बताया है, उसका कारण मेरा यह आत्मसंयम या ब्रह्मचर्य पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त सज्जन ने जो कुछ पढा उसका, गलत अर्थ लगाया है। मनुष्य कलाकार और उत्पादक है इसमें तो कोई शक नहीं। सुन्दरता और रंग-बिरंगापन उसे चाहिये ही। लेकिन मनुष्य की कलात्मक और उत्पादक प्रवृत्तियों ने अपने सर्वोत्तम रूप मे उसे यही सिखाया

है कि वह आत्मसंयम में कला कला का और अनुत्पादक (जो सन्तानोत्पत्ति के लिए न हो) ऐसे सहवास में असुन्दरता का दर्शन करें। उसमें कलात्मक की जो भावना है उसने उसे विवेकपूर्वक यह जानने की शिक्षा दी है कि विविध रङ्गों का चाहे जैसा मिश्रण सौंदर्य का चिह्न नहीं हैं, और न हर तरह का आनन्द ही अपने आप मे कोई अच्छाई है। कला की ओर उसकी जो दृष्टि है उसने उसे यह सिखाया है कि वह उपयोगिता में ही आनन्द की खोज करे याने वही आनन्दोपभोग करे जो हितकर हो। इस प्रकार अपने विकास के प्रारम्भिक काल में ही उसने यह जान लिया था कि खाने के लिए ही उसे खाना नहीं खाना चहिये जैसा हम में से कुछ लोग अभी भी कहते हैं। बल्कि जीवन टिका रहे, इसलिये खाना चाहिये। बाद मे उसने यह भी जाना कि जीवित रहने के लिये ही उसे जीवित नहीं रहना चाहिये बल्कि अपने सहजीवियों और उनके द्वारा उस प्रभु की सेवा के लिये उसे जीना चाहिये जिसने उसे तथा उन सबको बनाया या पैदा किया है। इसी प्रकार जब उसने विषय सहवास या मैथुन जनित आनन्द की बात पर विचार किया तो उसे मालूम पड़ा कि अन्य प्रत्येक इन्द्रिय की भांति जननेन्द्रिय का भी उपयोग दुरुपयोग होता है और इसका उचित कार्य यानी सदुपयोग इसी में है कि केवल प्रजनन या सन्तानोत्पत्ति के ही लिये सहवास किया जाय। इसके सिवाय और किसी प्रयोजन से किया जानेवाला सहवास असुन्दर है और ऐसा करनेवाले व्यक्ति और उनकी नस्ल के लिये उसके बहुत भयंकर परिणाम हो सकते हैं। मैं समझता

सुधारक बहनों से

एक बहिन से गम्भीरता पूर्वक मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे भय होता है कि कृत्रिम संतति निरोध सम्बन्धी मेरी स्थिति को अभी तक लोगों ने काफी अच्छी तरह नहीं समझा। कृत्रिम संतति-निरोध के साधन का मैं जो विरोध करता हूँ वह इस कारण नहीं कि वे हमारे यहाँ पश्चिम से आये हैं। कुछ पश्चिमी चीजें तो हमारे लिये वैसी ही उपयोगी हैं जैसी कि वे पश्चिम के लिये हैं और कृतज्ञता के साथ मैं उनका प्रयोग भी करता हूँ। अतएव कृत्रिम सन्तति निरोध के साधनों का मेरा विरोध तो केवल उनके गुणदोष की दृष्टि से ही है।

मैं यह मानता हूँ कि कृत्रिम सन्तति निग्रह के साधनों का प्रतिपादन करने वालों में जो सबसे अधिक बुद्धिमान हैं वे उन्हें उन स्त्रियों तक ही मर्यादित रखना चाहते है जो सन्तानोत्पत्ति में बचते हुए अपनी और अपने पतियों की विषय वासना को तृप्त करना चाहते हैं। लेकिन, मेरे ख्याल में, मानव-प्राणियों में यह इच्छा अस्वाभाविक है और इसको तृप्त करना मानव कुटुम्ब की आध्यात्मिक प्रगति के लिए घातक है। इसके खिलाफ अन्य बातों के साथ अक्सर पेन के लार्ड डासन की यह राय पेश की जाती है।

"विषय सम्बन्धी प्रेम संसार की एक प्रचण्ड और प्रधान शक्ति है। हमारे अन्दर यह भावना इतनी तीव्र, मौलिक और बलवती होती है कि हमें इसके प्रभाव को तथ्य रूप में स्वीकार करना ही होगा। आप इसका

दमन नहीं कर सकते, आप चाहें तो इसे अच्छे रूप में परिणत कर सकते हैं किन्तु इसके प्रवाह को रोक नही सकते। और यदि इसके प्रवाह का स्रोत अपर्याप्त या जरूरत से ज्यादा से ज्यादा प्रतिबन्ध युक्त हुआ तो यह अनियमित स्रोतो से निकल पड़ेगा। आत्म संयम में हानि की सम्भावना रहती है और यदि किसी जाति में विवाह होने में कठि-नाई होती हो या बहुत देर में जाकर विवाह होते हों तो उसका अनि-वार्य परिणाम यह होगा कि अनुचित सम्बन्धों की वृद्धि हो जायगी। इस बात को तो सभी मानते है कि शारीरिक सहवास तभी होना चाहिये जब मन आत्मा भी उनके अनुकूल हों। और इस बात पर भी सब सहमत हैं कि सन्तानोत्पत्ति ही उसका प्रधान उद्देश्य है। लेकिन क्या यह सच नही है कि बारम्बार हम जो सम्भोग करते हैं, वह हमारे प्रेम का शारीरिक प्रदर्शन ही होता है, जिसमें सन्तानोत्पत्ति का कोई विचार या इरादा नही। तो क्या हम सब गलती ही करते आ रहे हं? या यह बात है कि धर्म का हमारे वास्तविक जीवन से आवश्यक सम्पर्क नही है, जिसके कारण उसके और सर्व साधारण के बीच खाई पट गई है? जब तक किसी शासक या सत्ता का, और धर्माधिकारियों का भी मैं इन्ही में शुमार करता हूँ, रुख नोजवानो के प्रति अधिक स्पष्ट, अधिक साहस पूर्ण और वास्तविकता के अधिक अनुकूल न होगा तब तक उनकी वफादारी कभी प्राप्त नही होगी।"

फिर सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी विषय प्रेम का अपना प्रयोजन है। विवाहित जीवन में स्वस्थ और सुखी रहने के लिए यह अनिवार्य

है। वैषयिक सहवास यदि परमेश्वर की देन है तो उसके उपयोग का ज्ञान भी प्राप्त करने के लायक है। अपने क्षेत्र में यह इस तरह पैदा किया जाना चाहिए जिससे न केवल एक बल्कि सम्भोग करने वाले स्त्री पुरुष दोनों की शारीरिक तृप्ति हो। इस तरह एक दूसरे को जो पारस्परिक आनन्द प्राप्त होगा उससे उन दोनो में एक स्थायी बन्धन स्थापित होगा। उससे उनका विवाह सम्बन्ध स्थिर होगा, अध्यात्मिक विषय प्रेम से उतने विवाह असफल नहीं होते जितने की अपर्याप्त और बेढंगे वैषयिक प्रेम से होते हैं। काम वासना अच्छी चीज है, ऐसे अधिकांश व्यक्ति जो किसी भी रूप में अच्छे हैं, काम भावना रखने में समर्थ हैं। काम भावना विहीन विषय प्रेम तो बिल्कुल बेजान चीज है। दूसरी ओर ऐयाशी पेटूपन के सिवाय एक शारीरिक क्षति है। अब चूँकि "प्रार्थना पुस्तक" के परिवर्धन पर विचार हो रहा है, मै यह बडे आदर के साथ सुझाना चाहता हूँ कि उसके विवाह में यह और जोड दिया जाय कि—"स्त्री और पुरुष के पारस्परिक प्रेम की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही विवाह का उद्देश्य है।"

"अब मै यह सब छोडकर सन्तति-निग्रह के सब से जरूरी प्रश्न पर आता हूँ। सन्तति निग्रह स्थायी होने के लिए आया है। वह तो अब जम चुका है—और अच्छा हो या बुरा हो—उसे हमको स्वीकार करना ही होगा। इन्कार करने से उसका अन्त नहीं होगा। जिन कारणों से प्रेरित होकर अभिभावक लोग सन्तति निग्रह करना चाहते है, उनमें कभी कभी तो स्वार्थ होता है। लेकिन वे बहुधा आदरणीय और उचित

ही होते हैं। विवाह करके अपनी सन्तान को जीवन संघर्ष के योग्य बनाना, मर्यादित आय, जीवन विवाह का खर्चा विविध करों का बोझ— ये सब इसके लिए जोरदार कारण हैं। और फिर शिक्षित वर्ग के अन्दर स्त्रियाँ अपने पतियों के काम धन्धों तथा सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेने की भी इच्छा करती हैं। यदि वे बार बार गर्भवती होती रहें तो इच्छाएँ पूरी नहीं हो सकती। यदि सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का सहारा न लिया जाय तो देर में विवाह करने का तरीका करना पड़ेगा, लेकिन ऐसा होनेपर उसके साथ अनुचित (गुप्त) रूप से अपनी विषयेच्छा तृप्त करने के विविध दुष्परिणाम सामने आयेंगे। एक ओर तो हम ऐसे अनुचित सम्बन्धों की बुराई करें, और दूसरी ओर विवाह के मार्ग में बाधा उपस्थित करें, तो उससे कोई लाभ न होगा। बहुत से लोग कहते हैं सम्भव है कि सन्तति निग्रह आवश्यक हो परन्तु एकमात्र जिस उपाय से सन्तति निग्रह करना ठीक हो सकता है वह तो स्वेच्छा-पूर्ण संयम ही है। लेकिन ऐसा संयम या तो व्यर्थ होगा या यदि कोई उसका असर पड़ा तो वह अव्यवहारिक और स्वास्थ्य व सुख के लिए हानिकर होगी। परिवार के लिए, मान लो, हम चार बच्चों की मर्यादा बना लें तो यह विवाहित स्त्री पुरुष के लिए एक तरह का संयम ही होगा, जो देर देर में सन्तानोत्पत्ति होने के कारण ब्रह्मचर्य के समान ही माना जायेगा, और जब हम इस बात पर ध्यान दें कि आर्थिक कठिनाई के कारण विवाहित जीवन के आरम्भिक वर्षों में बहुत कठोर संयम करना पड़ेगा। जब कि विषयेच्छा बहुत प्रबल रहती है तो मैं कहता हूँ कि

वह इच्छा इतनी तीव्र होगी कि अधिकांश व्यक्तियों के लिए उसका दमन करना असंभव होगा और यदि उसे जवर्दस्ती दबाने का यत्न किया गया तो स्वास्थ्य और सुख पर उसका बहुत बुरा असर पड़ेगा और नैतिकता के लिए भी बहुत खतरनाक होगा। यह तो बिल्कुल अस्वभाविक बात है। यह तो वही बात हुई कि प्यासे आदमी के पास पानी रख कर उससे कहा जाय खबरदार से पीना मत। नहीं, संयम द्वारा सन्तति निग्रह से कोई लाभ न होगा। और यदि इसका असर हुआ भी तो वह विनाशक होगा।"

"यह तो अस्वभाविक और मूलत. अनैतिक बात कही जाती है। सभ्यता का तो काम यही है कि प्राकृतिक शक्तियों को वश में कर के उन्हें इस तरह परिणत कर लिया जाय कि मनुष्य अपने इच्छानुसार उनका उपयोग कर सके। बच्चा आसानी से पैदा करने के लिए जब पहले पहल औजारों से (Instruments) का प्रयोग शुरू हुआ तो यही शोर मचाया गया था कि ऐसा करना अस्वाभाविक और अधार्मिक काम है। क्योंकि प्रसव पीडा सहने के लिये ही तो भगवान ने स्त्रियों को बनाया है। यही बात कृत्रिम साधनों से संतति निग्रह करने की है। उसमें भी इससे अधिक कोई अस्वभाविकता नहीं है। उनका प्रयोग तो अच्छा ही है। अलबत्ता दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अन्त में क्या मैं यह प्रार्थना करूं कि धर्माधिकारी लोग हर प्रश्न का विचार करते समय इस पुरातन परम्पराओं की परवाह नहीं करेंगे जो अब व्यर्थ सी हो गई है बल्कि ऐसे ही अन्य प्रश्नों

की तरह नये संसार की आवश्यकताओं और आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में ही इस प्रश्न पर विचार करेंगे ?"

यह कितने बड़े डाक्टर हैं इससे इनकार नहीं किया जा सकता लेकिन डाक्टर के रूप में उनका जो बड़प्पन है। उसके लिए काफी आदर का भाव रखते हुए भी मैं इस पर सन्देह करने का साहस करता हूँ कि उनका यह कथन कहाँ तक ठीक है। खासकर उस हालत में जब कि यह उन स्त्री पुरुषों के अनुभव के विपरीत है जिन्होंने आत्म संयम का जीवन बिताया है, किन्तु उससे उनकी नैतिक या शारीरिक हानि नहीं हुई। वस्तुत. बात यह है कि डाक्टर लोग आम तौर पर उन्हीं लोगों के सम्पर्क में आते हैं जो स्वास्थ्य के नियमों का अवहेलना करके कोई न कोई बीमारी मोल ले लेते हैं। इसलिए बीमारों को अच्छा होने के लिए क्या करना चाहिये। यह तो वे अक्सर सफलता के साथ बता देते हैं लेकिन यह बात वे हमेशा नहीं जानते कि स्वस्थ स्त्री पुरुष किसी खास दिशा में क्या कर सकते हैं। अतएव विवाहित स्त्री पुरुषों पर संयम की तो असर पड़ने की बात लार्ड डासन कहते हैं, उसे अत्यन्त सावधानी के साथ ग्रहण करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि विवाहित स्त्री पुरुष अपनी विषय तृप्ति को स्वत. कोई बुराई नहीं मानते। उनकी प्रवृत्ति उसे वैध मानने की ही है, लेकिन आधुनिक युग में तो कोई बात स्वयं सिद्ध नहीं मानी जाती और हरेक चीज को बारीकी से छानबीन की जाती है। अतः यह मानना सरासर गलती होगी कि चूँकि अब तक हम विवाहित जीवन में विषय भोग करते रहे हैं इसलिए ऐसा करना ठीक ही है। या स्वास्थ्य के लिए उसकी आवश्यकता

है। बहुत सी पुरानी प्रथाओ को हम छोड चुके है और उसके परिणाम अच्छे ही हुए है। तब इस खास प्रथा को ही उन स्त्री पुरुषों के अनुभव की कसौटी पर क्यों न कसा जाय, जो विवाहित होते हुए भी एक दूसरे की सहमति से संयम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उससे नैतिक तथा शारीरिक दोनो तरह का लाभ उठा रहे है।

लेकिन मै तो इसके अलावा विशेष आधार पर भी भारत में संतति निग्रह के कृत्रिम साधनो का विरोधी हूँ। भारत मे नवयुवक यह नहीं जानते कि विषय दमन क्या है। इसमें उनका कोई दोष नही है। छोटी उम्र मे ही उनका विवाह हो जाता है, यह यहाँ की प्रथा है और विवाहित जीवन में संयम रखने को उनसे कोई नही कहता। माता-पिता तो अपने नाती पोते देखने के उत्सुक रहते है। बेचारी बाल-पत्नियों से उसके आस पास वाले यही आशा करते है कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती हो जायँ। ऐसे वातावरण में सन्तति निरोध के कृत्रिम साधनों से तो कठिनाई और बढ़ेगी ही। जिन बेचारी लडकियो से यह आशा की जाती है कि वे अपने पतियों की इच्छा पूर्ति करेंगी, उन्हें अब यह और सिखाया जायगा कि वे बच्चे पैदा होने की इच्छा तो न करें पर विषय-भोग किये जायँ। इसी मे उनका भला है। और इस दुहरे उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्हें सन्तति निरोध के कृत्रिम साधनो का सहारा लेना होगा।

मै तो विवाहित बहनो के लिए इस शिक्षा को बहुत घातक समझता हूँ। मै यह नही मानता कि पुरुष की ही तरह स्त्री की काम-वासना

भी अदृश्य होता है। मेरी समझ में पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए आत्म-संयम करना ज्यादा आसान है। हमारे देश में जरूरत बस इसी बात की है कि स्त्री अपने पति तक से 'न' कह सके ऐसी सुशिक्षा स्त्रियों को मिलनी चाहिए।

स्त्रियों को हमें यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियों के हाथ की कठपुतली या औजारमात्र न बन जायँ। यह उनके कर्तव्य का अङ्ग नहीं है। और कर्तव्य की ही तरह उनके अधिकार भी हैं जो लोग सीता को राम की आज्ञानुवर्तिनी दासी के रूप में ही देखते हैं वे इस बात को महसूस नहीं करते कि उनमें स्वाधीनता की कितनी भावना थी और राम हरेक बात में उनका कितना ख्याल रखते थे। भारत की स्त्रियों से सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधन अख्तियार करने के लिए कहना तो बिल्कुल उल्टी बात है। सबसे पहले तो उन्हें मानसिक दासता से मुक्त करना चाहिए, उन्हें अपने शरीर की पवित्रता की शिक्षा दे कर राष्ट्र और मानवता की सेवा में कितना गौरव है इस बात की शिक्षा देनी चाहिए। यह सोच लेना ठीक नहीं है कि भारत की स्त्रियों का तो उद्धार ही नहीं हो सकता और इसलिए सन्तानोत्पत्ति में रुकावट डालकर अपने रहे सहे स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उन्हें सिर्फ सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधन ही सिखा देने चाहिए।

जो बहिन सचमुच उन स्त्रियों के दुःख से दुःखी हैं उन्हें इच्छा हो या न हो फिर भी बच्चों के झमेले में पड़ना पड़ता है, उन्हें अधीर नहीं होना चाहिए। वे जो कुछ चाहती हैं, वह एक दम तो कृत्रिम सन्तति

निरोध के साधनों के पक्ष मे तो आन्दोलन से भी नही होने वाला है। हरेक उपाय के लिए सवाल तो शिक्षा का ही है। इस लिए मेरा कहना यही है कि वह हो अच्छे ढङ्ग की।

आत्म संयम के विषय में और

आपने हाल ही मे आत्म-संयम पर जो लेख लिखा था उसने लोगों को हिला दिया है। जो लोग आपके विचारो के पक्ष में हैं उनके लिए थोडे समय के लिए भी आत्मसयम करवाना कठिन हो गया है। उनका कहना है कि आप अपने अनुभव का प्रयोग सम्पूर्ण मनुष्य-समाज के लिए कर रहे है, और आपको मानते हैं कि आप पूर्ण ब्रह्मचारी हैं क्योंकि आप पाशविक वासना से परे नही। और चूँकि आप विवाहित लोगों के लिये सन्तानो की सीमित सख्या चाहते हैं, सन्तति निरोध के कृत्रिम आधनो के प्रयोग के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय विस्तृत जन समाज के लिये नहीं दीख पडता।"

मैने अपनी सीमाएँ स्वीकार की हैं। आत्मसयम बनाम सन्तति निरोध के कृत्रिम साधन के सम्बन्ध में मेरी सीमाएँ ही मेरे गुण हैं।

मेरी सीमाओ से पता चलता है कि मै ससार के अन्य लोगो की भाँति पृथ्वी पर का ही मनुष्य हूँ और मै किसी दैवी वरदान का बहाना नही कर सकता। मेरा आत्मसंयम से उद्देश्य बिलकुल साधारण था मनुष्य समाज या देश की सेवा के लिये सन्तानो की संख्या सीमित

करने की इच्छा अपने देश या मनुष्य समाज की सेवा करने की अपेक्षा अधिक सन्तानों के पालन की असमर्थता होनी चाहिये। वर्तमान दृष्टिकोण से, मेरे ३५ वर्ष के सफल प्रयत्नों के होते हुए भी मेरे भीतर का पशु अब भी सतर्कता चाहते हैं इससे बहुत कुछ प्रकट होता है कि मैं साधारण मनुष्य हूँ। अतएव मैं समझता हूँ जो कुछ मैं कर सका हूँ, उसे कोई भी प्रयत्नशील पुरुष कर सकता है।

मैं सन्तति-निग्रह के पक्ष में प्रचार करने वालों का इस बात पर विरोध करता हूँ कि वे यह क्यों मान लेते हैं कि वह साधारण आत्म-संयम नहीं करा सकता। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि यदि वे ऐसा कर सकें तो उसे भी करना चाहिये। उनसे मैं पूर्ण विनम्रता और विश्वास के साथ कहता हूँ कि वे अपने विषय के कितने भी बड़े काल का बना आत्मसंयम के अनुभव बिना ऐसा कहते हैं। उन्हें मनुष्य की आत्मा को सीमित कराने का कोई अधिकार नहीं। ऐसी बातों के लिये मेरे जैसे मनुष्य का उदाहरण यदि विश्वसनीय है तो अधिक महत्व की ही नहीं बल्कि अन्तिम है। यदि गम्भीरता-पूर्वक देखा जाय तो चूँकि मैं महात्मा के रूप में प्रचलित हूँ अत मेरा उदाहरण निरर्थक मानना ठीक नहीं।

इससे भी अधिक जोरदार एक बहन का तर्क है—"हम संतति निग्रह के कृत्रिम साधनों का प्रचार करने वाले अभी हाल में ही सामने आए हैं। आप आत्मसंयमी लोग लगभग हजारों वर्षों से इस क्षेत्र पर अधिकार जमाए रहे ? आप अपनी कौन करतूत दिखा सकते हैं ? क्या संसार

ने आत्मसंयम सीख लिया ? आपने भार से दबे हुए परिवारों का दुःख हटाने के लिये क्या किया ? क्या हमने घायल मातृत्व की चीत्कार सुनी है ? आइये, अभी तक आपके लिए क्षेत्र खाली है। हमें आपके आत्म-संयम के प्रचार के प्रति कोई शिकायत नहीं। 'बल्कि हम आपकी सफलता भी चाहते हैं, यदि आप संयोग से, स्त्रियों को उनके पतियों के अनचाहे लोग से बचा सकेंगे तो' किन्तु आप हमारे कार्य की निन्दा क्यों करते है, जो मनुष्य की प्रत्येक कमजोरी और आदत का ध्यान रखता है और उचित प्रयोग करने से जिसकी सफलता लगभग सदा निश्चित है।"

यह प्रश्न बढते हुए सन्तानों के भार से पीडित परिवारों की सहानुभूति द्वारा द्रवित हृदयवाली एक बहन ने किया है। मानुषिक पीडा पत्थर को भी पिघला देती है, फिर उच्चात्मा की बहनों को कैसे न प्रभावित करती। परन्तु यह लोगों को गलत रास्ते पर ले जा सकती है, जिस प्रकार डूबते हुए की भाँति किसी के पैर उखड जाँय और वह किसी बहते तिनके को पकड़ ले।

हम ऐसे समय में चल रहे है जब कि चीजों का महत्व बडी तीव्रता से बदल रहा है। हमें धीमी गति वाले परिमाणों से सन्तोष नहीं होता। केवल अपनी जाति के या अपने देश के भले से ही सन्तोष नहीं होता हम सारे मनुष्य समाज के लिये महसूस करते हैं या करना चाहते हैं, यह मनुष्यता की अपने ध्येय की यात्रा में बहुत बडी सफलता है, कि वे पुरानी हैं लेकिन हम अपना धैर्य छोडकर या प्राचीन वस्तुओं का केवल इसलिए कि मनुष्य समाज की बुराइयाँ नहीं छोड़कर ठीक मनुष्य

समाज की कर सकते। हमारी आँखों में जो स्वप्न जोश मार रहा है, सम्भवत. हमारे पूर्वजों में भी चाहे अनिश्चित रूप से ही रहें हों, वह स्वप्न और जो साधन उन्होंने उपयोग किए थे, सम्भवत उनका प्रयोग क्षितिज तक जो आशातीत विस्तृत हो गया दीखता है, उपयोगी सिद्ध होगा।

और मेरा निष्कर्ष, जो मेरे अनुभव के अधार पर है यह है कि जिस प्रकार सत्य और अहिंसा कुछ चुने हुए लोगों के लिए नहीं बल्कि मनुष्य जाति के दैनिक जीवन के लिये है, बिल्कुल उसी प्रकार आत्मसंयम केवल कुछ महात्माओं के लिए नहीं, बल्कि समस्त मनुष्य समाज के लिए, और इसलिए बहुत से लोग झूठे और अशान्त होंगे, मनुष्यता अपना स्तर तो नीचा नही करेगी। उसी प्रकार बहुत से लोगों के सह-योग न देने पर भी हम अपना स्तर नीचा नहीं कर सकते।

कोई भी चतुर न्यायाधीश झूठा निर्णय नहीं करेगा। वह ऐसा दिखाई देगा जैसे उसका हृदय कठिन हो गया हो क्योंकि उसे ज्ञात है कि सच्ची उदारता बुरा नियम बनने में नहीं।

हमें चाहिये कि अपनी शारीरिक भंगुरता को अपनी अमर आत्मा से न जोड़ें जो उसमें निवास करती है। हमें शरीर की आत्मा के नियमों को ध्यान में रखकर संयमित करना है। मेरी विनम्र राय में, ऐसे नियम थोड़े और अपरिवर्तनशील हैं। और सारा मनुष्य समाज उन्हें समझ सकता है और उनके ऊपर चल सकता है। उनके कार्यान्वित करने के

ढग में अन्तर नहीं हो सकता है। केवल उनमें कमी ज्यादती हो सकती है।

यदि हममे विश्वास हो, तो हम इसमे असफल नहीं हो सकते क्योकि मनुष्यता को अपनी लक्ष्य-सिद्धि में लाख वर्ष लग भी सकते है। जवाहरलाल की भाषा में हमारा आदर्श यही होना चाहिए।

हमारी बहिन की चुनौती का उत्तर अभी नही मिला। आत्मसंयमी लोग बेकार नहीं हैं, वे अपना प्रचार कर रहे है। यदि सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधनो के प्रयोग का प्रचार करने वालो से उनका ढंग भिन्न है, तो उसका प्रचार भी भिन्न है। आत्मसंयमियो को दवाओ की आवश्यकता नही, वे इसलिये कि यह बेचने या देने का कोई विषय नही, इसका प्रकाशन नही करना चाहते। किन्तु उनकी अलोचना (कृत्रिम साधनो की) और उनके प्रयोग के विरुद्ध लोगों को चेतावनी देना, उनके प्रचार का अङ्ग है। उसका क्रियात्मक रूप वहीं रहा है लेकिन उसे लोगो ने देखा या पहिचाना नहीं। आत्मसंयम के पक्ष मे प्रचार कार्य कभी स्थगित नही रहा। सबसे प्रभावशाली कार्य उदाहरण द्वारा होता है। आत्मसंयम का सफलता पूर्वक उपयोग करने वालो की संख्या जितनी ही अधिक होगी, प्रचार का काम उतना ही प्रभावशाली होगा।

ब्रह्मचर्य

एक सज्जन लिखते हैं :—

"आप के विचारों को पढ़ कर मैं बहुत समय से यह मानता आया हूँ कि सन्तति-निरोध के लिये ब्रह्मचर्य ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है, संभोग केवल सन्तानेच्छा से प्रेरित होकर ही होना चाहिये। विना सन्तानेच्छा के भोग पाप है। इन बातों को सोचता हूँ तो कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। सम्भोग सन्तान के लिए किया जाय यह ठीक है पर एक दो बार के भोग से सन्तान न हो, पर आशा कहाँ पिण्ड छोड़ती है। इस प्रकार वीर्य का बहुत कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्ति को क्या यह कहा जाय कि ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध होने के कारण उसे भोग का त्याग कर देना चाहिये? ऐसे त्याग के लिए तो बहुत आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। प्राय ऐसा भी देखने में आया है कि सन्तान सारी उमर न होकर उत्तरावस्था में हुई है इसलिए आशा का त्याग कितना कठिन है। यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है, जब दोनों स्त्री और पुरुष रोग से मुक्त हों।

यह कठिनाई अवश्य है लेकिन ऐसी बातें मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाई के कैसे कर सकता है? हिमालय पर चढ़ने के लिये जैसे जैसे मनुष्य आगे बढ़ता है, कठिनाई बढ़ती ही जाती है। यहाँ तक हिमालय के सबसे ऊँचे शिखर पर आज तक कोई पहुँच नहीं सका है। इस प्रयत्न में कई मनुष्यों ने मृत्यु की

भेंट की है। हर साल चढाई करने वाले नये नये पुरुषार्थी तैयार होते है और निष्फल भी होते है, फिर भी इस प्रयास को वे छोड़ते नही। विषयेन्द्रिय का दमन तो हिमालय पहाड पर चढने से तो कठिन है ही लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊँचा है? हिमालय पर चढने वाला कुछ कीर्ति पायेगा, क्षणिक सुख पायेगा। इन्द्रियजीत मनुष्य आत्मानन्द पायेगा और उसका आनन्द दिन प्रति दिन बढता जायगा। ब्रह्मचर्य शास्त्र में तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष वीर्य कभी निष्फल होता ही नही और होना ही नही चाहिये और जैसा पुरुष के लिये है वैसा ही स्त्री के लिये भी इसमें कोई आश्चर्य की बात नही। जब मनुष्य अथवा पुरुष निर्विकार होते है तब वीर्य हानि असम्भवित हो जाती है और भोगेच्छा का सर्वथा नाश हो जाता है, और जब पति पत्नी की इच्छा करते है तभी एक दूसरे का मिलन होता है। और यही अर्थ गृहस्थाश्रमी के ब्रह्मचर्य का है। अर्थात् स्त्री-पुरुष का मिलन सिर्फ सन्तानोपत्ति के लिये उचित है, भोग तृप्ति के लिए कभी नही।

यह हुई कानूनी बात अथवा आदर्श की बात। यदि हम इस आदर्श को स्वीकार करें, तो हम समझ सकते है कि भोगेच्छा की तृप्ति अनुचित है। और हमे उसका यथोचित त्याग करना चाहिये। यह ठीक है कि आज कोई इस नियम का पालन नही करता। आदर्श की बात करते हुए हम शक्ति का ख्याल नहीं कर सकते। लेकिन आजकल भोग तृप्ति को आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो नहीं सकता। यह स्वयं सिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादा नहीं होनी चाहिये। अमर्या-

दित भोग से नाश होता है यह सभी स्वीकार करते है। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीनकाल से रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्य के नियमों को हम जानते नही है, इसलिए वड़ी आपत्ति पैदा होती है और ब्रह्मचर्य पालन में अनावश्यक कठिनाई महसूस करते हैं अब जो आपत्ति मुझे पत्र लेखक ने वतायी है वह आपत्ति ही नही रहती है क्योंकि सन्तति के ही कारण तो एक ही वार मिलन हो सकता है। अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री पुरुषों का मिलन होना ही नहीं चाहिये। इस नियम को जानने के वाद इतना ही कहा जा सकता है कि जब तक स्त्री ने गर्भ धारण नहीं किया तब तक प्रत्येक ऋतुकाल के बाद जब तक गर्भ धारण नही हुआ है तब तक प्रति मास एक वार स्त्री पुरुष का मिलन कर्तव्य हो सकता है और यह नियम भोगतृप्ति के लिय न माना जाय, मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य वचन से और कार्य से विकार रहित होता है, उसे मानसिक अथवा शारीरिक व्याधि का किसी प्रकार का डर नही है। इतना ही नही, वल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियों से भी मुक्त होते हैं और इनमें कोई आश्चर्य की वात नही है। जिस वीर्य से मनुष्य जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, उसके अविच्छिन्न सग्रह से अमोघ शक्ति होनी ही चाहिये। यह वात शास्त्रों में तो कही गयी है, लेकिन हरएक मनुष्य इसे अपने लिये यत्न से सिद्ध कर सकता है, और जो नियम पुरुषों के लिये है, वही स्त्रियों के लिये भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मन से विकारमय रहते हुए शरीर से विकार रहित होने की व्यर्थ आशा करता

है और अन्त में मनुष्य और शरीर दोनो को क्षीण करता हुआ गीता की भाषा में मूढ़ात्मा और मिथ्याचारी बनता है।

धर्म सङ्कट

एक सज्जन लिखते हैं :—

करीब ढाई साल हुआ, हमारे शहर में एक घटना हो गयी थी, जो इस प्रकार है :—

एक वैश्य गृहस्थ की १६ बरस की एक कुमारी कन्या थी। इस लडकी का मामा, जिसकी उम्र लगभग २१ वर्ष की थी, स्थानीय कालेज में पढता था। यह तो मालूम नही कि कब से इन दोनों मामा और भाँजी में प्रेम था, पर जब बात खुल गयी तो इन दोनो ने आत्म हत्या कर ली। लडकी तो फौरन ही जहर खाने के बाद मर गयी, पर लडका दो रोज बाद अस्पताल मे मरा। लडकी को गर्भ भी था। इस बात की शुरू-शुरू में तो खूब चर्चा चली। यहाँ तक कि अभागे माँ-बाप को शहर में रहना भारी हो गया। पर वक्त के साथ साथ यह बात भी दब गयी और लोग भूलने लगे। कभी जब ऐसी मिलती जुलती बात सुनने को मिलती है तब पुरानी बातों की भी चर्चा होती है और यह वाकया भी दोहरा दिया जाता है। पर उस जमाने में जब सभी करीब-करीब लडकी को और लडके को भी

बुरा भला कह रहे थे, मैंने यह राय अर्ज की थी कि ऐसी हालत में समाज को विवाह कर लेने की इजाजत दे देनी चाहिए। इस बात से समाज में खूब बवंडर उठा। आपकी इस पर क्या राय है।"

मैंने स्थान का और लेखक का नाम नहीं दिया है, क्या लेखक नहीं चाहते कि उनका अथवा उनके शहर का नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी इस प्रश्न पर जाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि ऐसे सम्बन्ध जिस समाज में त्याज्य माने जाते हैं वहाँ विवाह का रूप वे यकायक नहीं ले सकते। लेकिन किसी की स्वतन्त्रता पर समाज या सम्बन्धी आक्रमण क्यों करें? ये मामा और भौंजी सयानी उम्र के थे, अपना हित अहित समझ सकते थे। उन्हें पति-पत्नी के सम्बन्ध से रोकने का किसी को हक नहीं था। समाज भले ही इस सम्बन्ध को अस्वीकार करता, पर उन्हें आत्महत्या करने तक जाने देना तो बहुत बड़ा अत्याचार था।

उक्त प्रकार के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। ईसाई, मुसलमान, पारसी इत्यादि कौमों में ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं माने जाते—हिन्दुओं में भी प्रत्येक वर्ण में त्याज्य नहीं है। उसी वर्ण के भिन्न प्रान्त में भिन्न प्रथा है। दक्षिण में उच्च माने जाने वाले ब्राह्मणों में ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते हैं। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियों से बने हैं। यह देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्विक निर्णय से बने हैं।

लेकिन समाज के सब प्रतिबन्धों को नवयुवक वर्ग छिन्न-भिन्न करके

फेंक दें, यह भी नही होना चाहिये। इस लिये मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाज से रूढि का त्याग करवाने के लिये लोकमत तैयार करवाने की आवश्यकता है। इस बीच व्यक्तियो को ध्यान रखना चाहिये। धैर्य न रख सके तो बहिष्कारादि को सहन करना चाहिये।

दूसरी ओर समाज का यह कर्तव्य है कि जो लोग समाज-बन्धन तोडें उनके साथ निर्दयता का वर्ताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिंसक होने चाहिये। उक्त आत्महत्याओं का दोष जिस समाज मे, वे हुई उस पर अवश्य है, ऐसा ऊपर के पत्र से सिद्ध ह ता है।

विवाह की मर्यादा

एक मित्र लिखते हैं :—

"हरिजन सेवक" अंक मे 'धर्म संकट' नामक आपका लेख पढ़ा। उसमे आपने लिखा है कि "(उक्त प्रकार के अर्थात् मामा मौजी के सम्बन्ध जैसे) सम्बन्ध का प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। ··ऐसे प्रतिबन्ध रूढियों से बने हैं। यह देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्विक निर्णय से बने हैं।"

मेरा अनुमान है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्ति की दृष्टि से लगाये गये हैं। इस शास्त्र के ज्ञाता ऐसा मानते हैं कि विजातीय तत्वो के मिश्रण से संतति अच्छी होती है इसलिये सगोत्र और सपिण्ड कन्याओं का पाणिग्रहण नहीं किया जाता।

यदि यह माना जाय कि केवल रूढ़ि है तो फिर सगी और चचेरी बहनों के सम्बन्ध पर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है ? यदि विवाह का हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पादन के ही लिये दम्पति का संयोग करना योग्य है, तो फिर वह कन्या के चुनाव के औचित्य की कसौटी सुप्रजनन की क्षमता ही होनी चाहिये। क्या और कसौटियां गौण समझी जायँ ? यदि हां, तो किस क्रम से यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी राय में वह इस प्रकार होना चाहिये।

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम।

(२) सुप्रजनन की क्षमता।

(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा।

(४) समाज और देश की सेवा।

(५) आध्यात्मिक उन्नति।

आपका इस सम्बन्ध में क्या मत है ?

हिन्दू शास्त्रों में पुत्रोत्पत्ति पर जोर दिया गया है। सधवाओं को आशिर्वाद दिया जाता है "अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती भव"। आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पती सतान के लिये संयोग करें तो इसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ एक ही सन्तान उत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की वंशवर्धन की इच्छा के साथ ही पुत्र से नाम चलता है, यह इच्छा भी जुटी हुई मालूम होती है। केवल लड़की से इस इच्छा का समाधान कैसे हो सकता है ? बल्कि अभी तक समाज में 'लड़की के जन्म' का उतना स्वागत नहीं होता। जितना की लड़के के जन्म का होता

है। इसलिये यदि इन इच्छाओ को सामाजिक माना जाय तो फिर एक लडका और एक लडकी इस तरह दो संतति पैदा करने की छूट देना क्या अनुचित होगा ?

केवल संतानोत्पादन के लिये संयोग करने वाले दम्पती ब्रह्मचारीवत् ही समझे जाने चाहिये—यह ठीक है। यह भी सही है कि संयम जीवन मे एक ही बार संयोग से गर्भ रह जाता है। पहली बात की पुष्टि में एक कथा प्रचलित है।

वसिष्ठ की कुटिया के सामने एक नदी बहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वसिष्ठ गृहस्थ थे। जब भोजन पक जाता, तो पहले अरुन्धती थाल परोस कर विश्वामित्र को खिलाने जाती, बाद को वसिष्ठ के घर पर सब लोग भोजन करते। यह नित्य क्रम था। एक रोज बारिश हुई और नदी मे बाढ आ गयी। अरुन्धती उस पार न जा सकी। उसने वसिष्ठ से इसका उपाय पूछा। उन्होने कहा—जाओ, नदी से कहना मै सदा निराहारी विश्वामित्र को विश्वामित्र को भोजन देने जा रही हूँ, मुझे रास्ता दे दो। अरुन्धती ने इसी प्रकार नदी से कहा और उसने रास्ता दे दिया। तब अरुन्धती के मन मे बडा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज तो खाना खाते है फिर निराहारी कैसे हुए ? जब विश्वामित्र खाना खा चुके, तब अरुन्धती ने उनसे पूछा—'मै वापिस कैसे जाऊँ,' नदी में तो बाढ है। विश्वामित्र ने उलट कर पूछा—'तो आई कैसे ?' अरुन्धती ने उत्तर मे वसिष्ठ का पूर्वोक्त नुसखा बतलाया। तब विश्वामित्र ने कहा—'अच्छा, तुम नदी से कहना, सदा ब्रह्मचारी वसिष्ट के

यहाँ से लौट रही हूँ, नदी मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धती ने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। वसिष्ठ के सौ पुत्रों की तो वह स्वयं ही माता थी। उसने वसिष्ठ से इसका रहस्य पूछा कि आपको सदा निराहारी और सदा ब्रह्मचारी कैसे मानूँ? वसिष्ठ ने बताया—"जो केवल शरीर रक्षण के लिये ही ईश्वरार्पण बुद्धि से भोजन करता है, वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी ही है। और जो केवल स्वधर्म पालन के लिये अनासक्ति पूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह संयोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।"

परन्तु इसमें और मेरी समझ में तो शायद हिन्दू शास्त्र में भी केवल एक संतति फिर वह कन्या हो या पुत्र का विधान नहीं है। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्री का नियम मान्य हो, तो मैं समझता हूँ बहुतेरे दम्पतियों को समाधान हो जाना चाहिए। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना विवाह किये एक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो सकता है, परन्तु विवाह करने पर केवल सन्तानोत्पादन के लिए और फिर भी प्रथम संतति के ही लिए संयोग करके फिर आजन्म संयम से रहना उससे कहीं कठिन है। मेरा तो ऐसा मत बनता जा रहा है कि "काम" मनुष्य प्रेरणा है। उसमें संयम सुसंस्कार का सूचक है। "संतति के लिए संयोग का नियम बना देने से सुसंस्कार, संयम या धर्म की तरफ मनुष्य की गति होती है, इसलिए यह वांछनीय है। सन्तानोत्पत्ति के ही लिए संयोग करने वाले संयमी

का आदर करूँगा। कामेच्छा की तृप्ति करने वाले को भोगी कहूँगा। पर उसे पतित नहीं मानना चाहता, न ऐसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझ कर लोग उसका तिरस्कार करें। इस विचार में मेरी कहीं गलती होती हो, तो बतावे।"

विवाह में जो मर्यादा बाँधी गयी है, उसका शास्त्रीय कारण मैं नहीं जानता। रूढि को ही, जो मर्यादा की वृद्धि के लिये बनाई जाती है। नैतिक कारण मानने में कोई आपत्ति नहीं है। सन्तान हित की दृष्टि से ही अगर भाई बहन के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध योग्य है, तो चचेरी बहन इत्यादि पर भी प्रतिबन्ध होना चाहिये। लेकिन भाई बहन के सम्बन्ध या ऐसे सम्बन्ध के अतिरिक्त कोई प्रतिबन्ध धर्म में नहीं माना जाता। इसलिये रूढि का जो प्रतिबन्ध जिस समाज में हो उसका अनुशरण उचित मालूम देता है। नैतिक विवाह के लिये जो पाँच मर्यादाएँ हमारे मित्र ने रक्खी हैं, उनका क्रम बदलना चाहिये। पारस्परिक आकर्षण और प्रेम को अन्तिम स्थान देना चाहिये। अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय, तो दूसरी सब शर्तें उसके आश्रय में जाने से निरर्थक बन सकती हैं। इसलिये उक्त क्रम से आध्यात्मिक उन्नति को प्रथम स्थान देना चाहिये। समाज और देश सेवा को दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा को तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेम को चौथा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्तों का अभाव हो, वहाँ पारस्परिक प्रेम को स्थान नहीं मिल सकता। अगर प्रेम को प्रथम स्थान दिया जाय, तो वह सर्वोपरि बन कर दूसरों की अवग-

माना कर सकता है और करता है। ऐसा आज कल के व्यवहार में देखने में आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवल कथाओं में भी यह पाया जाता है, इसलिये यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्तों का पालन होते हुए भी जहाँ पारस्परिक आकर्षण नहीं है, वहाँ विवाह त्याज्य है। सुप्रजनन की क्षमता को शर्त न माना जाय, क्योंकि यही एक वस्तु विवाह का कारण है, विवाह की शर्त नहीं।

हिन्दू शास्त्र में पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। यह उस काल के लिये ठीक था जब समाज में शस्त्र युद्ध को अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुष वर्ग की बड़ी आवश्यकता थी। इसी कारण से एक से अधिक पत्नियों की भी इजाजत थी और अधिक पुत्रों से अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टि से देखें, तो एक ही सन्तति 'धर्मज' या 'धर्मजा' है। मैं पुत्र और पुत्री के बीच भेद नहीं करता हूँ। दोनों एक समान स्वागत के योग्य हैं।

वसिष्ठ विश्वामित्र का दृष्टान्त सार रूप में अच्छा है। उसे शब्दशः सत्य अथवा शवच मानने की आवश्यकता नहीं। उसमें इतना ही सार निकालना काफी है कि सन्तानोत्पत्ति के ही अर्थ किया हुआ संयोग ब्रह्मचर्य का विरोधी नहीं है। कामाग्नि की तृप्ति के कारण किया हुआ संयोग त्याज्य है। उसे निद्य मानने की आवश्यकता नहीं। अवश्य स्त्री पुरुषों का मिलन भोग के कारण ही होता है, और होता रहेगा। उनसे जो दुष्परिणाम होता रहता है उन्हें भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य अपने जीवन को धार्मिक बनाना चाहता है। जो जीवमात्र की सेवा को आदर्श

समझ कर संसार यात्रा समाप्त करना चाहता है उसके लिये ही ब्रह्मचर्यादि मर्यादा का विचार किया जा सकता है। और ऐसी मर्यादा आवश्यक भी है।

अश्लील विज्ञापन

एक मासिक पत्र मे प्रकाशित एक अत्यन्त बीभत्स पुस्तक के विज्ञापन की कतरन एक बहिन ने मुझे भेजी है और लिखा है :—

"—के पृष्ठों पर नजर डालते हुए यह विज्ञापन मेरे देखने मे आया। मै यह नही जानती कि यह मासिक पत्र आपके पास जाता है या नहीं। आपके पास जाता भी हो तो मेरे ख्याल मे इसकी तरफ नजर डालने का आपको कभी समय नही मिलता होगा। पहले भी एक बार मैंने आप से "अश्लील विज्ञापनों" के बारे मे बात की थी। मेरी यह बडी ही इच्छा है कि इस विषय में आप किसी समय कुछ लिखे। जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है इस किस्म की पुस्तकों का आज बाजार में बाढ सी आ रही है, यह बिलकुल सच्ची बात है। पर—जैसे जवाबदार पत्रो के लिये क्या यह उचित है कि वे ऐसी गन्दी पुस्तको की बिक्री को प्रोत्साहन दें। इन चीजों से मेरा स्त्री-हृदय इतना अधिक दुखता है कि मै सिवा आपके और किसी को लिख नही सकती। ईश्वर ने स्त्री को विशेष उद्देश्य के लिये जो वस्तु दी है, उसका विज्ञापन लंपटता को

उत्तेजन देने के लिये किया जाय, यह चीज इतनी हीन है कि इसके प्रति घृणा शब्दों से नही प्रगट की जा सकती ... । मैं चाहती हूँ कि इस सम्बन्ध में भारत के प्रमुख अखबारों और मासिक पत्रों की क्या जवाबदारी है उसके बारे में आप लिखें। आपके पास आलोचना के लिये भेज सकूँ, ऐसी यह कोई पहली ही कटिंग नहीं है।

इस विज्ञापन में से कुछ भी अंश मैं यहाँ उद्धृत नहीं करना चाहता। पाठकों से सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है उसमें के व्यजित लेखों का वर्णन करने में जितनी अश्लील भाषा का उपयोग किया जा सकता है उतना किया गया है इस पुस्तक का नाम "स्त्री के शरीर का सौंदर्य" है और विज्ञापन देने वाला फर्म पाठकों से कहता है कि जो यह पुस्तक खरीदेगा उसे "नववधू के लिये नया ज्ञान" और "संभोग अथवा संभोगी को कैसे रिझाया जाय" नामक यह दो पुस्तकें मुफ्त दी जायेंगी।

इस किस्म की पुस्तकों का विज्ञापन करने वालों को मैं किसी तरह रोक सकता हूँ या पत्र सम्पादकों और प्रकाशकों से उनके अखबारा द्वारा मुनाफा उठाने का इरादा मैं छुड़वा सकता हूँ। ऐसी आशा अगर यह बहिन रखती है, तो वह व्यर्थ है। ऐसी अश्लील पुस्तको या विज्ञापनों के प्रकाशकों से मैं चाहे जितनी अपील करूँ, उससे कोई मतलब निकलने का नही। किन्तु मैं पत्र लिखने वाली इस बहिन से और दूसरी ही ऐसी विदुषी बहनों से इतना कहना चाहता हूँ कि वे बाहर मैदान में आवें और जो काम खास करके उनका है और जिसके लिये उनमें खास योग्यता

है, उस काम को वे शुरू कर दें। अक्सर देखने मे आया है कि किसी मनुष्य को खराब नाम दे दिया जाता है और कुछ समय बाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा मानने लगता है कि वह खुद खराब है। स्त्री को "अबला" कहना उसे बदनाम करना है। मैं नही जानता कि स्त्री किस प्रकार अबला है। ऐसा कहने का अर्थ अगर यह हो कि स्त्री में पुरुष की जैसी पाशविक वृत्ति नहीं है या उतनी मात्रा में नहीं है जितनी की पुरुष मे होती है, तो यह आरोप माना जा सकता है। पर यह चीज तो स्त्री को पुरुष की अपेक्षा पुनीत बनाने वाली है। और स्त्री पुरुष की अपेक्षा तो पुनीत है ही। वह अगर आघात करने मे निर्बल है तो कष्ट सहन करने मे बलवान है। मैने स्त्री को त्याग और अहिंसा की मूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्व की रक्षा के लिए पुरुष पर निर्भर न रहना उसे सीखना है। पुरुष ने स्त्री के सतीत्व की रक्षा की हो, ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नहीं वह ऐसा करना चाहे तो भी नही कर सकता। निश्चय ही राम ने सीता के या पॉच पाण्डवों ने द्रौपदी की शील की रक्षा नहीं की। इन दोनो सातियो ने अपने सतीत्व के बल से ही अपने शील की रक्षा की। कोई भी मनुष्य बगैर अपनी सम्मति के अपनी इज्जत आबरू नहीं खोता। कोई नरपशु किसी स्त्री को बेहोश करके उसकी लाज लूट ले तो इससे उस स्त्री के शील या सतीत्व का लोप नहीं होगा। इसी तरह कोई दुष्ट स्त्री किसी पुरुष को जड बना देने वाली दवा खिला दे और उससे अपना मनचाहा कराये तो उससे उस पुरुष के शील या चारित्र्य का नाश नहीं होता है।

आश्चर्य तो यह है कि सौंदर्य की प्रशंसा में पुस्तकें बिल्कुल नही लिखी गईं। तो फिर पुरुष की विषय वासना उत्तेजित करने के लिए ही साहित्य क्यों हमेशा तैयार होता रहे? यह बात तो नही कि पुरुष ने स्त्री को विशेषणों से भूषित किया है, उन विशेषणों को सार्थक करना पसन्द है? स्त्री को क्या यह अच्छा लगता होगा कि उसके शरीर के सौंदर्य का पुरुष अपनी भोग लालसा के लिए दुरुपयोग करे? पुरुष के आगे अपनी देह की सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा? यदि हाँ, तो किस लिये? मैं चाहता हूँ कि यह प्रश्न सुशिक्षित बहनें खुद अपने दिल से पूछें। ऐसे विज्ञापनों और ऐसे साहित्य से उनका दिल दुखता हो तो उन्हें इन चीजों के विरुद्ध अविराम युद्ध चलाना चाहिये, और एक क्षण में वे इन चीजों को बन्द करा देंगी। स्त्री मे जिस प्रकार बुरा करने की, लोक का नाश करने की शक्ति है उसी प्रकार भला करने की, लोकहित साधन करने की शक्ति भी उसमें सोई हुई पडी है। यह भाव अगर स्त्री को हो जाय तो कितना अच्छा हो! अगर वह यह विचार छोड दें कि वह खुद अबला है और पुरुष की खेलने की गुड़िया होने के ही योग्य है तो वह खुद अपना तथा पुरुष का—फिर चाहे वह उनका पिता हो, पुत्र हो—या पति हो—जन्म सुधार सकती है। और दोनो के ही लिये इस संसार को अधिक सुखमय बना सकती है। राष्ट्र के बीच पागलपन भरे युद्धों से और ज्यादा पागलपन भरे समाज नीति की नींव के विरुद्ध लडे जानेवाले युद्धों से अगर समाज को अपना संहार होने नही देना है, तो स्त्री को पुरुष की तरह नहीं, जैसे कि कुछ स्त्रियां करती हैं। बल्कि स्त्री की तरह अपना योग देना

ही होगा। अधिकांशत. बिना किसी कारण के ही मानव प्राणियों के सहार करने की जो शक्ति पुरुष में है उस शक्ति में उसकी हमसरी करने से स्त्री मानव जाति को सुधार नहीं सकती। पुरुष की जिस भूल से पुरुष के साथ साथ स्त्री का भी विनाश होने वाला है। उस भूल में से पुरुष को बचाना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्री को समझ लेना चाहिये यह वाहियात विज्ञापन तो सिर्फ यही बताता है कि हवा का रुख किस तरफ है। इससे बेशर्मी के साथ स्त्री का अनुचित लाभ उठाया गया है। दुनिया की जंगली जातियों की स्त्रियों के शरीर सौंदर्य को भी इसने नहीं छोड़ा।

स्त्रियों में देवीत्व का झूठा आरोप

अहमदाबाद में गुजराती साहित्यिक सम्मेलन के अवसर पर ज्योति सघ नामक आन्दोलन की संरक्षिका महिलाओं की ओर से गांधीजी को एक पत्र लिखा गया था जिसमें उस प्रस्ताव की एक प्रति भी थी जो उन्होंने आधुनिक लेखकों की स्त्रियों के अश्लील चित्रण करने की प्रवृत्ति को तिरस्कृत करने के लिए—पास किया गया था। गांधीजी ने अनुभव किया कि प्रस्ताव में काफी शक्ती थी और उन्होंने कहा .—

उनकी शिकायत यह है कि आधुनिक लेखक स्त्रियों का झूठा चित्रण करते हैं। जिस भावुकता के साथ लेखक उन्हें चित्रित करते और उनके

शरीर का जिस अश्लीलता से वर्णन करते हैं उससे वे ऊब गई हैं। क्या उनका सारा सौंदर्य और शक्ति पुरुषों की वासना भरी दृष्टि को प्रसन्न कर पाने में ही है? पत्र के लेखक ने पूछा है (और वह न्यायसंगत है) कि उनका चित्रण सदा नम्र, और दुर्बल स्त्री के ही रूप में किया जाय जिसके लिये घर के सभी निम्नकोटि के कार्य रिजर्व रखे जाते हैं और जिनके देवता उनके पति ही हैं? उनका वास्तविक चित्रण क्यों नहीं किया जाता। लोग कहते हैं हम न तो आकाश की अप्सरायें हैं, न गुड़ियाँ हैं और न वासना और स्नायु के समूह ही हैं। हम उतना ही मानवी हैं, जितने पुरुष और हमारे भीतर स्वतन्त्रता की वैसी ही लहर है। मैं उन्हें और उनके मस्तिष्क को जानती हूँ। एक समय था जब दक्षिणी अफ्रीका में मेरे निकट केवल स्त्रियाँ ही रह गई थीं क्योंकि उनके पति जेल जा चुके थे। लगभग ६० स्त्रियाँ और बालिकाएँ थीं और मैं उनके भाई और पिता सा हो गया था। मेरे संरक्षण में उन्होंने और संगठन प्राप्त किया। यहाँ तक कि अन्त में वे स्वयं जेल गईं।

लोग मुझसे कहते हैं कि हमारा साहित्य स्त्रियों में दैवी भावनाओं से भरा हुआ है। मैं कहता हूँ, यह बिलकुल गलत है। आप जब उनके विषय में लिखने वाले होते हैं, तो उन्हें किस दृष्टिकोण से देखते हैं? उस समय आपको उन्हें माँ के रूप में देखना चाहिये और मैं विश्वास दिलाता कि संसार को आपकी लेखनी से पवित्रतम साहित्य प्रवाहित होगा। इतना पवित्र जितना प्यासी धरती को सींचने वाली जलधार होती है। उनकी आत्मिक तृष्णा मिटाने की जगह कुछ लेखक उनकी वासना को और

उत्तेजित करते हैं। यहाँ तक कि बहुत सी निष्कलुष स्त्रियाँ इससे परेशान रहती हैं। उपन्यासों में चित्रित किये गये रूप को किस प्रकार प्राप्त करें। क्या शारीरिक रूप का विस्तृत वर्णन साहित्य का आवश्यक अङ्ग है ? मुझे इस पर आश्चर्य है। क्या आपको इस प्रकार की कोई बात उपनिषदों, कुरान और बाइबिल में मिलती है ? और फिर आप जानते हैं कि बिना बाइबिल के अंग्रेजी साहित्य सूना हो जायगा। तीन अंश बाइबिल और एक अंश शेक्सपियर यही इसकी परिभाषा है। बिना कुरान के अरबी भूल जायगी और तुलसीदास को छोड़ कर हिन्दी के विषय में विचार करो। क्या आप को इसमें कोई ऐसी चीज मिलती है जैसी आधुनिक साहित्य में मिलती है ?

आत्म-रक्षा कैसे करें ?

पंजाब के एक कालेज की लड़की का एक हृदयस्पर्शी पत्र लगभग दो महीने से मेरी फाइल में पड़ा हुआ है। इस लड़की के प्रश्न का जवाब अभी तक नहीं दिया, इसमें समय के अभाव का तो एक बहाना था। किसी न किसी तरह इस काम से अपने को मैं बचा रहा था। हालाँ कि मैं यह जानता था कि इस प्रश्न का क्या जवाब देना चाहिये। इस बीच में मुझे एक और पत्र मिला यह पत्र एक ऐसी बहिन का लिखा हुआ है, जो बहुत अनुभव रखती है। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेज की इस लड़की की जो वास्तविक कठिनाई है, उसका मुका-

रक्षा करना मेरा कर्तव्य है, और इसकी अब मैं और अधिक दिनों तक उपेक्षा नहीं कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानी में लिखा है, जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ।

लड़कियों और वयस्क स्त्रियों के सामने उनकी इच्छा के विरुद्ध ऐसे अवसर आ जाया करते हैं जब कि उन्हें अकेली जाने की हिम्मत करनी पड़ती है—यों तो उन्हें एक ही शहर में एक जगह से दूसरी जगह या एक शहर से दूसरे शहर को जाना होता है। और जब वे इस तरह अकेली होती हैं, तब गन्दी मनोवृत्ति वाले लोग उन्हें तंग किया करते हैं। और अगर भय उन्हें रोकता है तो इससे भी आगे बढ़ने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूँ कि ऐसे मौक़ों पर अहिंसा क्या काम दे सकती है, हिंसा का उपयोग तो है ही। अगर किसी लड़की या स्त्री में काफी हिम्मत हो, तो उसके पास जो भी साधन होंगे उन्हें वह काम में लायेगी और एक बार बदमाशों को सबक सिखा देगी। वे कम से कम हंगामा तो मचा सकती हैं जिससे कि लोगों का ध्यान आकर्षित हो जाय और गुण्डे वहां से भाग जावें, लेकिन मैं यह जानती हूं कि इसके परिणाम स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नहीं है। अशिष्ट व्यवहार करने वाले लोगों का अगर आपको पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय तो वे आपकी प्रेम और नम्रता की बात सुनेंगे। पर उस आदमी के लिए आप क्या कहेंगे, जो साइकिल पर चढ़ा हुआ किसी लड़की या स्त्री को देखकर जिसके साथ कोई मर्द-

साथी नहीं है, गन्दी भाषा का प्रयोग करता है ? उसे दलील देकर आपको समझाने का मौका नही । आपको उससे फिर मिलने की सम्भावना भी नही । हो सकता है कि आप उसे पहचाने भी नहीं, आप उसका पता भी नही जानते । ऐसी परिस्थितियो में यह वेचारी स्त्री या लडकी क्या करे ? मै अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूँ । २६ अक्टूबर की रात की वात है । मै अपनी एक सहेली के साथ ७॥ बजे करीब एक खास काम से जा रही थी । उस वक्त किसी मर्द साथी को साथ ले जाना नामुमकिन था । और काम इतना जरूरी था कि टाला नही जा सकता था । रास्ते मे एक सिख युवक साइकिल पर जा रहा था, वह कुछ गुनगुनाता जाता था । जब तक की हम सुन सकें उसने गुनगुनाना जारी रखा । हमे यह मालूम था कि वह हमे लक्ष करके गुनगुना रहा है । हमें उसकी यह हरकत नागवार मालूम हुई । सडक पर कोई चहल पहल नहीं थी । हमारे चन्द कदम जाने से पहले वह लौट पड़ा । मै उसे फौरन पहचान गई, हालांकि वह अव भी हमसे काफी फासले पर था । उसने हमारी तरफ साइकिल घुमाई । ईश्वर जाने उसका इरादा उतरने का था, या यूँ ही हमारे पास से गुजरने का । हमें ऐसा लगा कि हम खतरे में हैं । हमे अपनी शारीरिक वहादुरी में विश्वास नही था । मै एक स्वस्थ लडकी के मुकाबले शरीर से कमजोर हूँ । लेकिन मेरे हाथ में एक बडी सी किताब थी । यकायक किसी तरह मेरे अन्दर हिम्मत आ गई । साइकिल की तरफ हमने उस किताब को जोर से मारा, और चिल्लाकर कहा, "चुहल वाजी करने की तू फिर

हिम्मत करेगा ?" वह मुश्किल से अपने को सम्भाल सका और साइ-किल की रफ़्तार बढ़ाकर वहाँ से रफ़ूचक्कर हो गया। अब अगर मैं उसकी साइकिल की तरफ़ किताब जोर से न मारी होती, तो अन्त तक वह इसी तरह अपनी गन्दी भाषा से हमें तंग करता जाता। यह तो एक मामूली बल्कि नगण्य-सी घटना है, पर मैं चाहती हूँ कि आप लाहौर आते और हम हतभागिनी लड़कियों की मुसीबतों का दास्तान खुद अपने कानों सुनते। आप निश्चय ही इस समस्या का ठीक-ठीक हल ढूँढ सकते हैं, सबसे पहले आप मुझे यह बतावें कि ऊपर जिन परिस्थितियों का मैंने वर्णन किया है, उनमें लड़कियाँ अहिंसा के सिद्धान्त का प्रयोग किस तरह कर सकती हैं और कैसे अपने आपको बचा सकती हैं। दूसरे स्त्रियों को अपमानित करने की जिन युवकों को यह बहुत बुरी आदत पड़ गई है उनको सुधारने का क्या उपाय है ? आप यह उपाय न सुझाइयेगा कि हमें उस पीढ़ी के आने तक इन्तज़ार करना चाहिए और तब तक हम इस अपमान को चुपचाप बरदाश्त करती रहें, जिस पीढ़ी ने बचपन से ही स्त्रियों के साथ सद्रोचित व्यवहार करने की शिक्षा पाई होगी। सरकार की या तो इस सामाजिक बुराई का मुकाबला करने की इच्छा नहीं या ऐसा करने में वह असमर्थ और हमारे बड़े-बड़े नेताओं के पास ऐसे प्रश्नों के लिए समय नहीं। कुछ लोग जब यह सुनते हैं कि किसी लड़की ने अशिष्टता से पेश आने वाले किसी नवयुवक की अच्छी तरह से मरम्मत कर दी है, तो कहते हैं, "शाबास ऐसा ही सब लड़कियों को करना चाहिए।" कभी-कभी किसी नेता को इस

विद्यार्थियों के ऐसे दुर्व्यवहार के खिलाफ लच्छेदार भाषण करते हुए पाते हैं। मगर ऐसा कोई नजर नही आता, जो इस गम्भीर समस्या का हल निकालने मे निरन्तर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और दूसरे ऐसे ही त्योहारो पर अखबारो मे इस किस्म की चेतावनी की सूचनाएँ निकला करती है कि रोशनी देखने तक के लिए औरतों को घर से बाहर नही निकलना चाहिए। इसी एक बात से आप जान सकते है कि दुनिया के इस हिस्से मे हम कैसी मुसीबतो मे फँसी हुई है। जो ऐसी सूचनाएँ लिखते है, न तो वे ही कुछ शर्म खाते है और न पढनेवाले ही। ऐसी चेतावनियाँ क्या उन्हें निकालनी चाहिए?'

एक दूसरी पंजाबी लडकी को मैंने यह पत्र पढने के लिये दिया था। उसने भी अपने कालेज-जीवन के निजी अनुभव के आधार पर इस घटना का समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि मेरे सवाददाता ने जो कुछ लिखा है, बहुत-सी लड़कियो का भी अनुभव वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिला ने लखनऊ की अपनी विद्यार्थिनी मित्रों के अनुभव लिखे है। सिनेमा-थिएटरो मे उनकी पीछे वाली लाइन में बैठे हुए लडके उन्हें बहुत दिक करते है, उनके लिये ऐसी भाषा का प्रयोग करते है, जिसे मै अश्लील के सिवा कोई नाम नहीं दे सकता। उन लडकियो के साथ किये जानेवाले भद्दे मजाक भी पत्र- लेखिका ने लिखे हैं। लेकिन मैं उन्हें उद्धृत नही करना चाहता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षा का सवाल हो, तो इसमे सन्देह नही कि उस लडकी ने जो अपने को शारीरिक दृष्टि से कमजोर बताती है,

जो इलाज साइकिल के सवार पर जोर से किताब मारकर किया, वह बिल्कुल ठीक है। वह बहुत पुराना इलाज है। मैं "हरिजन" में पहले भी लिख चुका हूँ कि यदि कोई व्यक्ति जबरदस्ती करने पर उतारू होना चाहता है, तो उसके रास्ते में शारीरिक कमजोरी भी रुकावट नहीं डालती भले ही उसके मुकाबले में शारीरिक दृष्टि से कोई बलवान विरोधी हो और हम यह भलीभाँति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी ताकत इस्तेमाल करने के इतने ज्यादा तरीके ईजाद हो चुके हैं कि एक छोटी लेकिन काफी समझदार लड़की किसी की हत्या और विनाश तक कर सकती है। जिन परिस्थितियों का जिक्र पत्र लेखिका ने किया है, उन्हीं परिस्थितियों में लड़कियों को आत्म-रक्षा के तरीके सिखाने का रिवाज आजकल बढ़ रहा है। लेकिन वह लड़की भी खूब समझती है कि भले ही वह उस घृणा आत्म-रक्षा के साधन के तौर पर अपने हाथ की किताब मारकर बच गयी हो, लेकिन इस बढ़ती हुई बुराई का यह कोई असली इलाज नहीं है। भद्दे अश्लील मजाक के कारण बहुत घबराने या डर जाने की जरूरत नहीं। लेकिन इसकी ओर से आँख मूँद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सभी मामले अखबारों में छपा देने चाहिए। इस बुराई के भण्डाफोड़ करने में किसीका भी किसी प्रकार का लिहाज नहीं करना चाहिए। इस सार्वजनिक बुराई के लिए प्रबल लोकमत-जैसा कोई इलाज नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इन मामलों को जनता बहुत उदासीन भाव से देखती है। लेकिन सिर्फ जनता को ही क्यों दोष दिया जाय ? उसके सामने ऐसे गुस्ताखी के मामले भी तो आने चाहिएं। चोरी के मामलों का पता लगाकर छापा

मारा जाता है, तब कहीं जाकर चोरी कम होती है। इसी तरह जब तक ऐसे मामले दबाये जाते रहेंगे तब तक इस बुराई का इलाज नही हो सकता। पाप और बुराई भी अपने शिकार के लिए अन्धकार चाहते है। जब उन पर रोशनी पडती है, वे खुद-ब-खुद खत्म हो जाते है।

लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकल की लडकी को भी तो अनेकों की दृष्टि से आकर्षक बनना प्रिय है। यह अति साहस को पसन्द करती है। मालूम होता है कि पत्र-लेखिका ने जिस साहस का जिक्र किया है, वह असाधारण है। आजकल की लडकी वर्षा या धूप से बचने के उद्देश्य से नही, बल्कि लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए ही तरह-तरह के भडकीले कपडे पहिनती है। वह अपने को रग कर कुदरत को भी मात करना और असाधारण सुन्दरी दिखाना चाहती है। ऐसी लडकियों के लिये कोई अहिसात्मक मार्ग नही है। मैं इन पृष्ठों मे कई बार लिख चुका हूँ कि हमारे हृदय में अहिंसा की भावना के विकास के लिये भी कुछ निश्चित नियम होते है। अहिंसा की भावना बहुत बडा प्रयत्न है, विचार और जीवन के तरीके मे यह क्रांति उत्पन्न कर देता है। यदि पत्र-लेखिका या उस तरह का विचार रखने-वाली लडकियां ऊपर बताये गये तरीके से अपने जीवन को बिल्कुल ही बदल डालें, तो उन्हें जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्क मे आनेवाले नौजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थिति में भद्रोचित व्यवहार करना सीखने लगे है लेकिन, यदि उन्हें मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्म पर हमला होने का खतरा है, तो

उनमें उस पशु मनुष्य के आगे आत्म-समर्पण करने के बजाय मर जाने तक का साहस होना चाहिये। कहा जाता है कि इस तरह कभी-कभी लड़की को बांधकर या मुँह में कपड़ा ठूँसकर विवश कर दिया जाता है कि वह आसानी से मर भी नहीं सकती, जैसी कि मैंने सलाह दी है। लेकिन फिर भी मैं जोरों के साथ यह कहता हूँ कि जिस लड़की में मुकाबले का दृढ़ संकल्प है, वह असहाय बनाने के लिए बांधे गये सभी बन्धनों को तोड़ सकती है। दृढ़ संकल्प उसे मरने की शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और दिलेरी उन्हीं के लिये सम्भव है, जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया है जिनका अहिंसा पर दृढ़ विश्वास नहीं है, उन्हें रक्षा के साधारण तरीके सीखकर कायर युवकों के अश्लील व्यवहार से अपना बचाव करना चाहिये।

पर बड़ा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार भी क्यों छोड़ दें, जिससे भली लड़कियों को हमेशा उनसे सताये जाने का डर लगता रहे ? मुझे यह जानकर दुख होता है, कि ज्यादातर नौजवानों में बहादुरी का जरा भी माद्दा नहीं रहा। उनमें एक वर्ग का होने के नाते नामवरी पैदा होने की डाह होनी चाहिये, उन्हें अपने साथियों में होनेवाली प्रत्येक ऐसी वारदात की जाँच करनी चाहिये। यदि वे शिष्टाचार नहीं सीखते, तो उनकी बाकी सारी लिखाई-पढ़ाई व्यर्थ है।

क्या यह प्रोफेसरों और स्कूल-मास्टरों का फर्ज नहीं है कि जैसे, वे अपने विद्यार्थियों की पढ़ाई के लिये लोगों के सामने जिम्मेवार बनते हैं, वैसे ही उनके शिष्टाचार और सदाचार के लिये भी उनकी पूरी जिम्मेवारी लें ?

आधुनिक लड़कियां

ग्यारह लड़कियों का लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला है। उन्होंने अपने नाम व पते उसमें दिये हैं। मैं उनके उक्त पत्र को नीचे उद्धृत करता हूँ।

"एक विद्यार्थिनी के पत्र का विवेचन करते हुए आपने हरिजन में आत्म-रक्षा कैसे करें ?" शीर्षक का जो लेख लिखा है, वह खास ध्यान से पढ़ने योग्य है। मालूम होता है कि आधुनिक लड़कियों पर आपको इतनी ज्यादा चिढ़ है कि आपने उनके सम्बन्ध में यहाँ तक कह डाला है कि "आजकल की लड़कियों को तो अनेकों (भ्रमरों) की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय है।" सामान्य स्त्री के सम्बन्ध से आपका यह विचार बहुत प्रेरणाप्रद या उत्साह-वर्द्धक नहीं।

इन दिनों जब कि स्त्रियाँ घर या एकान्तवास छोड़कर पुरुषों की मदद करने और जिन्दगी के बोझे में समान हिस्सा लेने के लिए बाहर निकली हैं, सचमुच यह आश्चर्य की बात है कि पुरुष अगर उन्हें बिल्कुल सताते हैं तो उसके लिए भी उन्हें ही बदनाम किया जाता है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उदाहरण बताये जा सकते हैं, जिनमें दोनों ही पक्षों का अपराध एक-सा साबित किया जा सकता है। ऐसी भी कुछ लड़कियाँ हो सकती हैं, जिन्हें कि अनेकों भ्रमरों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय हो। पर ऐसे उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि फूलों की शोध में सड़कों पर भ्रमनेवाले अनेक भ्रमर भी मौजूद हैं,

किन्तु यह कभी नहीं कहा जा सकता और न कहना चाहिये कि सभी आधुनिक लड़कियाँ ऐसी ही हैं या आधुनिक युवक सभी भ्रमर हैं। आप खुद अनेक आधुनिक लड़कियों के सम्पर्क में आये हैं। इसीलिए उनके दृढ़ निश्चय, त्याग और दूसरे स्त्रीत्व के सद्गुणों की छाप आपके ऊपर पड़नी ही चाहिये।

आपको पत्र लिखनेवाली बहिन ने जिस किस्म के असभ्य बर्ताव का निर्देश किया है, उसके खिलाफ लोकमत तैयार करने का काम लड़कियों का नहीं है। इसका कारण झूठी शर्म नहीं, बल्कि यह है कि उनके कहने पर कोई ध्यान नहीं देता।

लेकिन जब आप जैसे जगद्वन्द्य महापुरुष ऐसी बात कहते हैं, तो इससे तो यही ध्वनि निकलती है कि "नारी नरक की खान" वाली जीर्ण शीर्ण और अनुचित लोकोक्ति का आप भी समर्थन करते हैं।

किन्तु ऊपर जो लिखा है, उससे यह न मान लीजियेगा आधुनिक जमाने की लड़कियों में आपके प्रति आदर की भावना नहीं है। जैसे नव-युवक के मन में आपके प्रति जितना आदर है, उतना ही लड़कियों में भी है। उनका कोई अपमान करे या उनके प्रति दया दिखाये, यह सब उन्हें बहुत ही बुरा लगता है। उनका अगर सचमुच कोई अपराध हो, तो वे अपना तौर-तरीका सुधारने के लिए तैयार हैं। अगर उनका कोई कसूर हो, तो उसे निश्चित रूप से साबित करने के बाद ही उन्हें दोष देना चाहिये। इस सम्बन्ध में वे "अबला" होने के आश्रय का बहाना नहीं लेना चाहतीं, न यही सहन कर सकती हैं कि न्यायाधीश उन्हें मनमाने

तौर पर अपराधी ठहराये और वे चुपचाप खडी रहें। जो सत्य हो, उसे स्वीकार करना ही चाहिए और आधुनिक लडकियों में सत्य को स्वीकार करने की काफी हिम्मत है।"

पत्र लिखनेवाली इन बहिनों को शायद यह मालूम न होगा कि दक्षिण अफ्रिका मे ४० वर्ष से ऊपर का समय हुआ जब कि उनमें से किसी का जन्म भी नहीं हुआ होगा। उस वक्त मैंने भारत की महिलाओं की सेवा शुरू की थी। मेरा यह विश्वास है कि स्त्री-वर्ग के प्रति अपमान जनक कोई लेख मेरी लेखनी से निकल ही नहीं सकता। स्त्री-वर्ग के लिए मेरे मन में इतना अधिक आदर है कि यह विचार मेरे दिल में कभी आ ही नही सकता कि वे अवगुणों से भरी हुई हैं। अंग्रेजी में कहावत है कि स्त्री पुरुष का उत्तम अर्द्धांग है। और मेरा वह लेख तो विद्यार्थियों की शर्मनाक करतूत को सामने रखने के लिए लिखा गया था, लडकियों के दोषों को जाहिर करने के लिए नही। मगर इस रोग का निदान बताने में, यदि मुझे उचित इलाज बताना हो, तो यह रोग जिन कारणों से पैदा हुआ, उन सब चीजों का उल्लेख करना भी मेरा फर्ज था।

"आधुनिक लडकी" इस शब्द का एक खास अर्थ है। इसलिए यह कहने की जरूरत ही नहीं थी कि मेरा कथन अमुक लडकी पर लागू होता है। अँग्रेजी शिक्षा पायी हुई सभी लडकियाँ "आधुनिक लडकियाँ" नहीं हैं। जिन्हें आधुनिक लडकी की भावना और रहन-सहन का जरा भी स्पर्श नहीं हुआ, ऐसी बहुत सी लडकियों को मैं जानता हूँ। फिर भी

कितनी ऐसी भी हैं कि जो "आधुनिक लड़कियां" बन गयी हैं। मेरे कहने का उद्देश्य हिन्दुस्तान के लड़कियों को इतनी ही चेतावनी देने का था कि वे आधुनिक लड़की की नकल न करें और ऐसा करके जो प्रश्न बड़ा विकट और भयंकर बन गया है, उसे और अधिक ग्रटपटा न बना दें। क्योंकि इन घटनों का पत्र मुझे जब मिला, ठीक उसी समय आन्ध्र देश की एक विद्यार्थिनी का भी पत्र मिला। उसमें आन्ध्र के विद्यार्थियों के बर्ताव के बारे में बहुत बुरी तरह शिकायत की गयी है। उनके बर्ताव का जो वर्णन उसमें दिया गया है, वह तो लाहौर की लड़कियों द्वारा लिखे गए बर्ताव से भी बदतर मालूम होता है। आन्ध्र देश की वह कन्या मुझे लिखती है कि उनकी सहेलियों की सादी वेश-भूषा उनकी कुछ भी रक्षा नहीं कर सकती। उन लड़कों की बर्बरता दुनिया के सामने रख देने की हिम्मत नहीं, जो अपनी शिक्षा-संस्था के लिए कलंक स्वरूप हैं। इस शिकायत की ओर से आन्ध्र विश्वविद्यालय के अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करता हूँ।

उपर्युक्त पत्र लिखनेवाली ग्यारहों बहनों को मेरी सूचना यह है कि वे विद्यार्थियों के असभ्य व्यवहार के खिलाफ जिहाद शुरू कर दें। जो अपने बल पर जूझते हैं, उन्हीं की ईश्वर मदद करता है। पुरुष की गुण्डाशाही से अपनी रक्षा करने की कला लड़कियों को सीखनी ही चाहिए।

मैं सहमत हूँ कि इसके लिये आन्तरिक प्रकाश की आवश्यकता है, ग्रह की नहीं।

प्रश्न — बच्चों का सामना करते समय क्रोध और हिंसा से कैसे बचाया जा सकता है?

उत्तर—तुम्हें अपनी पुरानी कहावत याद होगी कि "पाँच वर्ष की अवस्था तक बच्चे के साथ खेलना चाहिये, १० वर्ष तक ताडना चाहिये १६ वर्ष का हो जाने पर उसके साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहिए।" परन्तु आपको दुखी न होना चाहिए। यदि कभी बच्चे पर क्रोध आ जाय तो मैं उस क्रोध को अहिंसात्मक ही कहूँगा। मैं चतुर माताओं की बात कर रहा हूँ, मूर्खों की नही, जिन्हें माँ कहा भी नहीं जासकता है।

'एक त्याग'

सन् १८९१ में इङ्गलैण्ड से वापस आकर मैंने घर का भार अपने ऊपर ले लिया और बच्चों के साथ—जिनमें लड़के और लड़कियां दोनों थीं—उनके कन्धों पर हाथ रखकर घूमने की आदत डाली। ये मेरे भाई के बच्चे थे। जब ये बड़े हो गये तब भी हमारी यह आदत बनी रही और परिवारों की बढ़ती के साथ-साथ, यह इतनी बढ़ती गई कि लोग इसे गौर से देखने लगे।

बहुत समय तक, जब तक साबरमती आश्रम के एक वासी ने मुझे यह नहीं बताया कि मेरा बड़े लड़कों और लड़कियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार सामाजिक शिष्टता के विरुद्ध है, मेरी इन बच्चों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। परन्तु उस वासी के साथ वाद-विवाद होने के बाद मैं वैसा ही करता रहा। हाल में ही दो सहकारियों ने जो वर्धा आये थे कहा, कि सम्भव है, मेरी यह आदत समाज के सामने एक बुरा उदाहरण रक्खे। अब मुझे यह आदत छोड़ देनी चाहिये। वैसे तो मैं मित्रों की चेतावनी को अवहेलना की दृष्टि से नहीं देखता, परन्तु उनका तर्क मुझे उचित न लगा। ऐसी हालत में मैंने आश्रम के पांच वासियों की राय ली। उन्होंने कहा कि युनिवर्सिटी के विद्यार्थी के प्रभाव में एक छात्रा थी, वह उससे बहुत तरह का स्वच्छन्द व्यवहार करता था और कहता था कि वह उसे अपनी बहन की तरह मानता है। इस घटना से प्रदर्शन ने यह सरना उसके

लिए नितान्त असंभव है ऐसी किसी प्रकार की अपवित्रता को ध्यान कराने पर वह घृणा प्रदर्शित करता था परन्तु यदि मैं बताऊँ कि वह लडका क्या कर रहा था, तो पाठक देखेंगे कि उसकी सारी स्वच्छन्दता अपवित्र थी। जब मैंने उसका पत्र व्यवहार पढा, तो मुझे तथा और लोगों को, जिन्होंने उसे देखा पता चला कि या तो वह पाखण्डी था या उसे अपने विषय से भ्रम था।

किसी प्रकार इस खोज से मैं सोचने लगा। मैंने पिछले दोनों सहकारियों की बात याद की और विचारा, यदि वह लडका अपने पक्ष के लिए मेरे उदाहरण का सहारा ले तो मुझे कैसा लगेगा ? मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि वह लडकी, जो उस युवक की इच्छाओं का शिकार हो रही है, जो कि उसे पवित्र और भाई की तरह समझती है, उन व्यवहारों को पसन्द नहीं करती, वलिक उनका विरोध करती हैं, परन्तु लडके के कार्यों को रोकने में असमर्थ है। इस घटना को लेकर अपने ऊपर विचार करने का परिणाम यह हुआ कि दो-तीन दिनों में मैंने अपनी आदत छोड दी और वर्धाआश्रम के वासियों को उसी महीने की १२ तारीख को सूचना भेज दी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह निर्णय करते समय मुझे दु ख हुआ। इस आदत के कारण या आदत के रहते समय मेरे मन में कभी कोई अपवित्र विचार नहीं आया। मेरा व्यवहार खुला हुआ था। मेरा विश्वास है, यह एक माता-पिता की तरह का व्यवहार था और मेरे संरक्षण में रहनेवाली न जाने कितनी लडकियों में मेरा इतना विश्वास हो गया है, जितना शायद ही कभी

किसी का रहा हो। मैं ऐसे ब्रह्मचर्य का समर्थक नहीं हूँ, जिसकी रक्षा के लिए कोई दीवार खड़ी करनी पड़े और जो थोड़ी भी लालच से टूट जाय, परन्तु साथ-ही साथ मैं उन खतरों को भी जानता हूँ जो मेरी तरह की स्वच्छन्दता से उत्पन्न हो सकते हैं।

मेरी आदत चाहे जितनी भी पवित्र क्यों न रही हो, इस खोज से मुझे छोड़ देनी पड़ी। मैं एक ऐसा अनुभव कर रहा हूँ, जिसमें सतत सचेत रहने की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए हजारों लोग मेरे हर काम को बड़े गौर से देखते हैं। मुझे ऐसे काम न करने चाहिए, जिनके पक्ष में बहस करने की आवश्यकता हो। मेरा उदाहरण सबके लिए नहीं था। उस युवक की घटना से चेतावनी मिली है। मुझे आशा है कि मेरा यह त्याग ऐसे सभी लोगों की रक्षा करेगा, जिन्होंने मेरी देखादेखी या स्वत. गलती की होगी। निष्कलुष यौवन एक अमूल्य सम्पत्ति है, जिसे क्षणिक उद्रेक के लिए जो सुख कहा जाता है गंवाना नहीं चाहिये, और इस लड़की की भाँति जो शक्तिहीन हों, उन्हें चाहिए कि इस प्रकार के युवकों के व्यवहारों का विरोध करने की क्षमता प्राप्त करें, चाहे वे निष्पाप ही क्यों न घोषित किये जायें। ये युवक या तो गुण्डे होते हैं, या इन्हें यह ज्ञात नहीं होता कि वे क्या कर रहे हैं।

'उदार बहिनें बनो'

उदि विल लडकियों के कॉलेज जाफना में व्याख्यान देते हुए गांधीजी ने कहा .—

आज प्रातःकाल तुम लोगों से मिलकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। मुझे तुम लोगों के छोटे-छोटे उपहार, जो अपने हृदय के उद्गार-स्वरूप तुमने एक बडे उपहार के रूप मे मिलाकर दिये है, ठीक नही लगे। मैं जानता हूँ, लडको की अपेक्षा अधिक संकोची होने के कारण तुम यह नहीं वताना चाहती कि तुमने मुझे कुछ भी दिया है, परन्तु मेरे भारत-वर्ष से हजारो लाखों लड़कियो से मिलने के कारण, उनके लिये असम्भव है कि कोई अच्छा काम जो वे करें, मुझसे छिपा रक्खें।

कुछ ऐसी भी लडकियाँ हैं, जो अपने बुरे काम भी मुझसे कहने में नही हिचकतीं। मै आशा करता हूँ कि यहाँ उपस्थित कोई भी लडकी कोई बुरा काम नही करती। मेरे पास इतना समय नहीं कि इसकी छानबीन करूँ, इसलिये मै इस विषय में प्रश्नों से तुम्हें परेशान नहीं करूँगा। लेकिन, यदि हमारे वीच में ऐसी लडकियाँ है, जो बुरे काम करती है, तो मैं उन्हें वता देना चाहता हूँ कि उनकी शिक्षा व्यर्थ है।

माँ-बाप तुम्हें यहाँ गुडियाँ वनने के लिये नहीं भेजते, वल्कि उदार बहनें बनने के लिये, जिसकी वेष-भूषा ही दूसरी होती है। जब से वह अपने से गरीवों और भाग्यहीनों के विषय में अधिक ध्यान देने लगती हैं और अपने विषय में कम सोचने विचारने लगती हैं, उसके बाद से तुरन्त

वह उदार बहन कहलाने लगती हैं। तुम उदार बहनें बन गयी हो, क्योंकि तुमने ऐसे लोगों के लिये उपहार दिये हैं, जो तुमसे गरीब हैं।

थोड़ा धन देना सरल है, किन्तु स्वयं थोड़ा भी काम करना उससे कठिन है। यदि तुम्हें उन लोगों से सच्ची सहानुभूति है, जिनके लिये तुमने यह भेंट दी है, तो खादी पहनो जो उनकी बनाई हुई वस्तु है। यदि खादी तुम्हारे सामने लायी जाय और तुम यह कहो कि "खादी कुछ खुरदुरी है, हम इसे नहीं पहन सकतीं" तो मैं यही समझूँगा कि तुम्हारे भीतर आत्म-त्याग की भावना नहीं है।

यह इतनी सुन्दर चीज है कि इसमें छोटे-बड़े, छूत-अछूत का कोई भेद-भाव नहीं, और यदि तुम्हारा मन भी ऐसा ही चाहता है और अपने को कुछ लड़कियों से ऊँचा नहीं समझती, तो सचमुच बड़ा अच्छा है।

भगवान् तुम्हारा भला करे !

छात्राओं को सलाह

अपने जाफना राम नाथन गर्ल्स कालेज के व्याख्यान मे गांधीजी ने कहा था.—

जाफना के विभिन्न पाठशालाओ का दौरा समाप्त करने के लिए यहां आने से आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।

तुम्हारी इस प्रतिज्ञा से, कि आज तुम अपना वार्षिक अधिवेशन करोगी और खादी के लिये धन एकत्र करोगी, मै प्रभावित हुआ हूँ। मै यह जानता हूँ कि यह झूठी प्रतिज्ञा नही है, बल्कि तुम धार्मिक रूप से इसकी पूर्ति करोगी। यदि ये करोड़ो लोग, जिनकी ओर से मे भ्रमण कर रहा हूँ, अपनी बहनो के इस दृढ प्रस्ताव को जान पाते, तो मै जानता हूँ उनके दिलो को प्रसन्नता होती। परन्तु तुम्हें यह जानकर दुःख होगा कि ये गूगे करोडो लोग, जिनके लिए तुम लोगों ने तथा लङ्का के लोगो ने तमाम उपहार दिये है, यदि उन्हें समझाने की चेष्टा करूँ, तो भी समझ नही पायेगे। उनके दुःख-भरे जीवन का सम्भवत ऐसा कोई वर्णन नही हो सकता, जो उसका सच्चा रूप तुम्हारे सामने रक्खे।

इसके बाद तुरन्त मै इस प्रश्न पर पहुँचता हूँ, कि तुम लोग इस तरह के लोगो के लिए क्या करोगी?' थोडी सादगी का सुझाव पेश करना आसान है, परन्तु यह तो इस प्रश्न के साथ खिलवाड करना होगा।

इसी प्रकार के विचारो से मैं चरखे पर पहुँचा। जिस प्रकार मै

तुमसे कह रहा हूँ, वैसे ही अपने से कहो—"यदि तुम इन दलित लोगों और अपने बीच में एक शृंखला जोड़ सको, तो तुम्हारे लिए और संसार के लिए कुछ आशा है।"

इस पाठशाला में तुम्हें धार्मिक शिक्षा बड़े अच्छे ढङ्ग से दी जाती है। यहाँ एक सुन्दर मन्दिर भी है। यहाँ के पाठ्य क्रम से यह भी पता चलता है कि दिन में सबसे पहले तुम पूजा करती हो, जो बड़ा अच्छा और उन्नतिशील है। लेकिन, यदि प्रति-दिन वह कार्यरूप में परिणत नहीं किया जाता, तो बड़ी सरलता से यह एक रस्म-अदाई ही तक रह जायगा। इसी लिए मैं कहता हूँ कि पूजा को कार्य-रूप में लाने के लिए चर्खा का प्रयोग करो। आधे घण्टे इसे लेकर बैठो और इन करोड़ों आदमियों के विषय में सोचो और ईश्वर के नाम पर कहो कि मैं इन्हीं के लिए कातती हूँ।" यदि हृदय से और यह जानकर कि तुम इस कार्य से और सम्पन्न तथा विनम्र हो और यदि तुम दिखाने के लिए नहीं, बल्कि अपने अंगों को ढकने के लिए पहनोगी, तो तुम्हें खादी पहनने में और अपने तथा करोड़ों लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने में कोई हिचक न होगी।

यहाँ की लड़कियों से मैं केवल इतना ही नहीं कहना चाहता। अगर तुम यह चाहती हो कि सर रामनाथ ने तुम्हारा जो ध्यान रखा और तुम्हारे लिए जो कुछ किया तथा श्रीमती रामनाथ जो कुछ तुम्हारे लिए कर रही हैं उसके योग्य बने रहो तो तुम्हें और भी बहुत सी चीजें करनी होंगी। मैंने देखा है कि तुम्हारी पत्रिकाओं में पुराने स्कूलों में

जो काम लडकियाँ कर रही है, उसको गर्व के साथ वर्णन किया गया है। मैंने इस तरह की भी नोटिस देखी है। अमुक ने अमुक से विवाह किया—४ या ५ नोटिसें मेरा ऐसा विचार है कि जो लडकी २२ या २५ साल की अवस्था पर पहुँच गयी हो, उसके विवाह करने में कोई हर्ज नही। लेकिन इन नोटिसो में एक भी ऐसी लडकी नही देखी, जिसने अपना जीवन सेवा के लिए अर्पण कर दिया हो। इसलिए मै तुमसे वही कहना चाहता हूँ जो हिजहाईनेस महाराज कालेज बंगलौर की लडकियो से कहा था कि शिक्षा के लिए जो प्रयत्न किया जाता है और यदि लडकियाँ स्कूल छोडते ही जीवन से अलग हो जायँ और गुडियाँ बन जायँ तो हमें बहुत थोडी चीज मिलेगी। स्कूल और कालेज छोडने के साथ ही बहुत सी लडकियाँ सामाजिक जीवन से अलग हो जाती है। इस जगह की लडकियो को ऐसा न चाहिए। तुम्हें मिस एमरी तथा अन्य लोगो का उदाहरण न भूलना चाहिए, जो यहाँ सरक्षण कर रही है। और यदि मै झूठ न कहता होऊँ तो ब्रह्मचारिणी हैं।

हर लडकी हर हिन्दुस्तानी लडकी, विवाह करने के लिए ही नही पैदा हुई है। मै बहुत-सी ऐसी लडकियो को बता सकता हूँ, जिन्होने एक पुरुष की सेवा की जगह अपना जीवन सेवा के लिए दे दिया है। यही समय है जब हिन्दू लडकियाँ अपने में से पार्वती और सीता-जैसी स्त्रियाँ पैदा करें।

तुम अपने को 'सैवितो' कहती हो। तुम्हें मालूम है, पार्वती ने क्या किया था? अपने पति के लिए उसने धन नही लगाया था और न

अपने को ही बेचा था और आज वह हिन्दू समाज में सात सतियों में से एक मानकर पूजी जाती है—इसलिए नहीं कि उसने किसी विद्यालय में कोई डिग्री पायी थी, बल्कि अपनी अभूतपूर्व तपस्या के कारण।

मैं यही देखता हूँ कि दहेज की घृणित प्रथा है। इसी कारण युवती स्त्रियों को उपयुक्त वर मिलना कठिन हो जाता है। बड़ी अवस्थावाली लड़कियों से तुम में से कुछ बड़ी हो गयी हैं—इस प्रकार की कुप्रथाओं के विरोध करने की आशा की जाती है। यदि करना पड़ा, तो तुम्हें जीवन पर्यन्त या कुछ समय तक कुमारी रहना पड़ेगा। फिर जब तुम्हें जीवन-साथी की आवश्यकता होगी, तो तुम्हें ऐसे पुरुष की तलाश नहीं होगी जो धनवान, रूपवान प्रसिद्ध हो, बल्कि जिसमें चरित्र का निर्माण करने वाले सभी अनुपम गुण हों। तुम्हें मालूम है, नारदजी ने शिवजी के विषय में पार्वती से क्या कहा था—दुबला-पतला, भस्म लगा हुआ शरीर, शरीर में कोई सौन्दर्य नहीं, ब्रह्मचारी—और पार्वती ने कहा, "हो वही मेरे पति होंगे।" तुम्हें बहुत से शिव नहीं मिलेंगे, जबतक तुम में से कुछ लड़कियां तपस्या करने को तैयार न होंगी—पार्वती की भांति हजारों वर्ष नहीं। हम दुर्बल प्राणी ऐसा नहीं कर सकते, परन्तु तुम जीवनभर तो ऐसा कर ही सकती हो।

यदि तुम ये बातें स्वीकार करो तो तुम्हारा गुड़ियों की तरह दिखाई देना बन्द हो जाय और तुम्हारी इच्छा होगी कि पार्वती, सीता, दमयन्ती सावित्री की भांति सती बनो। मेरी विनम्र राय में उसी समय (उसके पहले नहीं) इस तरह की संस्था के योग्य हो सकोगी।

ईश्वर करे तुम्हारे हृदय में भी ऐसी इच्छाएँ जगें और यदि ऐसा हुआ तो वह इसे कार्य-रूप में परिणत करने में सहायक हो।

बाल-विवाह का शाप

मिसेज मारगेरेट ई० कजिन्स ने मेरे पास एक दुर्घटना का समाचार भेजा है। मालूम पड़ता है कि यह दुर्घटना अभी हाल में बाल-विवाह के कारण मद्रास में हुई है। इस विवाह में 'वर' २६ वर्ष का तथा कन्या १३ वर्ष की थी। ये पति-पत्नी मुश्किल से १३ ही दिन साथ रह पाये होंगे कि लड़की जलकर मर गयी। ज्यूरी ने यह फैसला दिया है कि पति कहलानेवाले उस पुरुष के असहनीय और निर्दय बलात्कार के कारण उसने आत्महत्या की थी। लड़की के मरने के समय दिये हुए बयान से मालूम होता है कि उस 'पति' ने ही उसके कपड़ों में आग लगायी थी। कामातुर लोगों को विवेक और दया नहीं होती।

परन्तु हमें यहाँ इस बात से सरोकार नहीं कि वह कैसे मरी, किन्तु इन बातों से तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि—

(१) उसका विवाह १३ वर्ष की आयु में किया गया था।

(२) उसकी कामेच्छा तो थी ही नहीं, क्योंकि उसने पति की काम-चेष्टा का विरोध किया था।

(३) उस पति ने उसके साथ जबर्दस्ती जरूर की। और, वह लड़की अब संसार में नहीं है।

किसी पाशविक प्रथा की धर्म से पुष्टि करना धर्म नहीं, अधर्म है। स्मृतियों में परस्पर-विरोधी वाक्य भरे पड़े हैं। इन विरोधों से तो इत्मीनान के काबिल यही एक नतीजा निकल सकता है कि उन वाक्यों को, जो प्रचलित और सर्वमान्य नीति के और खासकर स्मृतियों में ही लिखित आदेशों के विपरीत हैं, क्षेपक समझकर छोड़ देना चाहिये। एक ही पुरुष एक ही समय में आत्म संयम का उपदेश देनेवाला और पशु-वृत्ति को उत्तेजित करनेवाला वाक्य नहीं लिख सकता। जिसे आत्मसंयम से कुछ भी सरोकार न हो और पाप में डूबा पड़ा हो, वही यह कह सकता है कि कन्या के ऋतुमती होने के पूर्व ही उसका विवाह न करने से पाप लगता है। मानना तो यह चाहिये कि रजस्वला होने के बाद भी कुछ बरस तक लड़की का विवाह करना पाप है। उसके पहले तो विवाह का ख्याल भी नहीं किया जा सकता। रजस्वला होने के साथ ही लड़की सन्तति उत्पन्न करने के योग्य इसी भांति नहीं हो जाती जैसे कि मूँछ के भसराते ही कोई लड़का सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं हो जाता है।

बाल-विवाह की यह प्रथा नैतिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार से हानिकारक है। यह हमारी नीति की जड़ काटती है और हममें शारीरिक निर्बलता लाती है। ऐसी प्रथाओं को रहने देकर हम स्वराज्य और ईश्वर से दूर जाते हैं। जिस आदमी को नाजुक उमर की लड़की के बारे में कुछ चिन्ता नहीं है, उसे ईश्वर की भी कोई परवा न होगी। अध कच्चरे पुरुषों में तो स्वराज्य के लिये लड़ने की और न उसे पाने पर कायम रखने की ही ताकत होती है। स्वराज्य की लड़ाई का अर्थ केवल

राजनैतिक जागृति ही नहीं है, बल्कि सबी प्रकार की सामाजिक, शिक्षा सम्बन्धी, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक जागृति है। सहवास की स्वीकृति देने की उमर का कानून से बढ़ाने की कोशिश की जा रही है। कुछ अल्प-सख्यक लोगों के होश दुरुस्त करने के लिये यह ठीक हो सकता है, परन्तु कानून से कोई ऐसी सामाजिक कुप्रथा रोकी नहीं जा सकती है। इसे रोकनेवाला तो केवल जाग्रत लोक- मत ही है। ऐसे विषयों में कानून बनाने का मैं विरोध नहीं करता। परन्तु कानून से अधिक जोर मैं लोकमत तैयार करने पर अवश्य देता हूँ। मद्रास की ऐसी दुर्घटना होना असम्भव हो जाता, यदि वहाँ बाल-विवाह के विरुद्ध लोकमत जीता-जागता होता। मद्रास के इस मामले में वह युवक कोई अनपढ मजदूर नहीं है, वरन् पढा लिखा बुद्धिमान टाईपिस्ट है। यदि लोकमत नाजुक उमर की लड़कियो के विवाह या पति-सहवास का विरोधी होता, तो उसके लिये उस लड़की से विवाह करना वा सहवास करना असम्भव हो जाता। साधारणत १८ वर्ष से कम उमर की लड़की का विवाह कभी नही होना चाहिये।

बाल-विवाह के समर्थन में

एक सज्जन लिखते हैं —

"२६ अगस्त सन् १९२६ के 'यंग इंडिया' में बाल-विवाह का शाप शीर्षक आपके लेख को पढ़ कर मुझे बड़ा ही दुःख पहुँचा। कन्या के ऋतुमती होने के पूर्व लड़की का विवाह न करने से पाप लगता है—यह तो वे ही लोग कह सकते हैं जो कि आत्म-संयम से अनभिज्ञ हैं और जो पाप में डूबे पड़े हैं।"

"मेरी समझ में यह नहीं आता कि आप अपने से मुखालिफ राय रखनेवालों को औदार्य की दृष्टि से क्यों न देख सके? कोई यह अवश्य कह सकता है कि बाल-विवाह के शास्त्र-विहित ठहराने में मनु ने सरासर भूल की थी। परन्तु मैं यह कहना अनुचित मानता हूँ कि जो लोग बाल-विवाह पर दृढ़ हैं, वे पाप में डूबे पड़े हैं—यह कहना विवाद की शिष्टता की सीमाका उल्लंघन हो जाता है। वास्तवमें मैंने पहले-ही-पहल बाल विवाह के विरुद्ध ऐसी दलील सुनी है। न तो हिन्दू समाज-सुधारकों ने और न ईसाई पादरियों ने, जहाँ तक मुझे मालूम है, कभी ऐसा कहा है। इसलिए जब मैंने इस दलील को महात्मा गांधी की लेखनी से आता हुआ पाया, (महात्मा गांधी, जिन्हें कि मैं प्रतिद्वन्द्वी के प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार करने में सम्पूर्ण पुरुष मानता हूँ।) उस वक्त जो धक्का मुझे पहुंचा उसको जरा ख्याल कीजिए।

"आपने तो एक दो को नहीं, बल्कि प्राय प्रत्येक हिन्दू-शास्त्रकार

आपको यूरोपीय तथा भारतीय दोनों सभ्यता का अच्छी तरह ज्ञान है। आप यह जरूर बतला सकते है कि सब बातो को देखते हुए हिन्दुस्तानी पत्नियाँ अधिक पतिपरायण होती हैं या योरोप वाली, कि गरीब लोगो में हिन्दुस्तानी पति अपनी स्त्री के साथ रहमदिली का वर्ताव रखता है या योरोपीय, कि हिन्दुस्तानियो में क्लेशकारी विवाह बहुत कम होते हैं या योरोपियनों मे और आया कि भारतीय समाज में विषय-सम्बन्धी आचार अधिक शुद्ध हैं कि योरोपीय में। यदि इन पहलुओं से यूरोपीय विवाहो की अपेक्षा हिन्दुस्तानियो के विवाह अधिक सफल हैं। तो बाल-विवाह को जो कि हिन्दुस्तानी विवाहों की एक विशेषता है बुरा न ठहराना चाहिए।

मै यह नहीं मान सकता कि हिन्दू-शास्त्रकार बाल-विवाह का आदेश देते समय समाज के सार्वजनिक कल्याण के सिवाय और किसी विचार से प्रेरित हुए थे। मैं समझता हूँ कि बाल-विवाह हिन्दू समाज के उन लक्षणों में से एक है कि जिनके द्वारा अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसकी शुद्धता कायम रही है, और जिन्होने उसको छिन्न-भिन्न होने से बचाया है। शायद आप इन सबको सच न मानेंगे लेकिन हम यह आशा नहीं रख सकते कि आप अपनी उस धारणा को त्याग दें कि वे सब हिन्दू-शास्त्रकार, जिन्होंने कि कन्याओं के बाल-विवाह पर जोर दिया है, आत्म संयम शून्य थे और "पाप में डूबे पडे थे।"

आपने मद्रास वाले मुआमले का जो हवाला दिया है, वह बड़ा विचित्र है। ज्यूरी का ख्याल यह था कि उस लड़की ने आत्मघात कर

लिया था, लेकिन उस लड़की ने यह बयान दिया कि उसके पति ने उसके कपड़ों में आग लगा दी थी। इन परस्पर विरुद्ध बातों को देखते हुए यह मानना बहुत मुश्किल है कि जिन बातों को आप निर्विवाद मानते हैं, वे बातें सचमुच निर्विवाद हैं। १३ वर्ष से नीची उम्रवाली लाखों कन्याओं के विवाह हो चुके हैं, लेकिन पति की निर्दयतापूर्वक कामचेष्टा के कारण की हुई आत्महत्या का एक भी नजीर पहले सुनने में नहीं आयी। सम्भवत इस मामले में कोई खास बातें थीं, जिनको हम जानते नहीं हैं और उस लड़की की मृत्यु का खास कारण बाल विवाह नहीं था ?"

कविवर टैगोर ने ठीक कहा है—उन घटनाओं के आघात को जो छिपे हुए किसी की आत्मा को चोट पहुंचाती हैं, कम करने के निमित्त किसी मौजूँ फिलसफे के गढ़ देने में गोट से बहुत कस जाता है। 'यंग इंडिया' के ये 'पाठक' तो एक कदम और आगे बढ़ गये हैं। इन्होंने एक मौजूँ फिलसफे को ही नहीं गढ़ा है बल्कि हकीकतों को भी भुला दिया है और गैर सबूत वाले बयानात पर अपनी दलील उठा कर खड़ी कर दी है। अनुदारता वाले इलजाम के बारे में मैं कुछ लिखना नहीं चाहता यदि और किसी कारण से नहीं तो महज इसीलिए ही कि मैंने शास्त्रकारों पर दोषारोपण नहीं किया है बल्कि मैंने तो उन लोगों पर बुराई थोपी है जो कि मातृत्व भार न सम्भाल सकने वाली अवस्था में विवाह कर देने पर आग्रह करें, अनौदार्य का प्रश्न तो उठता है जब कि कोई अशुद्ध भाव का नाहक इलजाम किसी जीवित मनुष्य पर लगावे, न कि उसपर

जिसका अस्तित्व न हो, परन्तु मैं पूछता हूँ कि इस पत्र लेखक के पास कोई ऐसा प्रमाण है जिसके बिना पर वह यह कह सकता है कि जिन स्मृतिकारों ने आत्म-संयम का उपदेश दिया था, उन्होंने ही उन्हीं स्मृतियों में बालिका विवाह की आज्ञा दी थी। ऋषि लोग दुराचारी नहीं थे और न शारीरिक विकास के नियमों से अनभिज्ञ थे। क्या यह मान लेना अधिक उदार न होगा ? लेकिन यदि बाल विवाह (न कि कम उम्र का विवाह, क्योंकि यह तो २१ के पूर्व तक का किया हुआ संबन्ध भी हो सकता है) की आज्ञा देनेवाले ग्रन्थ भी प्रामाणिक पाये, तो हमको चाहिए कि प्रत्यक्ष अनुभव और वैज्ञानिक ज्ञान की दृष्टि से उनका त्याग कर दें। मैं लेखक के इस वाक्य की सचाई पर सन्देह प्रकट करता हूँ कि बाल-विवाह हिन्दू-समाज में सर्वत्र प्रचलित है। मुझे अवश्य दुःख होगा, अगर यह बात सच निकले कि लाखों बालिकाएँ विवाहिता हो जाती हैं यानी वे जब कि स्वयं बच्चियाँ ही हैं, पत्नियों की तरह रहने लगती हैं। यदि हिन्दू-समाज में लाखों कन्याओं का विवाह ११ वर्ष की अवस्था में हो जाया करते तो हिन्दू लोग जाति की हैसियत से कभी के नष्ट हो गये होते।

और न उससे यही बात सिद्ध होती है कि यदि माता-पिता अपनी कन्याओं के पति पसन्द करना जारी रखना चाहें, तो सगाई और विवाह जल्दी हो जाने चाहिये और इसमें तो और भी कम सत्यता है कि यदि लड़कियों को अपनी पसन्दगी करनी है तो संवरण (Courtship and flirtation) या भ्रष्टाचार का होना लाजिमी ही है। आखिर

योरोप से भी तो संवरण सर्वत्र प्रचलित नहीं है और हजारों हिन्दू-कन्याओं का विवाह १५ वर्ष के बाद होता भी है और उनके माता-पिता ही उनके लिये वर पसन्द करते हैं। मुसलमान माँ-बाप तो हमेशा अपनी सयानी लड़कियों के ख्वाविन्द खुद ही पसन्द करते हैं। यह पसन्दगी स्वयं लड़की करे या उसके माता-पिता यह बिल्कुल दूसरी ही बात है और यह बात रिवाज के अख्तियार में है।

इस पत्र के लेखक ने इस बात के समर्थन में कोई सबूत पेश नहीं किया कि सयानी उम्र में ब्याही हुई कन्याओं की सन्तानें बालिकावस्था में विवाहिताओं की औलादों से कमजोर होती हैं। भारतीय तथा योरोपीय दोनों समाजों के मेरे अनुभवों के होते हुए भी मैं उनके आचार की तुलना करना नहीं चाहता। बहस के लिए जरा देर को यदि मान भी लिया जाय कि योरोपीय समाज के आचार हिन्दू-समाज के आचार से निकृष्ट हैं, तो क्या उससे यही स्वाभाविक अनुमान हो सकता है कि यह निकृष्टता सिनेवलूसियन के बाद शादी करने के कारण ही है।

अन्त में मद्रासवाला मामला पत्रप्रेषक की कुछ मदद नहीं पहुँचाता है; प्रत्युत उसका उसे प्रयोग करना तो उनको हकीकत को ताला ताक रख कर जल्दबाजी के साथ किसी नतीजे पर पहुँच जाना जाहिर करता है। अगर वे मेरे उस लेख को फिर उठा कर देखेंगे तो उनको पता चलेगा कि मैं अपने नतायज पर साबित शुदा बातों से ही पहुँचा हूँ। मेरा निर्णय तो मृत्यु के कारण से जरा भी लगाव नहीं रखता, यह सिद्ध किया गया था कि :—

(१) लडकी कमसिन थी।

(२) उसकी कामेच्छा तो थी ही नहीं।

(३) उसके पति ने काम-चेष्टा मे जबरदस्ती जरूर की।

(४) वह लड़की अब इस संसार मे नहीं है।

लडकी ने यदि आत्मघात किया तो बुरा किया, लेकिन यदि उसे उसके पति ने जलाकर मार डाला—चूँकि वह उसकी पशु-वृति को सन्तुष्ट न कर सकी, तो और भी बुरा हुआ। उस लडकी की वह उम्र तो खेलने और सीखने पढने की थी—न कि पत्नी का वर्ताव करने की और अपने नाजुक कन्धो पर गृहस्थी का भार उठाने की या "स्वामी" की गुलामी करने की।

ये लेखक समाज मे एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं। भारत-माता अपने उन लडके और लडकियो से अधिक अच्छी बातो की आशा रखती है जिन्होने उदार शिक्षा पाई है और जिनसे राष्ट्र के लिए ही सोचने-समझने तथा कार्य करने की आशा रखी जाती है। हममे बहुत-सी बुराईयाँ मौजूद हैं—वे नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सब ही प्रकार की हैं। उनके लिए धैर्य युक्त अध्ययन, सपरिश्रम अनुसन्धान और सावधानी से काम करने की जरूरत है। बयान मे सत्य और उस पर विचार करते समय स्वच्छ विचार की जरूरत तथा गाम्भीर्य-पूर्ण और निष्पक्ष निर्णय भी दरकार हैं और तब हम यदि जरूरी हो, तो आपस मे जमीन-आसमान का मत-भेद रख सकते है परन्तु यदि हम सचाई को गहराई तक पहुँचने की और फिर चाहे जो हो जाय उसपर डटे रहने की कोशिश

नहीं करेंगे तो इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने-अपने धर्मों, अपने देश और राष्ट्रीय हित को नुकसान पहुँचावेंगे।

बाल-विवाह के भयानक परिणाम

बाल-विवाह-विरोधी कमेटी ने बाल-विवाह पर एक लाभदायक और खोजपूर्ण नोट निकाला है। मैं उसके कुछ पैराग्राफ, जो विशेष महत्व रखते हैं, दे रहा हूँ।

हिन्दुस्तान की १९३१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार १५ वर्ष से कम अवस्था में निम्नलिखित संख्या लड़कियों में व्याही गयी—

अवस्था	प्रतिशत विवाहित
०—	८
१—	१२
२—	२·०
३—	४२
४—	६६
५—१	१९·२
१०—१	२८ १

इस प्रकार १०० पीछे लगभग एक लड़की १ वर्ष से कम अवस्था में व्याही गयी और यह भयानक बात १५ वर्ष के नीचे हर अवस्था में होती रही।

इसका एक परिणाम यह हुआ कि इस देश में बाल-विधवाओं की संख्या इतनी बढ़ी इस पर विश्वास नही किया जा सकता :—

अवस्था	विधवाओं की संख्या
०—१	१५१
१—२	१७८
२—३	३४८
४—५	६.७
५—१०	१५०१
१०—१५	१०५४८
	१८५३३

कहा जाता है कि बाल-विवाह की प्रथा परिमाण मे छोटी है और सभी जगह नही है, लेकिन अगर विधवा बालिकाओ की संख्या ऊपर दी गयी संख्या का सौवाँ हिस्सा हो तो भी कोई मानुसिक जन-समाज या सरकार बिना इसका अन्त किये न मानेगी। इस सिलसिले मे हमे यह भी याद रखना चाहिए कि इसमे से बहुत सी बालिकाओं के लिए पुनर्विवाह असम्भव है।

दूसरा परिणाम बाल-माताओं की बडी संख्या है, जिनका सन्तान होने में ही देहान्त हो जाता है। इस प्रकार की मृत्यु का माध्यम भारत मे २००००० प्रतिवर्ष है। इससे हर घण्टे २० मृत्यु होती है और इनमें से बहुत-सी तो २० साल से नीचे ही मर जाती हैं। सर जान मेगा के कथनानुसार हर १००० युवती माताओं पर १०० ऐसी है, जो स्वाभा-

विकतः सन्तानोत्पत्ति समाप्त होने के पूर्व ही सन्तानोत्पत्ति में मर जाती हैं। माताओं की मृत्यु की हमारे पास कोई सही तादाद नहीं, परन्तु भारत में हर हजार में २४५ होती है जब कि इङ्गलैंड में केवल ४५।

आखीर में बाल-विवाह से माँ के ऊपर ही बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि बच्चे पर भी और इस प्रकार जाति पर भी पड़ता है। हमारे देश में हर १००० पैदा हुए बच्चों पर १८१ मर जाते हैं। यह तो औसत में ऐसी जगहें हैं, जहाँ औसत १०० पीछे ४०० तक पहुँच जाता है। इस मामले में यहाँ की पिछड़ी हुई हालत का पता जापान या इङ्गलैंड की शिशु मृत्यु की सरकारी रिपोर्ट से मिलान करने पर स्पष्ट हो जाती है, जहाँ यह २४ प्रति तथा ६० प्रतिशत ही है। इस बात को देखते हुए यह प्रथा बन्द की जा सकती है, यह बड़ा ही भयानक भी है और हमारा अशिक्षित समाज ही इस बुराई के बढ़ाने का उत्तरदायी है

सबसे दुःख की बात तो यह है कि इस दिशा में वृद्धि हो रहा है। उदाहरण के लिए १९२१ ई० में १ साल से कम अवस्था का ९०६६ पत्नियाँ थीं। १९३१ ई० में यह संख्या ४४०८२ हो गई इस प्रकार ५ गुनी बढ़ती हो गयी और आबादी केवल दसवा हिस्सा ही बढ़ी। फिर १९२१ में एक वर्ष से कम अवस्था वाली ७५९ विधवाएँ थीं और १९३१ में १५१५ हो गई लगातार गणना देखने से बड़ा आश्चर्यजनक बात मिलती है। इस प्रकार की बुराइयों के रुकने की अपेक्षा आबादी कहीं अधिक गति से बढ़ती जा रही है। अतएव उनके रोकने की आजकल की तरह शायद ही कभी जरूरत रही हो और सरकार को इस विषय में सचेत करने तथा

समाज को जगाने से अधिक महत्वशाली एवं आवश्यक दूसरा कोई कार्य भारतीय महिला-आन्दोलन के लिये नहीं हो सकता।

इस संख्या को देख कर हमारा सिर लज्जा से झुक जाना चाहिए, परन्तु इससे यह बुराई दूर नहीं होगी। कम-से-कम बाल-विवाह का रोग देहातो में उसी प्रकार फैला है, जैसे शहरो में। इसको रोकने का दायित्व विशेषकर स्त्रियों का ही है। इसमे कोई सन्देह नही कि पुरुषों को भी अपना भाग पूरा करना है लेकिन जब कोई पुरुष पशु का रूप धारण कर लेता है, तो वह तर्क की परवाह नही करता। मताओ को ही शिक्षित करने तथा उनके कर्तव्यो के प्रति जाग्रत करने की आवश्यकता है ताकि वे ऐसे बुरे कार्यों से इन्कार कर दें। यह स्त्रियों के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? अतएव मैं समझता हूँ कि अखिल भारतीय महिला-संस्था को अपने उद्देश्य मे सफल होने के लिए देहातों मे जाना होगा। ये नोट बडे मूल्यवान हैं और वे कुछ पढे-लिखे अंग्रेजी जाननेवाले शहर में ही, रहनेवालों तक पहुँचते है। इसके लिए तो देहाती स्त्रियो के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता है। यदि ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो जाय तो भी काम सहल नही हो जायगा। परन्तु कभी भी इस प्रकार के परिणाम के लिए ऐसे काम करने ही पडेंगे। क्या अखिल भारतीय महिला-संघ और अखिल भारतीय बी० आई० ए० एक दूसरे का सहयोग करेंगे।

किसी भी गाँवो में काम करनेवाले स्त्री या पुरुष को केवल सामाजिक सुधार के लिये देहात में जाने की आवश्यकता नहीं। ग्राम्य जीवन

के हर क्षेत्र से सम्पर्क रखना होगा, मैं फिर दुहराना चाहता हूँ कि देहात में काम करने का तात्पर्य पढ़ना-लिखना या हिसाब-किताब की ही शिक्षा नहीं, बल्कि देहात के लोगों में सच्चे जीवन की आवश्यकताओं की शिक्षा देना तथा उन्हें इस योग्य बनाना है कि वे चेतन प्राणी कहे जा सकें।

असहाय विधवाएँ

एक दुःखी मित्र ने एक दर्द-भरा पत्र भेजा है, जिसमें उन्होंने एक १७ साल की लड़की के बारे में लिखा है कि छोटे से भूकम्प में जिसके पति, दो माह के बच्चे, ससुर और पति के छोटे भाई का देहान्त हो गया, यानी ससुराल के सारे परिवार का नाश हो गया है। मेरे संवाद-दाता लिखते हैं कि वह सुरक्षित बच निकली थी और केवल अपने शरीर पर कपड़ों के साथ वापस आयी। वह उनके चचा की लड़की है और उन्हें यह समझ नहीं पड़ता कि वह जी कैसे बहलायें या उसे क्या करें। उसे स्वयं भी कुछ चोट आयी है। पैरों में आघात पहुँचा है, और भाग्यवश हड्डियाँ ठीक स्थान पर हैं। संवाददाता ने आखिर में लिखा है —

"मैंने उसे उसकी माँ के पास लाहौर में छोड़ दिया है। मैंने विन-म्रता से उससे और सम्बन्धियों से उसके पुनर्विवाह का जिक्र किया। कुछ ने तो मेरी बात सहानुभूति-पूर्वक सुनी, परन्तु औरों ने मेरे प्रस्ताव

के प्रति घृणा प्रकट की। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत-सी लड़कियों ने इस प्रकार का कष्ट सहन किया होगा। क्या आप इन विधवाओं के प्रोत्साहन के लिये कुछ शब्द कहेंगे ?"

मुझे मालूम नहीं, जिन विषयों में युगों से प्रचलित निषेधों का सम्बन्ध हो, मेरी लेखनी या मेरी वाणी क्या कर सकेगी ? मैंने कई बार कहा है विधवा स्त्री को पुनर्विवाह का उतना ही अधिकार है, जितना पुरुष को। स्वेच्छा से वैधव्य हिन्दू-समाज का अमूल्य वरदान है, परन्तु ऊपर से लादा हुआ वैधव्य अभिशाप है। और मुझे विश्वास है कि हिन्दू विधवाएँ जनमत के भय से मुक्त हों, तो वे बिना हिचक के पुनर्विवाह कर लेंगी। अत सभी विधवाओं को जो इस क्वेटा वाली बहन की परिस्थिति में हों, उन्हें पुनर्विवाह के लिये राजी करना चाहिये और उन्हें विश्वास दिलाया जाना चाहिये कि पुन विवाह कर लेने पर उनके विरुद्ध कोई अपमान जनक बात न कही जायगी तथा उनके लिये उचित वर ढूँढ देना चाहिये। यह किसी संस्था का काम नहीं, बल्कि व्यक्तिगत सुधारकों तथा इन विधवाओं के सम्बन्धियों द्वारा किया जानेवाला कार्य है। उन्हें अपने क्षेत्र में शक्तिशाली प्रचार करना चाहिये और जब वे सफल हों, उसको ज्यादा-से ज्यदा लोगों के निगाह में लाना चाहिये। केवल इसी प्रकार भूकम्प में विधवा हुई लड़कियों को उचित सहायता दी जा सकती है। शोक की स्मृति बनी रहने पर भी लोगों की सहानुभूति प्राप्त की जा सकती है और एक बार भी विस्तृत रूप से सफल हो जाने पर जो लड़कियाँ स्वाभाविक रूप से विधवा हो जाती हैं, वे भी यदि चाहें तो विवाह कर सकेंगी।

यदि वह इस नियम का उल्लंघन करे तो उसे आजीवन विधवा रखा जाय और अपवित्र होने के कारण सभी यज्ञों तथा संस्कारों से उसका बहिष्कार कर दिया जाय।

यदि उपर्युक्त वर्णन इन दो भयानक रीतियों का सही चित्रण है, तो हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये कि हमारे ऊपर सतीत्व रोकने के लिये कानून लादा गया। बाहर से आरोपित की गयी कोई चीज हिन्दू-समाज से ऐसी लडकियों का वैधव्य नहीं हटा सकता, जो यह भी नहीं जानतीं कि विवाह है क्या? ऐसे सुधार के लिये सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि हिन्दुओं में उदार और शिक्षित जनमत हो और दूसरे, माता पिता को अपनी विधवा बालिकाओं के पुनर्विवाह का औचित्य बताया जाय। निश्चय है कि यह उनके बारे में कहा जा रहा है, जो कम अवस्था की है। जब विधवाएँ बडी हो जॉय और विवाह न करना चाहें, तो उनको केवल यही कहना चाहिये कि कुमारी कन्याओं की ही तरह वे विवाह करने को स्वतन्त्र हैं।

जब कैदी अपनी जञ्जीरों को आभूषण समझ कर उसे अपनाये रखना चाहे तो उसे छुडाना कठिन है, जैसा कि लडकियाँ और बडी स्त्रियाँ तक अपने चॉदी सोने की जञ्जीरों और अँगूठी को आभूषण मान कर करती हैं।

बीसवीं सदी की सती

घाटकोपर से एक बहिन लिखती हैं —

"बम्बई समाचार" के ता० २३ अप्रैल के अंक प्रकाशित बीसवीं सदी की लुहाणा जाति की सती की बात सच हो, तो इस बहिन की पति-भक्ति वन्दनीय है। इस कार्य के सम्बन्ध में अपनी राय नवजीवन द्वारा प्रकट करेंगे, तो विशेष जानकारी हासिल होगी।

मुझे आशा है, यह समाचार सच नहीं है। अगर वह बहन मरी है तो किसी रोग से या आकस्मिक घटना से मरी है, आत्महत्या करके नहीं। बीसवीं सदी या किसी दूसरी भी शताब्दि की सती के लक्षण एक ही प्रकार के होने चाहिएं। सती वह है जो पति को जीवित रखे और उसकी मृत्यु के बाद सत्य-परायण रह कर सेवा करे और मन से, वचन से तथा कर्म से निर्विकार रहे। पति के पीछे आत्महत्या करने में ज्ञान नहीं अज्ञान है। ऐसा करने में बड़ा अज्ञान तो आत्मा के गुण के विषय में है। आत्मा-मात्र अमर वह सर्वव्यापक है। एक देह के छूटने पर दूसरा देह निर्माण करती है। और यों करते करते अन्त में देहातीत हो जाती है। यह बात सच है अनुभव-सिद्ध है। और आज अनुभव गम्य है। ऐसी दशा में पत्नी के पति के साथ मरने से क्या लाभ ?

और विवाह शरीर का नहीं, आत्मा का है। अगर विवाह शरीर ही का हो, तो पति के मरने पर मोम के पुतले या फोटो से ही सन्तोष क्यों न कर लिया जाय। अगर विवाह एक विशेष शरीर धारी जीव के साथ

का ही सम्बन्ध है, तो उस शरीर के नष्ट होने पर विवाह का भी अन्त हो जाता है। और आत्महत्या करने से वह शरीर पुन मिल नही सकता। एक के नाश के साथ दूसरे शरीर का नाश करना तो "दोनो दीन से गये पाण्डे" वाली मसल को चरितार्थ करना है।

विवाह शरीर द्वारा आत्मा का होता है और एक आत्मा की भक्ति से अनेक आत्मा की अर्थात् परमेश्वर की भक्ति सिद्ध करने की कला सीखने का भेद विवाह में छिपा हुआ है। इसी कारण अमर मीरा मर चुकी है :—

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई' यानी सती स्त्री की दृष्टि मे विवाह-विकार तृप्त करने का साधन नही होता, बल्कि 'एक को दबा दो' इस न्याय से पति मे लीन होकर सेवा-शक्ति बढाने का साधन है।

इसलिए सच्ची सती अपना सतीत्व सप्त-पदी के समय से ही सिद्ध करती है। वह साध्वी बनती है, तपस्विनी बनती है। पति की, कुटुम्ब की और देश की सेवा करती है। वह घर-गृहस्थी मे फँस जाने और भोग भोगने के बजाय अपना ज्ञान बढाती है। त्याग-शक्ति बढाती है। और पति में लीन होकर जगत-मात्र मे लीन होना सीखती है।

ऐसी सती-पति की मृत्यु पर दु.ख नही करती, पागल नही बनती, बल्कि पति के समस्त सद्गुणो को वह अपने में प्रकट करेगी, और उसे अमर बनायेगी। और यह सोचकर कि सम्बन्ध आत्मा से था वह फिर से ब्याह करने का विचार तक न करेगी।

पाठक देखेंगे कि मेरी कल्पना की सती विवाह के आरम्भ से ही

निर्विकार है, इसलिए वह सन्तान उत्पन्न न करेगी। विषय भोग न करेगी। ऐसी सती विवाह-बन्धन में बँधे क्यों ? कोई यह सवाल पूछे, तो वह उचित होगा। परन्तु हिन्दू समाज में विवाह के बारे में स्त्री या पुरुष की पसन्द का कोई सवाल ही नहीं होता, और आजकल के इन भले-बुरे सुधारों के युग में कुछ लोग संयम के हेतु से ब्याह करते हैं। मैं कबूल करता हूँ कि उसके मूल में सूक्ष्म मूर्च्छा-मोह है। फिर भी कुछ ऐसे पाये जाते हैं, जो निर्विकार रहने का निश्चय करके सम्बन्ध जोड़ते हैं। ऐसा एक उदाहरण मुझे अपने अनुभव से इस समय याद आ रहा है। विवाह करते समय भोग की इच्छा थी, परन्तु बाद में संयम-वृत्ति के प्रबल होते ही निर्विकार जीवन बिताने का प्रयत्न करने वाले दम्पति के एक से ज्यादा उदाहरण मेरी आंखों के सामने इस वक्त तैर रहे हैं। अतः पाठक यह न समझें कि मेरी कल्पना को हकीकत में कहीं स्थान ही नहीं है।

परन्तु साधारण विवाह का विचार करें तो सती स्त्री जिन शक्तियों को ऊपर गिना चुका हूँ, उनसे प्रजा पालन की शक्ति को बताना होगा। यानी सती स्त्री मर्यादा में रह कर सन्तान की उत्पत्ति के काम में भाग लेगी और बालक या बालिका का उचित प्रकार से लालन-पालन करके उन्हें सुशिक्षित बनाकर देश के सेवा-धन में वृद्धि करेगी।

जो बातें ऊपर मैं सती स्त्री के विषय में कह चुका हूँ, व सब पति के लिए भी लागू होती हैं, अगर स्त्री को पति के प्रति बर्ताव सिद्ध करना आवश्यक है। हमने स्त्री के साथ पति को जलते हुए नहीं सुना

इसलिये हम यह मान लेते हैं कि पति के साथ पत्नी के जल मरने की प्रथा चाहे जब शुरू हुई हो, वह अज्ञान-मूलक है, और किसी समय उसमें कभी रहस्य था, ऐसा साबित हो सके, तो भी इन दिनों तो उसमें घोर अज्ञान ही है। इस सम्बन्ध में कोई भी बहन अपने मन में सन्देह न रखे। स्त्री पति की दासी नहीं, उसकी सहचारिणी है, अर्द्धांगिनी है, मित्र है, इसलिए उसके साथ बराबर हक भोगनेवाली है, उसकी सहधर्मिणी है। इस कारण एक-दूसरे के प्रति और जगत् के प्रति दोनों के प्रति दोनों के कर्तव्य समान ही है।

अतएव अगर उक्त लुहाणा बहन मरी हो, तो उसने व्यर्थ ही आत्म-हत्या की है। वह जरा भी अनुकरणीय नहीं। कोई कहेगा कि उसके मरने की क्षमता की स्तुति तो करें? मेरा मन वैसा करने से भी इन्कार करता है। क्योंकि दुष्ट कर्म करनेवाले में भी मरने की शक्ति हम देखते हैं। परन्तु उस शक्ति की स्तुति करने का धर्म हम स्वीकार नहीं करते। ऐसी दशा में इस अज्ञान बहन के मरने की स्तुति करके भ्रम में पड़ी हुई बहनों को अनजान में भी भ्रम में डालने का पाप मैं क्यों अपने सिर लूँ? सतीत्व के मानी हैं—पवित्रता की पराकाष्ठा। यह पवित्रता आत्महत्या करके सिद्ध नहीं की जा सकती। जीकर उसका कठोर पालन किया जाना चाहिए।

आदर्शों का दुरुपयोग

बाल-विधवाओं के पुनर्विवाह पर मेरे पास आये हुए एक पत्र में से मैं निम्नलिखित अंश उद्धृत करता हूँ —

"२३ वीं सितम्बर के यंग इंडिया" में आगरे के (वां) महोदय के पत्र के उत्तर में कहा है कि बाल-विधवाओं के माता-पिता को चाहिये कि वे उनका पुनर्विवाह कर दें। यह बात उन लोगों के बारे में कैसे सम्भव है, जो कि कन्यादान करते हैं, यानी जो शास्त्रोक्त विधि से अपनी कन्याओं का विवाह करते हैं? निश्चय ही यह उन माता पिताओं के लिए असम्भव है, जिन्होंने अपनी पुत्री पर अपने सम्पूर्ण हक संजीदगी के साथ और धार्मिक रीति से दामाद को सौंप दिये हैं कि वे उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरे व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर दें। अगर वे चाहें तो स्वयं पुनर्विवाह कर सकती हैं, लेकिन वह चूंकि अपने माता-पिताओं द्वारा दामाद को दान-स्वरूप दी गयी थीं, इसलिए उनका पुनर्विवाह करने का हक संसार में किसी को भी प्राप्त नहीं है। और इसी वजह से उस बाल-विधवा को भी अपना पुनर्विवाह करने का कोई हक नहीं है। इसलिए अपने पति से उसकी मृत्यु के समय स्पष्ट आज्ञा पाये बिना अगर वह अपना पुनर्विवाह करती है, तो वह अपने परलोक वासी पति के साथ विश्वासघात करती है, और उसे धोखा देती है। अतएव तर्क की दृष्टि से ऐसी विधवा के लिए पुनर्विवाह करना अशक्य है, चाहे वह बालिका हो या युवती या वृद्ध जिसका कि विवाह "कन्यादान" प्रथा

के अनुसार किया गया है। जो कन्यादान प्रणाली अधिकांश सनातनी हिन्दुओं के यहाँ प्रचलित है। और जिसने अपने पति की मृत्यु के पूर्व उसकी सम्मति प्राप्त न कर ली हो। लेकिन कोई सच्चा सनातनी हिन्दू पति ऐसी इजाजत देने का खयाल तक नहीं सहन कर सकता। वह अपनी पत्नी से सती होने की अगर वह हो सकती है तो—भले ही रजामन्दी दे दे, नहीं तो कम-से-कम वह तो यही पसन्द करेगा कि मेरी स्त्री अपने शेष जीवन को मेरी चिंतना से, अथवा यों कहो कि ईश्वराराधना में बितावे। ऐसा करने में उसकी एकमात्र इच्छा या धार्मिक भाव यही होगा कि हिन्दू-समाज के विवाह और वैधव्य के (जो कि एक दूसरे के पूरक है न कि परस्पर में स्वतन्त्र उच्च आदर्शों की रक्षा हो।"

मैं इस प्रकार की दलील को उच्चादर्श का दुरुपयोग मानता हूँ। इसमें शक नहीं कि पत्र लेखक की मनशा अच्छी है, लेकिन स्त्रियों की पवित्रता के बारे में उनकी अतिशय चिन्ता ने उन्हें मौलिक न्याय का विस्मरण करा दिया है। छोटे-छोटे बच्चों के विवाह में कन्यादान के क्या मानी है? क्या किसी को अपने बच्चों के ऊपर अधिकार मिल्कियत प्राप्त है। वह उनका संरक्षक-मात्र है, न कि स्वामी। और जब वह अपनी कन्या की स्वतन्त्रता को गैर के हवाले करने को तैयार करता है, तब वह उस संरक्षण के स्वत्व को खो देता है। और फिर उस बच्चे को कोई दान कैसे किया जा सकता है, जो कि उस दान को प्राप्त करने के सर्वथा अयोग्य है।

जहाँ ग्रहण-शक्ति का अभाव हो, वहाँ दान हो ही कैसे सकता है?

नि:सन्देह कन्यादान एक रहस्यमय धार्मिक प्रथा है, जो कि आध्यात्मिक महत्व रखता है। ऐसे शब्दों का बिलकुल शाब्दिक अर्थ में ही प्रयोग करना भाषा और धर्म का दुरुपयोग करना है। अगर उन शब्दों के अर्थ लगाने में उदारता से काम नहीं लिया जाता, तो पुराणों की विचित्रता का भी इसी प्रकार अर्थ किया जा सकता है—जैसे पृथ्वी चपटी थाली के मानिन्द है, जिसे कि सहस्र फन वाले शेषनागजी साधे हुए हैं और नारायण क्षीर-सागर में उन्हीं शेषनाग की शय्या पर आनन्द से शयन कर रहे हैं।

जिस माता-पिता ने अपनी नन्हीं बच्ची का प्यार के कारण किसी बूढ़े को या किसी १६-१७ वर्ष के बालक को ब्याह दिया है, कम-से-कम उस माता-पिता का कर्तव्य यह है कि वे अपनी उस बच्ची का विवाह उसके विधवा होने पर करके पाप से मुक्त हों, जैसा कि मैं किसी पिछले अंक में अपनी टिप्पणी में कह चुका हूँ। ऐसी शादियाँ शुरू से ही रद मानी जानी चाहिएँ।

———

विधवाओं का पुनर्विवाह

एक मित्र ने अपने विचारों का स्पष्टीकरण किया है :—

"आप हमारी विधवाओ के विषय मे कुछ प्रभावशाली बात क्यों नही कहते है ? उनके कट्टर संरक्षक या माता-पिता तर्क की कभी परवाह न करेंगे। विधवाओ को ही कदम बढाने के लिए प्रोत्साहित क्यों न किया जाय ? और फिर हमारे यहाँ बहुत-सी सामाजिक कुरीतियाँ है जैसे, दहेज की प्रथा, विवाह और मृत्यु के पश्चात् दिये जानेवाले भोज इत्यादि।"

विधवा-विवाह कुछ सीमा तक आवश्यक है। और यह सुधार तभी हो सकता है, जब कि हमारे युवक अपने को पवित्र कर लें। क्या वे पवित्र है ? या उनकी शिक्षा को क्यो दोष दें ? हमारे भीतर बचपन से ही गुलामी की भावना भरी जाती है। और जब हम स्वतंत्र होकर सोच नही सकते तब स्वतन्त्र होकर कार्य कैसे कर सकेंगे ? हम साथ-ही-साथ जाति, विदेशी शिक्षा तथा विदेशी सरकार के गुलाम है। हमारे लिए जो भी सुविधा दी गयी है, वह हमारी जजोर है। हमारे भीतर बहुत से शिक्षित युवक है, परन्तु उनमें से कितनो ने आत्म-विश्वास प्राप्त किया है और जाति की कुरीतियो के विरुद्ध लडे हैं ? अपने घरो मे कितनों ने विधवाओ की बात सोची है ? कितनो ने अपनी वासना संयमित की है ? कितने ऐसे हैं, जो उन्हें माँ-बहन की तरह मानकर उनकी रक्षा करते है ? बेचारी विधवा स्त्री किसके पास जाय ? मैं उसे क्या आराम दे सकता हूँ ? उनमें से कितनी है, जो 'नव-जीवन' पढती हैं ? कितनी

ऐसी पढ़नेवाली हैं, जो उसे पढ़कर अमल कर सकती हैं? फिर भी 'नवजीवन' में मैंने विधवाओं के विषय में लिखा है और आशा करता हूँ कि अवसर मिलते रहने पर लिखता रहूँगा। तबतक मैं ऐसे लोगों से अपील करता हूँ, जिनके संरक्षण में कोई बाल विधवा है कि उसका पुनर्विवाह करना अपना कर्तव्य जानें।

संवाददाता ने हमारे समाज पर धुँधला प्रकाश डाला है। परन्तु जब समूचा ढाँचा ही उखड़ा हो, तो कुछ यहाँ वहाँ के टुकड़ों में से कैसे संतोष हो सकता है? देहान्त के पश्चात् का भोज असभ्यतापूर्ण होता है और विवाह के पश्चात् का उससे कम नहीं होता है। विवाह के पश्चात् दिये गये भोज को हम कम असभ्यतापूर्ण इसलिए अवश्य मान सकते हैं कि सारे संसार में विवाह का धार्मिक संस्कार कुछ कमी-बेशी के साथ खर्चीला होता है। परन्तु मरने के बाद भोज की प्रथा केवल हिन्दुओं ने अपना रखी है। इसकी ओर इस तरह की दूसरी चीजों की ओर ध्यान देना परमावश्यक है। परन्तु पूर्ण सुधार तो तभी होगा, जब हमारी जनता में चेतनापूर्ण जाग्रति हो और उनके विचारों में स्वतन्त्रता हो। जबतक हमारे स्वतन्त्र कार्य विचार और इस तरह टुकड़े-टुकड़ों के सुधार निरर्थक-से नहीं होते, बुरे होंगे।

दलित मनुष्य जाति

मनुष्यों में केवल अस्पृश्य ही ऐसे नहीं है, जिन पर अत्याचार होता है। हिन्दू-समाज में अल्पवयस्का विधवा पर भी कुछ कम अत्याचार नहीं होता है। बंगाल से एक सज्जन लिखते हैं—

'मुसलमानों में विधवा-विवाह की कोई मनाही नहीं है। बल्कि पुरुषों को चार स्त्रियों से भी विवाह करने का हक है। सच पूछो, तो अधिकांश मुसलमानो को अनेक पत्नियाँ होती हैं। इस प्रकार एक भी मुसलमान पुरुष अविवाहित नहीं रह जाता है। तो यह क्या सच नहीं है कि जहाँ विधवा विवाह की कुछ रोक नहीं है, पुरुषो से स्त्रियों की संख्या वहाँ अधिक होती है, या दूसर शब्दों में यों कहिये कि जिस समाज में विधिवा-विवाह प्रचलित है, उसमे क्या बहुपत्नीत्व का भी अधिकार देना ही चाहिये ? हिन्दुओं मे विधवा-विवाह का यदि प्रचार हो जाय, तो नवयुवती विधवाएँ क्या युवकों को लुभाकर उनसे विवाह न कर लेंगी ? और कुमारियों के लिए वह ढूंढना क्या कठिन वरन् असम्भव ही नहीं-हो जायगा ! तो फिर आज जो पाप विधवाएँ करती है, या जिसका दोष उन्हें लगाया जाता है, वे ही पाप क्या वे कुमारियाँ भी नहीं करेंगी, अगर हमने हिन्दुओं को एकाधिक विवह करने का अधिकार नहीं दिया ? मैं जानबूझ कर प्रेम की, पुण्यमय गृहस्थी की, पतिव्रत-धर्म की वा ऐसी और बातों की याद दिलाना नहीं चाहता, जिनका विचार विधवा-विवाह का समर्थन करते समय करना होगा।

विधवाओं का विवाह रोकने के उत्साह में पत्र लेखक ने कितना-ही

बातों की उपेक्षा कर दी है। मुसलमानों को एकाधिक पत्नी रखने का अधिकार है सही, परन्तु अधिकांश मुसलमानों को एक ही पत्नी है। मालूम होता है कि, शायद पत्र-लेखक को इसका पता नहीं है कि दुर्भाग्य-वश हिन्दुओं में बहुपत्नीत्व की मान ही नहीं है। ऊँची से ऊँची श्रेणी के हिन्दुओं ने अनेक स्त्रियों से विवाह किया है। बहुत राजाओं ने न मालूम कितने विवाह किये हैं। पत्र-लेखक यह बात भी भूलते हैं कि केवल ऊँची श्रेणी के हिन्दुओ में ही विधवा-विवाह मना है। सबसे नीची श्रेणी के बहुसंख्यक लोगों में विधवाएँ आमतौर पर पुनर्विवाह करती हैं और कभी उससे बुरा परिणाम नहीं हुआ है। यद्यपि उन्हें एक से अधिक पत्नियों से विवाह करने की पूरी स्वतन्त्रता है, परन्तु साधारणत वे एक समय में एक ही सहचरी से सन्तुष्ट रहते हैं।

इस विचार से कि विधवाएँ सभी युवकों पर कब्जा कर लेंगी और कुमारियों के लिए वर नहीं मिलेंगे, पत्र लेखक में विवेक के अत्यन्त अभाव का पता लगता है। नवयुवती लड़कियों की पवित्रता के विषय में इतनी चिन्ता से लेखक के ही रोगी दिमाग का परिचय मिलता है। पुनर्विवाह करनेवाली थोड़ी विधवाएँ कभी भी बहुत कुमारियों को अविवाहित नहीं छोड़ देंगी। खैर, यदि कभी यह समस्या उपस्थित भी होगी, इसका कारण आज का बाल-विवाह ही होगा। इसकी समुचित दवा तो बाल-विवाह की रोक ही कही जा सकती है।

कम उमर की विधवा के विषय में प्रेम, गृहस्थ-जीवन की पवित्रता आदि बातों का नाम न लेना ही अच्छा होगा।

परन्तु पत्र-लेखक ने मेरा मतलब बिलकुल ही नहीं समझा है। मैंने सभी विधवाओं के विवाह का समर्थन कभी नहीं किया है। सर गंगाराम के छूँटे हुए अंक, जिनका इस पत्र में सारांश दिया गया है, १५ वर्ष से उमर की विधवाओं का है। ये गरीब दुखिया पतिव्रत धर्म को क्या जानें? प्रेम उनके लिए अज्ञात वस्तु है। सच्ची बात तो यह कहनी होगी कि उनका विवाह कभी हुआ ही नहीं था। विवाह को अगर सचमुच ही धार्मिक संस्कार बनाना है, इसके द्वारा एक नये जीवन में प्रवेश करना है, तो जिनका विवाह होता है, उन लड़कियों को खूब उन्नति करने देना चाहिये। जीवन-भर के लिए साथी को चुनने में उनका भी कुछ हाथ होना चाहिये और वे जो काम करने जा रही हैं, उसका फलाफल ही उन्हें समझना चाहिये। ईश्वर के दरबार में और मनुष्य के सामने हम पाप करते हैं, अगर हम बच्चों के संयोग को विवाह का नामधारी पति के मर जाने पर उस बालिका के लिए आजीवन वैधव्य का दण्ड देते हैं।

मेरा विश्वास है कि सच्ची हिन्दू-विधवा एक रत्न है। मनुष्य जाति को हिन्दू-धर्म की वह एक भेंट है। रामाबाई रानडे ऐसी ही भेंट थीं। परन्तु बाल विधवाओं का अस्तित्व हिन्दू-धर्म के ऊपर एक कलंक है, जिसके लिए एक रमाबाई कुछ प्रायश्चित्त स्वरूप नहीं हो सकती।

बाल-पत्नियाँ और बाल-विधवाएँ

मद्रास के पचैयाप्पा कालेज में भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा—

एक विद्वान तामिल ने मुझे लिखा है कि मैं विद्यार्थियों से बाल-विधवाओं के विषय में कुछ कहूँ। उनका कहना है कि हमारी प्रेसीडेन्सी में दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा बाल-विधवाओं की कहीं बुरी दशा है। मैं इस बात की सचाई अभी तक नहीं जान सका हूँ। इस विषय में तुम्हें मुझ से ज्यादा मालूम होगा। लेकिन नौजवानों में कुछ बहादुरी चाहता हूँ। यदि तुम्हारे भीतर बहादुरी आ जाय, तो मैं तुम्हें बहुत से काम बताऊँ। मेरा अनुमान है कि तुम में से बहुत से लोग अविवाहित और काफी लोग ब्रह्मचारी भी हैं। मैं काफी शब्द का इसलिये प्रयोग कर रहा हूँ, क्योंकि मैं विद्यार्थियों को जानता हूँ। जो विद्यार्थी लड़कियों को वासना भरी दृष्टि से देखता है, वह ब्रह्मचारी नहीं है। मैं चाहता हूँ, तुम लोग प्रतिज्ञा करो कि किसी ऐसी लड़की से विवाह न करोगे, जो विधवा न हो। तुम विधवा लड़कियों को ढूँढो और यदि न मिलें, तो विवाह ही न करो। ऐसा निश्चय करके संसार को बताओ, अपने माँ-बाप को (यदि वे हों) बताओ, या अपनी बहनों को बताओ। मैं सुधार के लिये उन्हें बाल विधवा कहता हूँ, क्योंकि मेरा विश्वास है कि जो लड़की १०-१५ साल की अवस्था में अपनी सम्मति दिये बिना ब्याही जाय और जो कभी अपने पति के साथ न रही हो, और यकायक विधवा घोषित कर दी जाय, वह विधवा नहीं। यह उस शब्द

का, भाषा का अपमान और अपवित्र करना है। हिन्दुत्व में विधवा के साथ पवित्रता की सुगन्ध होती है। मैं स्व० रमाबाई रानाडे जैसी विधवाओं की उपासना करता हूँ, जो जानती हैं कि विधवा होना क्या है। परन्तु ९ वर्ष की बच्ची को क्या मालूम कि पति क्या होता है। यदि इस प्रेसीडेन्सी में ऐसी बाल-विधवाएँ नहीं है तो मैं हार मानता हूँ, लेकिन अगर है, तो तुम्हारा यह पवित्र कर्तव्य है कि इस पाप से मुक्त होने के लिए उनसे विवह करने का निश्चय करो। मैं विश्वास करता हूँ कि इस प्रकार के जो पाप कोई जाति करती है, पार्थिव रूप से उस पर प्रभाव डालते है। मेरा विचार है कि इस प्रकार के सभी पापो ने हमें गुलामी मे बॉध रखा है। यदि तुम्हें 'हाउस ऑव कामन्स' में उत्तम से-उत्तम मिले तो भी यहाँ तब तक बेकार होगा, जब तक कि इसे चलाने के लिए उपयुक्त पुरुष और स्त्रियाँ न होंगी। क्या तुम यह सोचते हो कि जब तक हमारे भीतर एक भी ऐसी विधवा है, जो अपनी आवश्यकताएँ पूरी करना चाहती है, परन्तु जबर्दस्ती रोक दी जाती है, तब तक हम अपने को ऐसा मनुष्य कह सकते हैं, जो अपने ऊपर या दूसरों पर राज्य कर सकता है, या जो ३० करोड़ वाले राष्ट्र के भाग्य का निर्माण कर सकता है। यह धर्म नही, अधर्म है। मै ऐसा कहता हूँ, क्योंकि हिन्दुत्व का सार मुझमे है। ऐसा मत समझो कि मेरे भीतर पश्चिमी विचारधारा काम कर रही है। मैं अपने को पवित्र भारतवर्ष की आत्मा से लबरेज होने का दावा करता हूँ। मैंने पश्चिम से बहुत सी चीजे सीखी है, परन्तु इसे नही। इस प्रकार के वैधव्य का हिन्दू धर्म मे कोई समर्थन नही।

मैंने बाल विधवाओं के विषय में जो कुछ कहा है, वह निश्चित रूप से बाल-पत्नियों के विषय में भी लागू है। तुम्हें अपने ऊपर इतना अधिकार होना चाहिए कि १६ वर्ष से कम की लड़की से विवाह न करो। यदि सम्भव होता, तो मैं निचली सीमा २० वर्ष रखता। लड़कियों के तीव्र विकास का उत्तरदायित्व हमारे ऊपर है, भारतवर्ष की जलवायु पर नहीं। मैं ऐसी लड़कियों को जानता हूँ, जो २० वर्ष की हैं, फिर भी पवित्र हैं और अपने आस-पास के बुरे वातावरण से मुक्त हैं। हमें इस तीव्र गति को न अपनाना चाहिए। कुछ ब्राह्मण विद्यार्थियों से कहता हूँ, यदि तुम्हारे लिए आत्म-संयम संभव नहीं तो अपने को ब्राह्मण मत समझो। ऐसी १६ साल की लड़की चुनो जो बाल-विधवा हो गयी हो। यदि ब्राह्मणी विधवा न मिले तो जो भी लड़की तुम्हें पसन्द हो, चुन लो। मैं बताता हूँ, हिन्दुओं का भगवान उस लड़के को, जो १२ साल की लड़की बर्बाद करने की अपेक्षा अपनी जाति से बाहर विवाह करता है, क्षमा करेगा। जब तुम अपनी वासना पर नियंत्रण नहीं कर सकते, तो तुम्हें शिक्षित नहीं कहा जा सकता। तुमने अपनी संस्था को प्रमुख संस्था कहा है। मैं जानता हूँ चरित्र में अग्रेणी विद्यार्थियों को पैदा करके तुम इस नाम को सार्थक करो। बिना चरित्र के शिक्षा और बिना प्रारम्भिक पवित्रता के चरित्र व्यर्थ है। मैं ब्राह्मणत्व की पूजा करता हूँ, मैंने वर्णाश्रम-धर्म का समर्थन किया है। किन्तु ऐसे ब्राह्मणत्व से जो अछूती कुमारी विधवाओं व कुमारियों को मान हानि की स्थिति सहन कर सकता है, मेरा दम घुटता है। ब्राह्मणत्व इससे कठोर है। म

चाहता हूँ कि मेरे ये विचार तुम्हारे मन में बैठ जाँय। मैं बोलने के साथ साथ लड़कों को देखता जा रहा हूँ और यदि कोई भी लड़का मेरे हृदय के उद्गार प्रगट करते समय किसी भी तरह का शब्द करता है, तो मुझे कष्ट होता है। मैं यहाँ तुम्हारे मस्तिष्क को प्रभावित करने के लिए नहीं आया हूँ, बल्कि हृदय को। तुम देश की आशा हो और जो मैंने कहा है, वह तुम्हारे लिए विशेष महत्व रखता है।

रोष-भरा विरोध

एक बंगाली स्कूल के हेडमास्टर लिखते हैं :—

"आपने मद्रास के विद्यार्थीयों को विधवा लड़कियों में ही शादी करने को सलाह देते हुए जो भाषण दिया है, उससे हम भयभीत हो रहे हैं। और मैं उससे अपना नम्र परन्तु रोष-भरा विरोध जाहिर करता हूँ।

विधवाओंके जिस आजन्म ब्रह्मचर्य के पालन के कारण भारत की स्त्रियों को संसार में सबसे बड़ा और ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है, उसके पालन करने की वृत्ति को ऐसी सलाहें नष्ट कर देंगी और भौतिक सुखों के दुष्ट मार्ग पर उन्हें चढ़ा कर एक ही जन्म में ब्रह्मचर्य के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की उनकी सुविधा को मिटा देंगी। इस प्रकार विधवाओं के प्रति ऐसी तीव्र सहानुभूति दिखाना उनकी असेवा होगी और कुमारियों

के प्रति जिनके विवाह का प्रश्न आज बड़ा पेचीला और मुश्किल हो गया है, बड़ा अन्याय होगा, विवाह सम्बन्धी आपके इन विचारों से हिन्दुओं के पुनर्जन्म और मुक्ति के विचारों की इमारत गिर जायगी और हिन्दू समाज भी दूसरे समाजों के वैसा ही, जिन्हें हम पसन्द नहीं करते, बन जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे समाज का नैतिक पतन हुआ है। परन्तु हमें हिन्दू आदर्श के प्रति हमारी दृष्टि खुली रखनी चाहिये और उसे उस आदर्श के अनुकूल मार्ग दिखाना चाहिए। हिन्दू-समाज को अहिल्याबाई, रानी भवानी, शकुन्तला, सीता, सावित्री दमयन्ती के उदाहरणों से शिक्षा मिलनी चाहिए और हमें भी उन्हीं के आदर्श के मार्ग पर चलना चाहिए। इसलिए मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप इन विषयों के प्रश्नों पर अपनी ऐसी राय जाहिर करने से रुक जायँ और समाज को जो वह उचित समझे वही करने दें।'

इस रोष-भरे विरोध से मेरे न विचार बदले हैं और न मुझे कोई पश्चात्ताप ही हुआ है। कोई भी विधवा, जिसमें इच्छा बल है और जो ब्रह्मचर्य को समझकर उसका पालन करने पर तुली हुई है, मेरी इस सलाह से अपना इरादा छोड़ न देगी। परन्तु यदि मेरी सलाह पर अमल किया जायगा, तो उससे उन छोटी उम्र की लड़कियों को जरूर शान्ति मिलेगी जो शादी के समय, शादी किसे कहते हैं, यह भी समझती न थीं। उनके सम्बन्ध में विधवा शब्द का उपयोग इस पवित्र नाम का दुरुपयोग है। मुझे पत्र लिखनेवाले उन महाशय के मन में जो ख्याल है इसी खयाल से तो मैं देश के युवकों को या तो इन नाम पाने की विधवाओं

'विवाह को हटा दो'

एक संवाददाता ने जिन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ, एक प्रश्न उठाया है और वह केवल तर्क के लिये है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वे विचार उनके निजी हैं। "क्या हमारी आज की नैतिकता अस्वाभाविक नहीं ?" यदि यह स्वाभाविक है तो हर युगमें हर जगह एकसी होती है। परन्तु जाति और समाज के ब्याह के अपने-अपने अलग नियम रहे हैं, और पुरुषों ने उनके लिए अपने को पशुओं से भी गिरा दिया है, क्योंकि जो रोग पशुओं में अकसर नहीं होते, वे मनुष्यों में होते हैं। बाल मृत्यु, गर्भपात, बाल-विवाह जो पशु-जगत् में असम्भव है, ऐसे समाज के अभिशाप हैं, जो विवाह को धार्मिक संस्कार मानता है और जिसको हम नैतिकता के नियम समझते हैं, उनसे कोई बुरे परिणाम नहीं होते।

हिन्दू-विधवाओं की भयानक दशा—इसका कारण आज के विवाह के नियमों के अतिरिक्त और क्या है ? हम लोग प्रकृति के नियमों का पालन क्यों करें और पशु सृष्टि का एक पृष्ठ क्यों न स्वीकार करें ?

मुझे ज्ञात नहीं है कि स्वच्छन्द प्रेम के समर्थक पश्चिमी लोग उपर्युक्त तर्क को मानते हैं या इससे भी दृढ़ तर्क देते हैं। परन्तु इतना मैं अवश्य जानता हूँ कि विवाह की प्रथा को जंगली समझना यहाँ पश्चिम की ही देन है यह तर्क पश्चिम से लिया गया है तो इसके खण्डन में कोई कठिनाई नहीं।

मनुष्य और पशु की समता करना भूल है। यही समता तर्क को

उटा देती है। नैतिक और भावनाओं के विषय में मनुष्य पशु से ऊँचा है। दोनों के लिए दो भिन्न प्रकृति के नियम हैं। मनुष्य में तर्क अच्छे-बुरे की पहचान और स्वतन्त्र इच्छा होती है, परन्तु पशु में ऐसा कुछ नहीं। वह स्वतन्त्र शक्ति नहीं रखता और न भले-बुरे की पहचान ही कर सकता है। परन्तु पुरुष स्वतन्त्र शक्ति रखने से इनका भेद जानता है और अपने ऊँचे स्वभाव का पालन करते समय पशु से ऊँचा दिखाई देता है और नीचे स्वभावों के पालन करते समय पशु से नीची बात भी कर सकता है। जो जातियाँ बिलकुल असभ्य मानी जाती हैं, वे भी लैङ्गिक सम्बन्ध में कुछ नियम मानती हैं। यदि यह माना जाय कि बन्दिश ही जंगली है, तो हर बन्दिश से मुक्त होना ही आदर्श का कानून होना चाहिये। यदि सभी लोग इस अनियन्त्रित नियम का पालन करें, तो २४ घण्टे पूर्ण अशान्ति मच जायगी। स्वभावतः पशुओं से अधिक वासना-युक्त होने के कारण इस अनियन्त्रण से, व भोग-धाम की वासना की चिनगारी सारी पृथ्वी पर फैल जायगी और समस्त मानव-समाज को भस्म कर देगी। मनुष्य वहीं तक पशु से ऊँचा है जहाँ तक त्याग और नियन्त्रण कर सकता है, जिसमें पशु असमर्थ है।

बहुत से रोग जो आजकल फैले हुए हैं, ऐसे हैं जिनको विवाह की प्रथा से आ गयी बुराई है। मैं एक भी विवाहित पुरुष का नाम जानना चाहता हूँ जो विवाह के सभी नियमों और बन्धनों का पालन करने पर भी ऐसे रोगों का शिकार हुआ हो, जो सवाददाता के दिमाग में हैं। बाल-

मृत्यु बालविवाह और इस प्रकार के रोग विवाह के नियमों के तोड़ने से भी होते हैं । क्योंकि कानून कहता है कि स्त्री या पुरुष पूर्ण विकसित हो जाने पर स्वथ्य और नियंत्रण में समर्थ तथा संतति उत्पन्न करने की इच्छा होने पर ही साथ बँधे । जो इस नियम का पालन करते हैं तथा विवाह को संस्कार समझते हैं, कभी दु खी और विपन्न नहीं होते । जहाँ विवाह संस्कार है, वहाँ किसी की मृत्यु से भी यह सम्बन्ध नही टूटता यहसम्बन्ध शारीरिक नहीं, आत्मा का होता है और जब आत्माओं का सम्बन्ध हो तो स्त्री या पुरुष के मरने पर भी दूसरा विवाह अनुचित, अनिवार्य और असत्य हैं । जहाँ विवाह के नियमो का पालन न किया जायगा, वहाँ विवाह की संज्ञा ही असत्य है । आज सच्चे ब्याह बहुत कम होते हैं, परन्तु उसकी जिम्मेदारी विवाह-संस्कार पर नहीं, बल्कि इसकी प्रथा पर है और उसी का सुधार होना चाहिए ।

संवाददाता ने समझा है कि विवाह कोई नैतिक या धार्मिक बन्धन नहीं, बल्कि एक रिवाज है, सो भी धर्म और नीति के विरुद्ध । अतः इसें खत्म कर देना चाहिए । मैं स्वीकार करता हूँ कि विवाह वह घेरा है जिससे धर्म की रक्षा होती है । यदि यह घेरा न हो तो धर्म के टुकडे-टुकडे हो जायँगे । धर्म नींव-नियंत्रण है और विवाह नियंत्रण के अतिरिक्त है और क्या ! जो मनुष्य नियंत्रण नहीं कर सकता, वह आत्मज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता । यह मैं मानता हूँ कि किसी अनीश्व-रवादी या भौतिकवादी को नियंत्रण की आवश्यकता सिद्ध करना असभव है । परन्तु जो जानता है कि शरीर नाशवान है और आत्मा

अमर, वह जानता है कि आत्म नियंत्रण और सगठन के बिना आत्म-ज्ञान नहीं हो सकता। शरीर या तो वासना का क्रीडा-स्थल होगा या आत्मज्ञान का मन्दिर। यदि यह आत्मज्ञान का मन्दिर है, तो इसमें किसी प्रकार की अशुद्धता और अशिष्टता को स्थान नहीं। आत्मा शरीर पर सदा स्वतन्त्र रहेगी।

जब नियन्त्रण नहीं रखा जायगा और विवाह-बंधन ढीला होगा, तो स्त्रियां घृणा की पात्र होंगी। यदि पुरुष उसी प्रकार अनियन्त्रित रहे जैसे पशु, तो वे नष्ट ही हो जायेंगे। मेरा विश्वास है जितने रोग समाजशास्त्र ने बताये हैं, वे सब विवाह की प्रथा हटा देने से नहीं, परन्तु इसके नियमों को समझाने और पालन करने से ही दूर होंगे।

मैं मानता हूं कि कुछ जातियों में अपने निकट सम्बन्धियों के यहां शादी ब्याह होता है और दूसरी जातियों में इनका निषेध है, कुछ जातियों में बहुविवाह की आज्ञा है और कुछ में नहीं, यह चाहते हुए कि सभी जातियों में समान नियम होते, इस विभिन्नता का यह अर्थ नहीं होता कि सभी प्रकार के नियन्त्रण नष्ट कर दिये जायें।

जैसे जैसे हम अनुभवशील होते जायँगे, हमारे भीतर सादृश्य आता जायगा। आज भी नैतिक समाज एक पत्नीव्रत ही का समर्थन है और कोई भी धर्म बहु-विवाह को अनिवार्य नहीं मानता। समय और स्थान के अनुकूल नियन्त्रण में कुछ परिवर्तन कर देने पर भी आदर्श वैसे ही रहता है।

एक विचार-दोष

एक भाई लिखते हैं :—

आपने अपने एक लेख में एक जगह कहा है—"विवाह धर्म-सम्बन्ध है, इसलिए वह अकेले शरीरो का ही सम्बन्ध नही, बल्कि आत्माओं का ऐक्य भी है, या होना चाहिए। ऐसा सम्बन्ध साथी की मौत के बाद भी कायम रहता है। जहाँ आत्माओ का सच्चा मेल हो चुका हो, वहाँ विधवा विधुर के पुनर्विवाह की गुञ्जाइश ही नहीं रह सकती यही नही, बल्कि उनका पुनर्विवाह करना अनुचित और अनीति-पूर्ण भी होगा। मगर उसी लेख में आप दूसरी जगह कहते हैं—'मैं बाल-विधवा के पुनर्विवाह को इष्ट मानता हूँ। यही नहीं, बल्कि ऐसी विधवा कन्याओं का पुनर्विवाह करना माता-पिता का परमधर्म है।' आप इन दो भिन्न बातों की एक वाक्यता कैसे सिद्ध करते है ?"

मुझे इन दो विचारों में कोई विरोध नहीं देख पडता। अगर कोई निर्दय माता-पिता किसी नन्हीं-सी बालिका को स्वार्थ या अज्ञान के कारण, उसके हिताहित का विचार न करके उसकी इच्छा और सम्मति के बिना ही किसी को सौंप दें, तो इस तरह का सम्बन्ध विवाह-सम्बन्ध हो नहीं सकता। यह सम्बन्ध तो आध्यात्मिक किसी भी हालत में नहीं कहा जा सकता। अतएव ऐसी बालिका का पुनर्विवाह कर्तव्य बन जाता है। सच पूछा जाय, तो ऐसे विवाह को पुनर्विवाह कहना ही अनुचित है, क्योंकि ऐसी कन्या का विवाह होता ही नहीं। अतएव ऐसी बालिका

के नामधारी पति की मृत्युके बाद उसके लिए कोई योग्य पति ढूँढ देना माता-पिता का सहज धर्म है।

—

एक युवती विधवा

जब हम लोग बेजवाडा से एलोर जा रहे थे तो मुझे पता चला कि एक लडकी अभी-अभी विधवा हुई थी। वह मुझे अपने १४०० रुपये के जेवरात देना चाहती थी और उसकी इच्छा थी कि मैं उसके गांव जाऊँ, जो पदापद्दु से जहाँ हमें जाना था, दो मील से कम ही था। उसकी जाति वाले पर्दा रखते थे और वह किसी भी प्रकार किसी सभा में नहीं जा सकती थी। मुझे जेवरों का आकर्षण नहीं था और सच पूछा जाय, तो मुझे विश्वास नहीं था कि कोई विधवा लड़की सम्भवत अपने सभी बहु मूल्य आभूषण मुझे देना चाहेगी। लेकिन उसका युवती होना तथा तुरन्त ही विधवा हो जाना (मुझसे कहा गया कि वह कुमारी विधवा थी) मुझे उसके घर ले जाने के लिए पर्याप्त था। और वहाँ जाने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। लड़की का नाम सत्यवती देवी है और वह २० वर्ष से कम अवस्था की है। उसका पति एक सुन्दर शिक्षित राष्ट्रीयतावादी था। लड़की स्वयं तेलगु अच्छी तरह जानती है। मैंने उसे साहस-शील और दृढ़ निश्चय की लड़की पाया। उसके मां-बाप जीवित हैं। उस लड़की ने सभी जेवरात (जहां

तक मुझे मालूम है,) मेरे हाथ में रख दिये और मुझे उनका मूल्य १४०० ठीक ही लगा। उसने मुझे एक नोट दिया, जिसका अर्थ थ कि मैं उसे आश्रम तक ले जाऊँ। उस समय उसके माँ-बाप भी उपस्थित थे। और उन्होंने खादी के लिये सत्यवती के गहनों के समर्पण का समर्थन किया। मैंने उनसे कहा कि उस लडकी को घर ही के घेरे में न बन्द रखें और उसके साथ वैसे ही व्यवहार करें, जैसे घर की अन्य लडकियों के साथ। मैंने सत्यवती देवी को बताया कि केवल विधवा हो जाने से जेवरों के समर्पण करने की आवश्यकता न थी, परन्तु वह अपने निर्णय पर दृढ थी। उसके लिए ये निरर्थक थे। मैंने यह भी कहा कि यदि माँ-बाप राजी हों, तो खुशी के साथ मैं उसे आश्रम ले चलूँगा। उन्होंने वादा किया है कि वे इस पर ध्यान देंगे और लडकी को हर प्रकार की आशा दिलाई है कि उसे मेरे साथ आश्रम भेज देंगे। उसका पिता, जो सतर्क और चुप था, अपनी लडकी की ओर बडा उदार मालूम हुआ। अधिक सान्त्वना न दे सकने के लिए मुझे बडा दुःख रहा और अलग होते समय मेरा मन बड़ा भारी था।

इसलिए पदापद्दु में मेरा व्याख्यान सत्यवती देवी पर ही हुआ। मैंने लोगों को बताया कि पर्दे को समाप्त कर देना चाहिए और यदि कोई विधवा विवाह करना चाहे, तो माँ-बाप भी सहायता देना अपना कर्तव्य समझें। जब १८ वर्ष का लड़का पत्नी के देहान्त हो जाने पर विवाह कर सकता है, तो किसी भी ऐसी अवस्था की विधवा को क्यों अधिकार न दिया जाय ? किसी भी जाति के लिए स्वेच्छाकृत वैधव्य गौरव है और

आरोपित वैधव्य मान-हानि। लोगों ने मेरी बात बड़े ध्यान और आदर से सुनी। लड़की का पिता सभा में था और उससे मुझे यह पता चला कि जेवरात देने की लड़की कि अपनी इच्छा थी और उसका पुनर्विवाह का बिलकुल विचार न था। मुझे यह भी बताया कि राष्ट्र के विचार से उसकी अध्ययन करने की इच्छा थी। यदि यह सचमुच उसका दृढ़ निश्चय है तो सत्यवती के लिए बड़े गौरव की वस्तु है। हिन्दू-समाज को चाहिए कि यदि ऐसी विधवाएँ विवाह करना चाहें तो उनके लिए मार्ग खुला होना चाहिये। सत्यवती की कहानी सैकड़ों हिन्दू घरों में प्रति दिन होती है। जबतक विधवाएँ हिन्दू-समाज में असभ्य बन्धन से रखी जायँगी, और उनकी पुनर्विवाह करने की इच्छा सामाजिक प्रथा की कठोरता से दबी रहेंगी, हर विधवा का श्राप हिन्दू समाज पर लगेगा।

स्त्रियों को मुक्त कर दो

डाक्टर एस मुथुलक्ष्मी ने जो मद्रास के एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं, मुझे एक लम्बा खत लिखा है, जिसका आधार मेरा आन्ध्र का एक व्याख्यान है। उस खत का कुछ हिस्सा मैं नीचे दे रहा हूँ:—

"आपने अपनी बेजवाडा से गुरनार की यात्रा में, जनता की दैनिक आदतों में स्वस्थ परिवर्तनों तथा सुधारों की जो परम आवश्कता अनुभव की है, वह मुझे बहुत अच्छी लगी।"

"मैं परम विनम्रता-पूर्वक स्वीकार करती हूँ कि स्त्रियों में डाक्टर की हैसियत से मेरा आपसे पूर्ण साम्य है। किन्तु क्या आप कृपया मुझे यह कहने की आज्ञा देंगे दि यदि शिक्षा से सामाजिक सुधार, सुन्दर स्वाथ्य और सफाई आयेगी तो स्त्रियो की शिक्षा से ही?"

"क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि आजकल के समाज में बहुत कम स्त्रियो को शिक्षा-पूर्ण शारीरिक और दिमागी विकास तथा आत्मव्यंजन का अवसर मिलता है।"

"क्या आप नहीं मानते कि उनका सारा व्यक्तित्व विश्वासों और प्रथाओं के भार से बुरी तरह कुचला जा रहा है?"

"क्या बाल-विवाह शारीरिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विकासजड को नष्ट नहीं करता?"

'क्या बाल-स्त्रियों की दुख-पूर्ण कहानी और हमारी विधवाओं और

परित्यक्ता पत्नियों का असीम दुख हमें शीघ्र कदम उठाने को बाध्य नहीं करते ?"

"क्या हिन्दू-समाज के लिए ऐसे नियमों का पालन करना या उनकी ओर से उदासीन रहना जो धर्म के नाम पर निष्कलुष लड़कियों को तिरस्कृत करें, और उन्हें आजीवन बुराइयों और अपमान में जो वे रखें ही न्यायसंगत है ?"

"क्या आप नहीं मानते कि सामाजिक अत्याचार के कारण भारत की स्त्रियों (कुछ को छोड़ कर) का साहस, शक्ति और स्वतन्त्र विचार सब मिट गये हैं, और इन्होंने प्राचीन काल में मैत्रेयी, गार्गी तथा सावित्री को स्वयं कदम बढ़ाने को प्रेरित किया था और आज भी हमारी बहुत सी स्त्रियों को, जो ब्रह्म-समाज आर्य-समाज, थ्योसोफी-जैसे स्वतन्त्र विचारवाले सगठन से सम्बन्धित हैं, प्रेरणा देता है और यही हिन्दू-समाज का निरर्थक रीतियों, प्रथाओं तथा सस्कारों का परिस्कृत रूप है ?"

"क्या कांग्रेसी लोगों मे इन सामाजिक बुराइयों को शीघ्र हटाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये जो सारी राष्ट्र की कमजोरी और मानहानि का कारण है या कम से-कम आज जनता को शिक्षित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये, जिससे वे अपनी स्त्रियों को बन्धनों से मुक्त करें, जो उन पर डाले गये हैं ताकि उनका पूर्ण शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक तथा आत्मिक विकास हो ? इस प्रकार वे समाज के सामने साहस और बुद्धि का नमूना रखेंगी और सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि

स्त्रियो और माताओं के रूप मे वे भारत के भावी प्रवन्धको के संगठन, मार्ग-प्रदर्शन और निर्माण का पवित्र कर्तव्य पूर्ण करेंगी।

"यदि कांग्रेसी लोगो का विश्वास है कि स्वतन्त्रता हर राष्ट्र और व्यक्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार है और यदि वे किसी भी दशा में उसे प्राप्त करना चाहते हैं, तो क्या उन्हें सबसे पहले अपनी स्त्रियो को बुरी रीतियों और विश्वासों से स्वतन्त्र नही करना चाहिये जिनके कारण उनका स्वास्थ्य-विकास मारा जाता है? और यह तो उन्ही (कांग्रेसी लोगों के ही) हाथों में है।"

हमारे कवियों सन्तो और ऋषियो सभी ने यही कहा है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है जो देश या राष्ट्र स्त्रियों का सम्मान नही करता, वह कभी बड़ा नही हुआ और न भविष्य मे ही हो सकता है। तुम्हारे राष्ट्र के पतन का मुख्य कारण यही है कि इन शक्ति की सजीव मूर्तियो का तुम आदर नहीं करते थे। यदि स्त्रियो का उत्थान (जो दैवी माताओं की अवतार हैं) तो मत समझो कि तुम्हारी उन्नति का कोई और मार्ग हो सकता है।

"स्वर्गीय सर्वमान्य भारती ने भी, जो तामिल के महाकवि थे, यही कहा है।"

"अत क्या आप अपनी यात्रा मे लोगो को स्वतन्त्रता का सीधा और निश्चित मार्ग अनुसरण करने की सलाह देंगे?"

डा० मुथुलक्ष्मी की कांग्रेस के लोगों से इस कार्य के भार-वहन की आशा बिलकुल ठीक है। बहुत से कांग्रेस के लोग व्यक्तिगत रूप से और

संगठित रूप से भी इस दिशा में विशेष प्रयत्नशील हैं। इस बुराई की जड़ जैसी दिखाई पड़ती है, उससे कहीं गहरी है। केवल स्त्री-शिक्षा ही इसके लिए दोषी नहीं, हमारा शिक्षा-क्रम भी दूषित है। और किसी प्रथा विशेष को तिरस्कृत करने से काम नहीं चलेगा, बल्कि सर्वाङ्गीण सामाजिक कुरीति पर चलनेवाली शक्ति को ही हटाना पड़ेगा। अन्त में तिरस्कार तो शहर में रहनेवाले मध्यमवर्ग के लोगों या यानी गांवों के १५ फीसदी का ही करना है। देहात में रहनेवाले लोगों में बाल-विवाह नहीं होता और न उनके विधवा-विवाह का ही निषेध है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनमें और दूसरी बुराइयां हैं, जो उनके विकास को बाधा पहुँचाती हैं।

शिक्षा का समूचा ढांचा ही दुरुस्त करना पड़ेगा और उसे जनता के उपयुक्त बनाना पड़ेगा। जो भी शिक्षा प्रौढ़ों के लिए बच्चों की ही तरह नहीं होगी वह नहीं चल सकती। इसके अतिरिक्त यदि ग्राम्य भाषाओं को उचित स्थान न दिया जाय तो ऐसी शिक्षा भी इस प्रश्न को सुलझा नहीं सकती। और यह काम तो आज की पढ़ी लिखी स्त्रियां ही कर सकती हैं। इसलिए किसी भी विस्तृत सुधार के आने के पहले शिक्षित-वर्ग के विचार बदलने होंगे। और मैं डा० कुमुलपर्मा ने या भी कहना चाहता हूँ कि इसके लिए भारतवर्ष की कुछ शिक्षित स्त्रियों को परिश्रम की ऊँचाई से उतर कर भारत के मैदानों में आना पड़ेगा। स्त्रियों की अवहेलना या उनके दुरुपयोग की जिम्मेदारी पुरुषों पर ही है, और उन्हें इसके लिए उचित तपस्या करनी होगी। परन्तु जिन स्त्रियों ने

अन्धविश्वास कर गये हैं और जो बुराई की जननी हैं, उन्हें सुधार में क्रियात्मक कार्य करना पडेगा। स्त्रियों की स्वतन्त्रता, भारत की स्वतन्त्रता अछूत का रोग मिटाना, आम जनता की आर्थिक दशा का सुधार इत्यादि कार्यों के लिए लोगो को शहरों मे जाकर देहाती जिन्दगी में ही सुधार करना पडेगा।

हमारी पतित बहनें

सबसे पहले आन्ध्र प्रान्त के कोकोनाडा शहर में मुझे वे स्त्रियाँ देखने को मिलीं, जो अपनी रोटी के लिए अपनी इज्जत बेचती हैं। मुझे उनमें केवल आधे दर्जन के साथ कुछ मिनट की मुलाकात हुई। दूसरी बार मैंने उन्हें बरीसाल में देखा। एक सैकड़े से अधिक संख्या में वे मुझसे मिलीं। उन्होने मुलाकात के लिए एक खत पहले से ही लिखा था और उस पत्र मे यह भी कहा था कि कांग्रेस की सदस्य हो गयी है और तिलक-स्वराज-फण्ड में चन्दा भी दे चुकी हैं, परन्तु उनकी समझ में मेरी यह बात न आयी थी कि वे विभिन्न कांग्रेस-कमेटियों मे पद न ग्रहण करें। उन्होने शुरू में पूछा था कि भविष्य में क्या करें। जो सज्जन पत्र लाये थे, मुझे देने मे बहुत हिचके, क्योंकि वे यह न जानते थे कि मैं इससे प्रसन्न हूँगा या अप्रसन्न। मैंने विश्वास दिलाया कि किसी भी प्रकार इन बहनों की सेवा करना मेरा कर्तव्य है।

मैंने जो दो घण्टे इन बहनो के साथ विताये, चिरस्मरणीय है।

उन्होंने बताया कि लगभग २०००० पुरुषों स्त्रियों और बच्चों के बीच में उनकी संख्या ३५० से अधिक है। वे बरीसाल के अपमान हैं और जितनी जल्दी बरीसाल इससे छुटकारा पाये, उतना ही अच्छा है। मुझे भय है कि जो बरीसाल के विषय में सत्य है, वह और भी शहरों के विषय में सत्य है। इस लिए मैं बरीसाल को केवल एक मिसाल के तौर पर लेरहा हूँ। इन बहनों की सेवा का गौरव कुछ बरीसाल के नवयुवकों को है। मुझे आशा है कि इस बुराई को मिटाने का श्रेय भी बरीसाल को होगा।

जितना भी बुराइयों के लिए मनुष्य उत्तरदायी है, उनमें से कोई भी इतनी अपमान-जनक, दु:खद और पाशविक और नहीं, जितनी इस आधी मानव जाति, जो मेरे विचार में दुर्बल नहीं है, की मानहानि है। स्त्री अब भी पुरुषों से उत्तम है, क्योंकि वह आज भी शान्तिपूर्वक सहन करना विनम्रता और त्याग की अवतार है। स्त्री की बुद्धि भी पुरुषों की अपेक्षा जो अपनी उत्तम जानकारी की डींग मारा करते हैं,। अच्छी होती है। राम के पहले सीता का, और कृष्ण के पहले राधा का नाम रखने का यही तात्पर्य है। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि उस बुराई ने हमारे विकास में कोई योग दिया है, क्योंकि यह चारों ओर छायी हुई है और सभ्य योरोप में कहीं-कहीं संगठित रूप से प्रचार की जाती है। हमें इस आधार पर भी भारतमें यह बुराई रही है, इसे नहीं अपनाना चाहिए जिस समय हम अच्छाई और बुराई को अलग न कर सकें और अतीत बिना ठीक से जाने उस पर चलें, क्योंकि ऐसा चला आ रहा है, उस

समय हमें खत्म हो जाना चाहिए। हमारे भीतर जो भी सुन्दरतम रहा है, हम उसपर गर्व करने वाले उत्तराधिकारी है। और अपने पूर्वजो की गलतियाँ दुहराकर अपने को अपमानित न करना चाहिए। क्या आत्म-सम्मान करनेवाले भारतवर्ष से हर स्त्री के गुणों का हर मनुष्य से वैसा ही सम्बन्ध नही जैसा अपनी बहिन के गुणों का ? स्वराज का अर्थ है भारत-वर्ष के हर निवासी को अपने भाई या बहन की तरह मानना।

अतः इन बहनो के सामने मनुष्य होने के नाते सिर लज्जा से झुक गया। कुछ अधिक अवस्था की थी, अधिकतर २० से ३० वर्ष की थी, और २ या तीन १२ साल से भी कम थी। उन सबो के बीच ६ लड-कियाँ और लडके थे, जिनमे से सबसे बडा उन्ही मे से एक से विवहित था, और जबतक कोई और उपाय न हो, वह लडकियाँ भी उनकी ही तरह पाली जाती। इनके भीतर यह विचार आना कि इनका सुधार असम्भव है, जीवित पुरुष के लिए कुठाराघात की भाँति था। फिर भी वे विनम्र और बुद्धिमान थी। उनकी बातचीत गंभीर थी और उनके उत्तर स्पष्ट और सीधे होते थे। और कुछ क्षण के लिए उनके निश्चय उतने ही दृढ थे जितने किसी भी सत्याग्रही के। ११ ने प्रतिज्ञा की कि अपना पेशा छोडकर कातना-बुनना सीखेंगी, बशर्ते कि उन्हें सहायता मिली। दूसरो ने कहा कि वे इस पर विचार करेंगी, क्योकि वे मुझे धोखा नही देना चाहती थी।

इस क्षेत्र मे बरीसाल के युवको के लिए काम है, यहाँ भारतवषके हर सच्चे सेवक के लिए काम है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। यदि २००००

की आबादी में २५० दुखी बहनें हैं, तो भारतवर्ष भर में ५२५०००० होंगी। लेकिन यह सोचकर कि भारत की आबादी का जो ⅘ भाग गांवों में रहता और खेती पर निर्भर करता है उस पर इस बुराई का असर कोई नहीं है, मै बड़ा प्रसन्न होता हूँ। इस प्रकार भारतवर्ष-भर में कम-से-कम १०५०००० स्त्रियां ऐसी हैं, जिन्हें अपने जीवन-निर्वाह के लिए इज्जत बेचनी पड़ती है। इससे पहले कि उन्हें इससे छुटकारा मिले, दो शर्तें पूरी करनी होंगी, हम पुरुषों को अपनी वासना पर नियंत्रण करना चाहिये और इन स्त्रियों को ऐसा रोजगार दिया जाय कि सम्मान-पूर्वक अपनी रोटी कमा सकें। यदि असहयोग-आन्दोलन हमारी वासनाओं को नहीं रोकता और हमें पवित्र नहीं बनाता, तो यह कुछ भी नहीं है और कातने बुनने के अलावा ऐसा कोई पेशा नहीं, जिसे सब अपना सकें। इन बहनों मे से बहुतों को विवाह की बात न सोचनी चाहिए। उन्होंने स्वीकार किया कि वे ऐसा कर ही नहीं सकती थीं। अतः निश्चय पूर्वक उन्हें भारत की सच्ची सन्यासिनी बनना था। सेवा के अतिरिक्त अपने जीवन की और परवाह न होने के कारण वे जी भर कर कात सकती थीं। १०५०००० स्त्रियां आठ घण्टे परिश्रम से बुनें, तो गरीब भारतवर्ष को प्रतिदिन काफी धन प्राप्त हो। इन्होंने बताया कि इन्हें दो रुपये तक तो प्रतिदिन की आमदनी होती है। परन्तु कातने का काम करने पर वे अपनी बहुत आदतें, जो मनुष्य की वासना की तृप्ति के लिए करनी पड़ती थी, छोड़ सकती थी और इस प्रकार वे स्वाभाविक जीवन धारण करतीं। मेरी-उनकी बातचीत समाप्त होने पर बिना मेरे कहे ही

उन्हें मालूम हो गया कि अपना पेशा छोड़े बिना वे कांग्रेस-कमेटियों में पदाधिकारी क्यों नहीं हो सकती थीं। कोई भी अपवित्र हृदय और अपवित्र हाथों से स्वराज की वेदी पर कार्य नहीं कर सकता था।

हमारी अभागिनी बहनें

दक्षिण में मुझे जो भी मानपत्र दिये गये, उनमे सबसे करुण देव-दासियों का था......। इस मान-पत्र को..... जहाँ से यह बहनें लायी गयी थी। उस मानपत्र से मुझे ज्ञात हुआ कि भीतरी सुधार हो रहे थे परन्तु विकास की गति बड़ी धीमी थी। जो सज्जन उनका प्रतिनिधित्व कर रहे थे, उन्होंने कहा कि आमतौर से जनता इन सुधारों के प्रति उदासीन थी। सबसे पहला धक्का मुझे कोकोनाडा में लगा और मैंने वहाँ के लोगो से स्पष्ट भी कर दिया। दूसरा बरीसाल में, जहाँ मुझे बहुत-सी अभागिनी बहनें मिलीं। चाहे उनका नाम देवदासी रखा जाय या कुछ और, परन्तु समस्या एक ही है। यह बड़े दुःख और अपमान की बात है कि मनुष्य की वासना की तृप्ति के लिए स्त्रियों को अपनी इज्जत बेचनी पड़े। पुरुष ने (जो नियामक है) स्त्रियो का जो अपमान किया है, उसके लिए उसको कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा। जब स्त्री अपनी पूरी शक्ति से पुरुष के जाल से बच कर उसके नियमों और संस्थाओं के विरुद्ध आन्दोलन करती है, तो वह हिंसात्मक ही क्यों न हो, कम प्रभावशाली नहीं होता। भारतवर्ष के पुरुषों को चाहिये उन

हजारों स्त्रियों के विषय में गम्भीरता-पूर्वक विचार करें, जो इनकी नियम विरुद्ध और अनैतिक वासना के लिए अपनी इज्जत बेचती हैं। दुख तो यह है कि जो लोग उनके यहाँ जाते हैं, उनमें से अधिकांश विवाहित पुरुष हैं, अतएव वे दुगुना पाप करते हैं, वे अपनी स्त्रियों के प्रति पाप करते हैं, जिनके साथ वे प्रतिज्ञाबद्ध हैं और उन बहनों के साथ भी जिनकी पवित्रता की रक्षा अपनी सगी बहनों की ही भाँति करने को बाध्य हैं। यह ऐसी बुराई है, जो एक दिन भी नहीं चल सकती बशर्ते कि हम भारत के पुरुष अपने सम्मान को पहचानें।

यदि कुछ बड़े आदरणीय जन इस पाप में भाग न लेते होते, तो भूखे आदमी के केले चुराने या पैसा चाहनेवाले किसी बच्चे द्वारा गिरहकटी करने से बड़ा दोष माना जाता। किसी की सम्पत्ति चुराने और किसी स्त्री की इज्जत चुराने में से अधिक बुरा और समाज के लिए हानिकारक है? मैं यह नहीं सुनना चाहता कि अपनी संतान की बिक्री में उसी प्रकार एक वेश्या जिम्मेदार है, जिस प्रकार कि घुड़दौड़ में जानेवाला एक लखपती। एक पेशेवर जेब काटने वाले द्वारा अपने जेब के काटे जाने का जिम्मेदार है। कौन बुरा है, जो जेब काटता है, वह बदमाश लड़का या गुण्डा जो अपने शिकार को मिलाकर उसकी सारी सम्पत्ति हड़प लेता है। क्या पुरुष पहले अपनी बारीक आदतों से स्त्री की उत्तम भावनाएँ नष्ट करके फिर उसके विरुद्ध पाप करने में भागी नहीं बनता? या क्या कुछ स्त्रियाँ पचमा की भाँति पतित जीवन के लिए जन्म लेती हैं? मैं हर विवाहित नवयुवक से अपनी लिखी बात पर गौर

करने को कहता हूँ। इस सामाजिक रोग, नैतिक कुष्ठ के विषय में जो मैं जानता हूँ, सब नहीं लिखना चाहता, उसकी कल्पना ही शेष बातों की पूर्ति करे और फिर यदि वह स्वयं इस रोग का शिकार हो तो भय और शर्म से उससे दूर हो जाय। और हर मनुष्य चाहे जहाँ हो, अपने पड़ोस को पवित्र बनावे। मुझे मालूम है कि दूसरा हिस्सा लिखने के लिए ज्यादा आसान है, परन्तु करने के लिए कठिन। यह एक बारीक विषय है। इसकी बारीकी के ही कारण सभी विचारवान लोगों को इधर ध्यान देने की आवश्यकता है। अभागी बहनों के बीच में काम करने का भार सिद्धहस्त सुधारकों पर छोड़ना चाहिए। मेरा इशारा वहाँ काम करने की ओर है, जहाँ इन बदनाम घरों में जानेवाले बसते हैं।

भारतवर्ष की महिलाओं से एक अपील

विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के लिए गांधीजी ने भारतवर्ष की स्त्रियों के नाम निम्नलिखित अपील निकाली—

प्रिय बहनो,

अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी ने आगामी ३० सितम्बर को विदेशी वस्त्र-बहिष्कार-आन्दोलन के लिए अन्तिम तारीख निर्धारित करके एक महत्वपूर्ण निर्णय किया है, जिसका आरम्भ बम्बई में ३१ जुलाई को लोक मान्य तिलक की स्मृति में यश की अग्नि जलाकर किया गया था अभी तक जिसे तुम लोगों ने उत्तम तथा सुन्दर समझा था, ऐसी साड़ियों तथा

अन्य बहुमूल्य वस्त्रों के एक बहुत बड़े ढेर में आग लगाने का सौभाग्य मुझे मिला था। मेरा विचार है कि उन बहनों के लिये, जिन्होंने अपने बहु-मूल्य वस्त्र दिये थे, ऐसा बिलकुल उचित था। इनका जला डालना ही सुन्दर आर्थिक उपयोग था जो तुम कर सकती थी। जिस प्रकार प्लेग की बीमारी से सम्पृक्त वस्तुओं का नाश ही सर्वोत्तम उपयोग है। जहर सम्पूर्ण शरीर को ही न बरबाद कर डाले, इसके लिये यही एक मार्ग निकाला गया था।

भारतवर्ष की स्त्रियों ने मातृभूमि के लिये पिछले बारह महीने में आश्चर्यजनक कार्य किये हैं। उदारताकी देवियोंकी भांति तुमने शान्ति-पूर्वक कार्य किये हैं, तुमने अपनी नकद सम्पत्ति दान की है और बहुमूल्य जेवरात भी छोड़ दिये हैं। चन्दे वसूल करने के लिए तुम घर-घर घूमती रही हो। तुम लोगों में से कुछ ने तो धरने देने में भी सहायता की है। कुछ ने तो जो बहुमूल्य और बारीक साड़ी पहनने की आदी थीं और दिन में कई बार बदलती थीं, अब मोटी परन्तु पवित्र तथा श्वेत खद्दर की साड़ी पहनती हैं जो आन्तरिक पवित्रता की द्योतक है। तुमने भारत-माता की खिदमत के लिए और प्रचार के लिए किया है। तुम्हारे शब्दों या कार्यों में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है। तुमने क्रोध-रहित तथा पवित्र सबसे उत्तम त्याग किया है। मैं मानता हूँ कि तुम्हारे स्वेच्छाकृत और स्नेह-युक्त कार्य ने मुझे विश्वास करा दिया है कि ईश्वर हमारे साथ है। भारतवर्ष की लाखों स्त्रियां हमारे आन्दोलन की सहायता कर रही हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी और प्रमाण की

हमें यह सिद्ध करने के लिए आवश्यकता नहीं कि हमारा आन्दोलन आत्म- पवित्रता का है।

इतना देने पर भी तुम से बहुत कुछ मिलने की आवश्यकता है। तिलक-स्वराज-फण्ड के चन्दे में पुरुषों का विशेष हाथ था। परन्तु स्वदेशी प्रोग्राम सम्भवत. तभी पूर्ण होगा, जब तुम सबसे अधिक हिस्सा लो। जब तक तुम अपना सारा विदेशी वस्त्र न रखोगी, सब बहिष्कार असम्भव है। जब तक तुम्हारी यह चाह बनी रहेगी, तब तक त्याग असम्भव है। और बहिष्कार का उद्देश्य है पूर्ण त्याग। हमें उन्हीं वस्त्रों से संतोष करना चाहिये कि जिन्हें भारतवर्ष बना सकता है, जैसे हम उन्हीं बच्चो पर संतोष करते हैं जिन्हें भगवान हमें देता है। अगर बच्चा किसी बाहरी आदमी को बुरा लगे, तो भी मैंने किसी माँ को उसे बाहर फेंकते नहीं देखा है। इसी प्रकार राष्ट्रीय भारत की स्त्रियों को यहाँ के वस्त्र का भी ध्यान रखना चाहिए। और तुम्हारे लिये केवल भारत का कता और बुना ही यहाँ की उत्पत्ति है। फिलहाल तो तुम्हें भद्दी और मोटी खादी ही पर्याप्त मात्रा में मिल सकती है। फिर इसकी उन्नति के लिये अपनी सारी कला और रुचि इसमे लगाओ। और अगर तुम कुछ महीने मोटी खादी पर ही सन्तुष्ट रह गयीं, तो भारतवर्ष को पूर्ण आशा है कि यहाँ का प्रचीन, सुन्दर, महीन और उत्तम वस्त्रफिर बनने लगेगा, जिससे देखकर सारे संसार को ईर्ष्या और निराशा होती थी। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि छ. महीने के त्याग में यह मालूम हो जायगा कि जिसे हम कलात्मक म।नते हैं और सच्ची कला दिखावट पर ही निर्भर

नहीं है बल्कि उसके पीछे छिपी भावना पर भी। ऐसी भी कला है, जो मार सकती है और ऐसी भी जो जीवन देख सकती है। वह सुन्दर वस्त्र जो पश्चिमी देशों या सुदूर-पूर्व से यहाँ आये, उन्होंने हमारे लाखों भाइयों और बहनों को मार डाला और हजारों बहनों का सम्मान ले लिया। सच्ची कला वह है, जो आनन्द दे शान्ति दे और पवित्रता दे। एसी कला को हमारे बीच आने के लिए वर्तमान समय में खादी का प्रयोग करना आवश्यक है।

और स्वदेशी प्रोग्राम के लिए केवल खादी का प्रयोग ही आवश्यक नहीं बल्कि तुम सब का खाली समय में कातना भी। मैंने लड़कों और पुरुषों को भी कातने के लिए सुझाया है। मैं जानता हूँ कि उनमें से हजारों प्रतिदिन कात रहे हैं। परन्तु कातने का विशेष भार, प्राचीन काल की भाँति तुम्हारे कन्धों पर होना चाहिए। दो सौ साल बीते जब यहाँ की स्त्रियाँ अपनी ही आवश्यकता के लिए नहीं बल्कि निर्यात के लिए भी कातती थीं। वे मोटी खादी ही नहीं, बल्कि संसार के अबतक के बारीक-से-बारीक सूत कातती थीं। हमारे पूर्वज जितना महीन सूत कातते थे उतना महीन किसी मशीन ने नहीं काता है। तो यदि हम खादी की माँग की पूर्ति दो माह और उसके बाद करना चाहते हैं तो तुम्हें चाहिए कि खादी फ्रैश बनाओ, कताई की प्रतियोगिता स्थापित करो और भारत के बाजारों में हाथ की कती हुई खादी की बाद ला दो। इसके लिए तुम लोगों में से कुछ को कातने में तथा चरखा ठीक करने में सिद्धहस्त होना चाहिये। इसका अर्थ है लगातार परिश्रम।

तुम कातने को रोजी का जरिया न समझो। मध्यम वर्ग के लिए इससे घर की आमदनी बढ़ सकती है और निस्सन्देह बहुत गरीब स्त्रियों को इससे रोजी भी मिलेगी। विधवा स्त्रियों के लिए तो चरखा एक प्रेमी साथी की भाँति होना चाहिए। परन्तु तुम्हारे लिए, जो इस अपील को पढ़ोगी, यह एक धर्म, कर्तव्य है। यदि भारत की सभी सम्पन्न स्त्रियाँ कुछ मात्रा में प्रतिदिन कातें, तो सूत सस्ता हो जाय और अधिक-से-अधिक उत्तमता भी आ जाय।

इस प्रकार भारत की आर्थिक तथा नैतिक मुक्ति तुम्हारे ही हाथों में है, भारत का भविष्य तुम्हारे घुटनों पर है, क्योंकि आगामी पीढ़ी का पालन करोगी। तुम्हीं भारत की सन्तानों को सादा, ईश्वर से भय माननेवाली तथा बहादुर पुरुष और स्त्रियों के रूप में ला सकती हो। और कमजोर, डरपोक तथा विदेश की बारीक और बहुमूल्य वस्तुओं का चाहनेवाला भी बना सकती हो और अन्त में इस आदत का छूटना असम्भव हो होगा। आगे के कुछ सप्ताहों में पता चल जायगा कि भारत की स्त्रियाँ किस वस्तु की बनी है। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम क्या पसन्द करोगी। तुम्हारे हाथों से, ऐसी गवर्नमेन्ट की अपेक्षा, जो भारतवर्ष के साधनों को चूसती रही है और जिसका अब अपने में ही कुछ विश्वास नहीं रह गया है, भारत का भाग्य कहीं अधिक सुरक्षित है। हर स्त्रियों की सभा में मैं इस राष्ट्रीय प्रयत्न के लिए शुभ आकांक्षाएँ माँगता रहा हूँ और मैंने ऐसा केवल इसी विश्वास से किया है कि तुम पवित्र, सादी तथा दैवी हो और दूसरों को भी ये सब गुण दे सकती

हो। अपनी शुभेच्छा की सफलता का निश्चय विदेशी वस्त्र बहिष्कार तथा खाली समय में लगातार देश के लिए सूत कात सकती हो।

महिलाओं का कर्तव्य

कलकत्ते की स्त्रियों ने वहां के लोगों के लिए खादी बेचने के प्रयत्न से रोके पैदा कर दिये हैं और अखबारों के एक तार मुताबिक वे गिरफ्तार भी कर ली गई हैं। इसमें आगामी प्रेसिडेन्ट (देशबन्धु सी० आर० दास) उनकी विधवा बहन और उनकी भतीजी भी हैं। मुझे आशा थी कि प्रारम्भिक दशा में स्त्रियों को जेल जाने का गौरव न प्राप्त होगा। उन्हें उग्र सत्याग्रही नहीं बनना था, परन्तु बंगाल गवर्नमेन्ट ने पुरुषों और स्त्रियों में भेदभाव न करने के जोश में, तीन स्त्रियों को यह गौरव प्रदान किया है। आशा है कि सारा भारतवर्ष इनका सम्मान करेगा कि स्त्रियों का स्वराज्य प्राप्त करने में उतना ही हाथ होना चाहिए जितना पुरुषों का, संभवतः इस शान्ति युद्ध में वे पुरुषों की अपेक्षा मीलों आगे रह सकती है। हमें ज्ञात है कि वे पुरुषों की अपेक्षा धार्मिक उपासना के विषय में कहीं श्रेष्ठ हैं। गौरवपूर्ण सहनशीलता उनका चिह्न है और जब कि बङ्गाल गवर्नमेन्ट ने उन्हें घसीटकर आग में ला खड़ा किया है, तो मुझे आशा है कि सारे देश की महिलाएँ इस चुनौती को स्वीकार करेंगी और अपने को सगठित करेंगी। बहुत से पुरुषों के गिरफ्तार हो जाने पर अपनी नीति की इज्जत रखने के लिए उनकी जगह भरने को

स्त्रियाँ बाध्य थीं, परन्तु अब उन्हें चाहिए कि पुरुषों के साथ-साथ जीवन के उद्देश्य की कठिनाइयों को सहन करें। ईश्वर उनके सम्मान की रक्षा करेगा। जब मानो पुरुषों पर व्यंग्य करने के नाते द्रौपदी की रक्षा उसके स्वभाविक संरक्षक न कर सके, तो उसकी अपनी ही पवित्रता ने किया। और ऐसा सदा ही होगा। यहाँ तक कि जो शारीरिक रूप से सबसे दुर्बल है वह भी अपनी इज्जत बचा सकता है। पुरुषों को स्त्रियों के बचाने में गौरव अनुभव करना चाहिए, परन्तु साथ ही पुरुष की अनुपस्थिति में या पुरुष द्वारा उसकी रक्षा के पवित्र कर्तव्य के न करने में अपने को असहाय न समझना चाहिए। जो मरना जानता है, उसे अपने सम्मान की रक्षा में किसी प्रकार के भय की आशङ्का न होनी चाहिए।

मैं भारत की स्त्रियों को चाहता हूँ कि वे तुरन्त शान्तिपूर्वक उन लोगों का नाम इकट्ठा करें, जो इस ज्वाला में कूदने को प्रस्तुत हैं। वे अपना नाम बङ्गाल की स्त्रियों को भेजें और बङ्गाल की स्त्रियाँ यह महसूस करें कि उनकी और दूसरी जगह की बहनें उनके उत्तम उदाहरण पर चलने को तैयार हैं। सम्भव है, जेल-जीवन ग्रहण करने या इसके जो कुछ भी बर्ताव उनके साथ हो, उसे भुगतने के लिए बहुत सी स्त्रियाँ न आवें। परन्तु यदि राष्ट्र को पहली बार थोड़ी सी संख्या में स्त्रियाँ मिलेंगी, तो उसके लिए लज्जा की बात न होगी।

स्त्रियों के हाथों स्वराज्य

अब चूँकि वर्किंग कमेटी ने कताई को सविनय अवज्ञा की एक अनिवार्य शर्त के रूप में मान लिया है, भारतवर्ष की स्त्रियों को देश-सेवा का दुर्लभ अवसर मिला है। नमक-सत्याग्रह के कारण वे हजारों की संख्या में चहारदीवारी से बाहर निकल आयीं थीं। उन्होंने दिखा दिया कि वे भी मर्दों के बराबर ही मुल्क के काम आ सकती हैं। उस मौके पर ग्रामीण स्त्रियों को वह गौरव मिला जो उन्हें पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था। साम्राज्य के जुए से आजाद होने के लिए हिन्दुस्तान के शान्त आन्दोलन में कताई को फिर से अपना केन्द्रीय स्थान मिल जाने से यहाँ की स्त्रियों को एक खास दर्जा हासिल हो जाता है। कताई में उन्हें पुरुषों की अपेक्षा स्वाभाविक सुविधा है।

अनादि काल से ही स्त्री और पुरुष के बीच श्रम-विभाजन रहा है। हजरत आदम बुनते थे और हजरत हव्वा कातती थीं। यह भेद आज तक मौजूद है। कातनेवाले पुरुष अपवाद स्वरूप हैं। जब मैं सन् १९२०-२१ में पंजाब के मर्दों से कातने को कहता था, तो वे जवाब दिया करते थे कि यह उनकी शान के खिलाफ है और औरतों का काम है। आजकल पुरुष गौरव के आधार पर आपत्ति नहीं करते। हजारों पुरुष ऐसे हैं, जो यज्ञार्थ कातते हैं। जब से पुरुष देश-सेवा की भावना से कातने लगे हैं, तभी से कताई एक विज्ञान बना है और उसमें भी दूसरे क्षेत्रों की तरह बहुत से आविष्कार हुए हैं। यह सब होते हुए भी अनुभव यही बताता है कि कताई स्त्री की विशेषता रहेगी। न मानता

हूँ कि इस अनुभव का एक सबल कारण है। असल में कताई धीमी और एक दूसरों से शान्त क्रिया है। स्त्री त्याग की और इसीलिए अहिंसा की मूर्ति है। इस कारण उसका काम युद्ध की अपेक्षा शान्ति के अधिक सहायक होना चाहिए। और है भी। अगर आज उसे हिंसात्मक युद्ध के कामों में घसीटा जा रहा है, तो यह मौजूदा सभ्यता के लिए कोई शोभा की बात नहीं है। मुझे जरा भी शक नहीं है कि हिंसा स्त्री के लिए इतनी अशोभनीय चीज है कि वह बहुत जल्द अपनी मूल-प्रवृत्ति पर इस तरह बलात्कार किये जाने के विरुद्ध विद्रोह कर उठेंगी। मुझे लगता है कि पुरुष भी अपनी इस मूर्खता पर पछताएगा। स्त्री-पुरुष की समानता का यह अर्थ नहीं है कि उनके काम भी एक-से ही हों। स्त्री के शिकार खेलने या भाला चलाने पर कोई कानूनी रुकावट भले ही न हो, परन्तु सहज ही उसे ऐसे काम से अरुचि होती है, जो मर्द के करने का है। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को अलग-अलग इसलिए बनाया है कि वे एक दूसरे के पूरक हों, उनकी आकृतियों की तरह उनके कार्य भी निश्चित कर दिए गये हैं।

लेकिन मेरे मतलब के लिए यह जरूरी नहीं कि स्त्री पुरुष का अलग-अलग काम होना साबित किया जाय। यह बात तो है ही और भारत में तो हर हालत में है कि लाखों स्त्रियाँ कातने को अपना स्वाभाविक काम समझती हैं। वर्किंग कमेटी के प्रस्ताव से पुरुषों का भार अपने आप स्त्रियों के कन्धों पर चला आया है और उन्हें जौहर दिखाने का मौका मिला है। मुझे यह देखकर कितनी खुशी होगी कि मेरी भावी

सेना में पुरुषों से स्त्रियाँ कहीं अधिक हैं। इस दशा में अगर लड़ाई आयी तो मैं उसका बहुत अधिक आत्मविश्वास के साथ स्वागत कर सकूँगा। पुरुषों की अधिकता हो तो यह निश्चिन्तता न होगी, मुझे उनकी हिंसा का डर रहेगा, जब कि स्त्रियाँ हिंसा से फूट पड़ने के विरुद्ध मेरी ढाल होंगी।

चरखा और स्त्रियां

बिहार के खादी पर बोलते समय लोगों का ध्यान विभिन्न देशों में लोगों की प्रतिदिन प्रति-पुरुष की आमदनी की ओर आकर्षित करते हुए गांधीजी ने कहा—

देखो यह लम्बी लाल रेखा, जो अमेरिका की आमदनी प्रतिदिन बताती है, भारत की आमदनी वाली रेखा से कितनी बड़ी है। पहली १४ रुपया प्रतिदिन है और दूसरी १½ आना प्रतिदिन। दूसरे देशों की आमदनी से मुकाबिला करो—इङ्गलैंड, फ्रांस, जापान, जो क्रमानुसार ७ रुपया ६ रुपया और ५ रुपया प्रतिदिन है और यहाँ का यह डेढ़ आना भी मध्यम है। यदि कुछ बैरिस्टरों, वकीलपतियों, तनख्वाहवाले सरकारी तथा कौंसिलवाले लोगों को छोड़कर कुछ लोगों की आमदनी इससे भी कम होगी। मैं पूर्ण विनम्रता से पूछता हूँ, इस थोड़ी आमदनी की पूर्ति का कोई तरीका बताओ। मैं सबसे पूछता हूँ, पर कोई सुझाव नहीं मिलता। बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करके करोड़ों लोगों के सम्बन्ध में

रहने के परिणाम-स्वरूप मैंने सुझाया है कि चरखा ही ऐसा है, जिससे यह आमदनी पूरी हो सकती है।

फिर उन्होंने खादी के उत्पादन और विक्रय का चार्ट लेकर विहार की बढ़ती हुई खादी की मात्रा तथा उसकी विक्री की कमी की ओर ध्यान दिलाया।

इस उत्पादन का अर्थ है ३०००० रुपये का ३०००० विहार की निर्धन स्त्रियों मे विभाजन। मेरे साथ दरभङ्गा के खादी-केन्द्रों में आओ और देखो। चरखे ने हिन्दू तथा मुसलमान स्त्रियों में कितना सुख और शान्ति भर दिया है। यदि इसे और लोगों को रोजगार नही मिलता तो यह मेरी नही तुम्हारी गलती है। यदि तुम्हें उनके हाथों की बनायी हुई चीज खरीदने का ध्यान नही है, तो यह काम नही बढ़ सकता। तुम्हारे हर गज खद्दर खरीदने से उन स्त्रियों को कुछ पैसा मिलता है। कुछ ही पैसे ज्यादा नही। परन्तु इसका अर्थ है कि जहाँ कुछ भी नही पहुँचता था, वहाँ कुछ पैसा पहुँचता है। मैंने बरीसाल और गजामाण्डी की पतित बहनों को देखा। एक युवती लड़की आयी और बोली "गांधी, तुम्हारा चरखा हमे क्या दे सकता है? जो लोग हमारे यहाँ आते हैं, वे कुछ मिनटों के लिए ५) से लेकर १०) तक देते हैं।" मैंने उनसे कहा, "चरखा तुम्हें उतना धन तो नही दे सकता, परन्तु यदि वे इस अपमान-जनक कार्य को छोड़ दें, तो मैं तुम्हें कातना और बुनना सिखा सकता हूँ और इस प्रकार सम्मानपूर्वक अपनी रोज पैदा करने में सहायता करता हूँ।' उसकी बात सुन कर मेरा दिल बैठ गया और मैंने भग-

वान् से कहा मैं भी स्त्री ही क्यों न पैदा हुआ ? लेकिन अगर मैं स्त्री पैदा नहीं हुआ तो बन सकता हूँ और भारत की स्त्रियों के ही लिए, जिनमें से बहुतों को एक आना प्रतिदिन भी नहीं मिलता, मैं अपना चरखा और भिक्षा-झोली लिए हुए देश-भर में घूम रहा हूँ।

बुढ़ापे में जवानी का उत्साह

एक अँग्रेज बहन लिखती है —

मुझे आपसे एक प्यारी स्विज बुढ़िया की बात कहनी है। उसकी उम्र ७० वर्ष से भी अधिक है, पर फिर भी वह 'विलेनिव' के सामने अपना सारा समय चरखा चलाती और बुनती रहती है, मेरे पत्र के जवाब में वह (फ्रेंच भाषा) में लिखती है —"जाड़े का आरम्भकाल है, बर्फ पड़ना आरम्भ हो गया है जो महीना हमारे साथ रहेगा और मुझे अब करघे पर काम करने के लिए काफी समय मिलता रहेगा। ४२ मिनट के दो टुकड़े तैयार करने के लिए मेरे पास कई दिन से फरमाइश रखी हुई है। उन्हें तैयार करने के लिए मुझे ऐसे ही लम्बे समय की जरूरत थी, क्योंकि अब (७२ साल) की अवस्था में मैं जल्दी जल्दी थक जाया करती हूँ।" इस बूढ़ी माँ का जीवन सन्तुष्ट और शान्तिमय जीवन का एक बढ़िया-से बढ़िया नमूना है, जो कि प्रत्येक किसान का होना चाहिए। गर्मी के मौसम में वह खेतों में काम करती है। हाँ, कभी कभी फुरसत मिलने पर या बारिश आ जाने पर वह बीच बीच में चरखा या करघा

भी चलाती रहती हैं। पर जाड़े में जब कि जमीन बरफ से ढक जाती है, वह सारा दिन यही कताई बुनाई करती है। आप उससे यह करघा और चरखा छुड़ा लीजिये और उसकी दशा बिगड़ी। पर इस उद्यम के कारण उस पहाड़ी के सब किसानों में वह सबसे अधिक सुखी और आनन्दमय प्राणी है। क्यों? इस लिए कि उन सब में केवल उसीने इस पुराने उद्यम को पकड़े रखा और इसलिए केवल उसी का जीवन सम्पूर्ण और सच्चा भी है। उसकी एक छोटी-सी-तसवीर मैं आपके पास भेजती हूँ।

"एक लकड़ा के ठूँठ पर बैठी हुई वह अपने एक बकरे को प्यार कर रही है। इससे आपको उसके प्यारे, बूढ़े प्रसन्न चेहरे की कुछ कल्पना हो सकेगी। पास खड़ी हुई युवती उसकी पतोहू है।"

यह सुन्दर तसवीर मेरे पास है। पर मैं इसे 'यंग इंडिया' में प्रकाशित नहीं कर सकता। तसवीर की न्यूनता को पाठक अपनी कल्पना से ही पूर्ण कर लेंगे। ध्यान देने की बात है कि यन्त्रों के प्रभाव के नीचे दबे हुए उन पश्चिमी देशों में भी ऐसे लोग हैं, जो चरखे और करघे द्वारा जो कि एक समय प्रधान और सार्वभौम गृहोद्योग थे, सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकते हैं और जब कि यह वृद्ध महिला इस ७९ वर्ष की अवस्था में भी इस उद्यम के कारण जवानी के उत्साह को अनुभव करती है और उससे केवल आजीविका ही नहीं, बल्कि शान्ति भी प्राप्त कर रही है, तब भला, उस उद्यम की इस देश में कितनी अधिक आवश्यकता है, जहाँ विरली ही स्त्रियाँ ७९ वर्ष तक पहुँचती हैं। जहाँ अधिकांश बहनें ४८ वर्ष की अवस्था में ही जबरदस्ती बूढ़ी हो जाती हैं और जहाँ

देश की करोड़ों बहनों को घर बैठे निर्दोष काम करके मिलनेवाली शान्ति की ही नहीं बल्कि उस भूख के भेड़िये को भगाने के लिए ही किसी आजीविका की बेहद जरूरत है।

इसपर वह अज्ञानी निन्दक पूछता है, यदि ऐसा है तो वे भी क्यों नहीं उस प्यारी स्विज बुढ़िया की तरह चरखा चलातीं, और शान्ति को प्राप्त कर लेतीं? उन्हें यह करने से कौन रोकने जा रहा है?

१८८९ या ९० के करीब-करीब इसी प्रकार का एक प्रश्न इन्हीं कोई किन्तु असभ्य दिखाई देनेवाले अँग्रेज ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से पूछा था, जब वे अँग्रेजों की किसी सभा में व्याख्यान दे रहे थे। बाबू सुरेन्द्रनाथ से—बङ्गाल के तत्कालीन बेताज के राजा से—उस भले आदमी ने जो कि जानबुल एण्ड कम्पनी का एक सदस्य था, पूछा कि यदि यह ठीक है कि भारत स्वाधीनता चाहता है, तो उसे कौन रोक रहा है? यह कैसी बात है कि उन्होंने (शक्तिशाली जानबुल कम्पनी के सारे सदस्यों में से किसी ने भी) सिर फुड़ौवल की तो बात दूर रही, गिरफ्तारी या तोड़-फोड़ तक की बात नहीं सुनी, जैसी कि (स्वतन्त्र) प्यारी चीज या वस्तु न मिलने पर ऐसे मौकों पर किया करते हैं। [illegible] बात है, अखबारों ने वक्ता के उत्तर का नहीं छापा है, श्रोताओं के [illegible] में केवल "क्या कहीं" "क्या कहीं" की आवाज का उल्लेख है। किन्तु उस सच्चे अँग्रेज ने सुरेन्द्रनाथजी से जो सवाल किया था वही बात भी पूछा जा सकता है, और साथ ही यह भी हम जानते हैं कि यह सवाल स्वाधीनता की पुकार का जवाब नहीं हो सकता। शायद हम स्वाधीनता

की प्राप्ति के मार्ग को न भी जानते हों ? या उसे जानकर भी उस पर अमल करने की हम मे इच्छा या शक्ति ही न हो। फिर भी स्वाधीनता की पुकार तो न्याय और स्वाभाविक ही है और चाहे वह कितनी ही नाकामयाब हो, वह स्वाधीनता की पहली सीढ़ी तो जरूर है।

पर जब इन करोडो के भूखे मरने की बात कही जाती है, तब ये अज्ञानी निन्दक इस बात को भूल जाते हैं कि वे करोडों गरीब तो काम या रोटी के लिए पुकार मचाना भी नहीं चाहते। इसीलिये तो अँग्रेज इतिहासकार के साथ साथ हम भी उन्हें 'गूँगे' कहते है। और इसीलिए हमे (और निंदको को भी) उनकी ओर से आवाज उठानी पडती है। हमें उन करोडो गूँगो को पहला पाठ पढ़ाना पड रहा है। और वे नहीं, हम ही उनकी इन भयंकर गरीबी और अज्ञान के लिए जिम्मेदार हैं। वे तो बेचारे यह जानते भी नहीं कि तुम्हें क्या चाहिए, क्योंकि वे जीते हुए भी मरे के समान हैं।

उन अस्पृश्यो से यह कहने की किसी में हिम्मत है, कि यदि तुम स्वाधीनता चाहते हो, तो ले लो, तुम्हें कौन रोकता है ? परमात्मा बडा शान्तिशील और चिरसहिष्णु है। जालिम को वह उसकी कब्र खोदने देता है। हाँ समय-समय पर वह मृत्यु की चेतावनी बराबर दे दिया करता है।

हम कह सकते है, और न्यायपूर्वक कह सकते है कि यद्यपि उस अँग्रेज का ताना सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक ही है। परन्तु अँग्रेजो के मुँह से यह प्रश्न शोभा नही दे सकता जब कि हममें से हर एक आदमी

अपनी लाचारी को महसूस करते हुए भी स्वाधीनता को प्राप्त करने को अपनी स्वाभाविक इच्छा को प्रकट कर रहा है।

एक बहन की कठिनाई

एक बहन लिखती हैं —

"साल भर हुए मैंने आपको हर एक के लिए खादी पहनने की आवश्यकता पर जोर देते हुए सुना था और फिर तय किया कि उसपर अमल किया जाय। लेकिन हम लोग गरीब हैं। मेरे पति कहते हैं कि खादी कीमती होती है। महाराष्ट्र में रहने के कारण मुझे ९ गज लम्बी साड़ी पहननी पड़ती है। यदि मैं अपनी साड़ी ६ गज से ६ गज लम्बी कर लूँ तो बहुत बचत होगी, पर बुजुर्ग लोग ऐसी बात सुनना भी नहीं पसन्द करेंगे। मैं उनसे वादविवाद करती हूँ कि खादी पहनना सबसे महत्वपूर्ण है, पहनने के ढंग और उसकी लम्बाई का कोई महत्व नहीं, परन्तु सब बेकार। वे कहते हैं, मैं युवती होने कारण इन नयी विचार-धारा को अपनाती हूँ। लेकिन मेरा ख्याल है कि यदि आप मेरे पास खादी पहनने पर जोर देते हुए (पहनने के ढंग का विचार न करते हुए) लिखें, तो वे मान जायेंगे।"

मैंने बहन को उत्तर भेज दिया है। लेकिन इस कठिनाई के बारे में यहाँ कुछ लिख रहा हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इस प्रकार की

कठिनाई बहुत-सी और बहनें भी कर रही हैं। यह खत लेखिका की देशभक्ति का प्रभाव है, क्योंकि बहुत सी ऐसी स्त्रियाँ नहीं हैं, जो स्वयं पहनने के ढङ्ग को महत्व न देने की ओर रिवाजों के खिलाफ चलने के लिए कदम बढ़ायें। ऐसी बहनों और भाइयों की संख्या बहुत अधिक होगी कि प्रसन्नतापूर्वक स्वराज्य हासिल करना चाहेंगे, यदि वह बिना किसी प्रकार के कष्ट सहन किये या खर्च के और अपनी पुरानी प्रथाओं को मानते रहकर भी—चाहे वे उचित हों या नहीं—प्राप्त किया जा सके।

परन्तु स्वराज्य ऐसी सस्ती वस्तु नहीं है। स्वराज्य प्राप्त करने का अर्थ है—अपने भीतर आत्म-त्याग। प्रान्तीयता की भावना का त्याग करते हुए का अभ्यास है। प्रान्तीयता राष्ट्रीय स्वराज्य प्राप्त करने के ही मार्ग में बाधक नहीं, परन्तु प्रान्तीय राज्य के प्राप्त करने में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ऐसी भावनाओं के लिए अधिक जिम्मेदार हैं। वैविध्य सीमा तक अच्छा है, लेकिन यदि सीमा पार कर जाय और संस्कार और प्रथाएँ विविधता के नाम पर प्रदर्शित किए जायँ तो वह राष्ट्रीयता को दमन करनेवाला होगा।

दक्षिणी साड़ी एक सुन्दर वस्तु है, परन्तु ऐसी सुन्दरता राष्ट्र का बलिदान करने से मिले, तो उसे समाप्त कर देना होगा। यदि पंजाबी आधी या छोटी साड़ी पहनने का कच्छ का ढङ्ग खादी को सस्ता बनायें और सब के लिए सुगम करें, तो उसे ही कलात्मक समझना चाहिये। दक्षिणी, गुजराती, कच्छी, बंगाली सभी साड़ी पहनने के राष्ट्रीय ढङ्ग हैं और इनमें

से हर एक उतना ही राष्ट्रीय है जितना दूसरा। ऐसी दशा में जिस ढङ्ग में, शिष्टता का ध्यान रखते हुए, कम साड़ी लगे, उसे अच्छा समझना चाहिए। कच्छी ढङ्ग ऐसा है कि उसमें तीन ही गज कपड़ा लगता है जो गुजराती लम्बाई का लगभग आधा ही है। इस बात का ध्यान छोड़ दिया जाता है कितना कम भार ढोना पड़ता है। यदि पल्लेदार या पेटी-कोट एक ही रंग के हों, किसी को तुरन्त नहीं ज्ञात हो सकता कि केवल पल्लेदार है या पूरी साड़ी। ऐसे राष्ट्रीय ढङ्गों की अदला बदला वांछनीय है।

सनाढ्य लोग अपने पास सभी प्रकार के प्रान्तीय ढंग वाले कपड़े रख सकते हैं। यदि गुजराती लोग बङ्गाली अतिथियों का स्वागत बंगाली पोशाक में और बंगाली लोग गुजराती अतिथियों का स्वागत गुजराती पोशाक में करें, तो बड़ा अच्छा और राष्ट्रीय लगेगा, परन्तु ऐसा केवल सनाढ्य राष्ट्रीयतावादी ही कर सकते हैं। गरीब और मध्यमवर्ग के राष्ट्रीयतावादी लोग, उसी प्रान्तीय ढङ्ग का प्रयोग करके गर्व का अनुभव कर सकते हैं जो सस्ता पड़े और साड़ी को सुगम बनाये। उसमें भी उन गरीब-से गरीब आदमी के पहनने के ढंग का ध्यान रखना चाहिये।

स्वदेशी का अर्थ यह नहीं कि अपने ही गन्दे तालाब में डूबे वरन् उसे समुद्र की धारा बनाये, जिसे राष्ट्र कहा जाता है। यह तभी सम्भव है जब यह पवित्र रहे। अतएव ऐसे ही प्रान्तीय या स्थानीय रीतियों को राष्ट्र भर में विकसित करना चाहिये जो अपवित्र या अनैतिक

न हों। और फिर ऐसा हो जाने पर राष्ट्रीयता मनुष्यता में परिवर्तित हो जाती है।

जो बात पहनावे के मामले में लागू है, वही भाषा-भोजन के भी विषय में। उचित अवसर पर जैसे हम दूसरे प्रान्तों के पहनावे ग्रहण कर सकते है, उसी प्रकार भाषा या अन्य वस्तुएँ भी। परन्तु आजकल तो जान कर या बेजाने अंग्रेजी को अपनी मातृ-भाषा की अपेक्षा अधिक महत्व देने के निरर्थक विनाशकारी और असम्भव कार्य में तमाम शक्ति बर्बाद हो रही है। दूसरे प्रान्तो की भाषाओं की अपेक्षा तो अँग्रेजी को कहीं अधिक महत्व दिया जाता है।

तामिल स्त्रियों के विषय में

तिरुपती से एक बहन लिखती हैं :—

मद्रास के आन्दोलन की सफलता में सबसे अधिक बाधा डालनेवाली स्त्रियाँ हैं। उनमें से बहुत सी प्रतिक्रियावादी हैं। और बड़े घरों की बहुत सी ब्राह्मण स्त्रियाँ पश्चिमी दुर्गुणों का शिकार हो चुकी है। वे दिन मे कम-से-कम तीन बार कॉफी पीती हैं और इससे भी ज्यादा पीना फैशनेबुल समझती हैं। पहनावे के मामले में भी उनकी हैसियत इससे अच्छी नहीं। उन्होंने घरेलू सस्ते कपड़े पहनने छोड़ दिये है और कीमती विदेशी कपड़ों का प्रयोग करती हैं। जवाहिरात के मामले में ब्राह्मण

स्त्रियाँ सभी से आगे हैं। ब्राह्मणों में अवैष्णव सबसे ज्यादा पाप करती हैं। जब कि पुरुष पवित्र जीवन ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं, हमारी स्त्रियाँ और भी खर्चीली होती जा रही हैं। पूजा के लिए मन्दिर जाते समय उन्हें खादी और सादे पहनावे का ख्याल नहीं होता। वे अधिक-से अधिक खर्चीले जवाहिरात और उससे भी खर्चीले फीते इस्तेमाल करती हैं। मैं ऐसी बहुत-सी स्त्रियों को जानती हूँ, जो केवल इसलिये मन्दिर नहीं जातीं कि उनके पास बेशकीमती कपड़े और जवाहिरात नहीं हैं।

मुझे यह सोचने की इच्छा नहीं कि ऊपर लेखक ने जो लिखा है (जो स्वयं एक अब्राह्मणी है, वैष्णवी वकील हैं) वह पूर्ण रूप से सच है, मैं ऐसा मानने को तैयार नहीं कि तामिल स्त्रियां औरों की अपेक्षा तड़क भड़क पसन्द करने में आगे हैं। फिर भी यह पत्र तामिल स्त्रियों के लिये एक चेतावनी होनी चाहिये। उन्हें चाहिये कि प्राचीन सादगी की ओर चलें और निश्चय ही ईश्वर तड़क-भड़क के पहनावेवाली स्त्रियों की अपेक्षा उनसे अधिक प्रसन्न होगा जो आन्तरिक पवित्रता के द्योतक रूप में पवित्र खादी की साड़ी पहनेंगी। हमारे मन्दिर दिखावे के लिए नहीं हैं, बल्कि सादगी और विनम्रता प्रदर्शित करने के लिये, जो उपासना की भावना प्रकट करते हैं। मद्रास प्रेसीडेन्सी में स्त्रियों के बीच लगातार जिस बुराई की शिकायत की गयी है उसके बारे में प्रचार होना चाहिये।

तामिल बहनों के विषय में और

एक दक्षिणी भारत के वकील ने लिखा है :—

"तामिल में खादी का उतना प्रचार नहीं है जितना और जगहों में है, क्योंकि वहाँ की स्त्रियाँ खादी नहीं पहनतीं। इसीलिए चर्खा भी अधिक नहीं दिखाई देता। यहाँ विवाहित स्त्रियाँ सादे सफेद कपडे नहीं पहन सकतीं। वे सिर्फ रंगी हुई साडियाँ ही पहन सकती हैं। प्राचीन काल में स्त्रियाँ सूती कपडे ही पहनती थीं। और उनमे सबसे गरीब लोगों को छोड कर, वे सूती साडी से नफरत करती हैं और सिल्क की साड़ी पहनती हैं। पहले तो कोरानाडू मे सिल्क की साडियाँ बनती थी, और फिर कॉंजीवरम में भी और वे भारतीय रंग में रंगी जाती थीं। इनका मूल्य १०) से ३०) तक होता था। उनका कभी-कभी प्रयोग होता था। बाद में बंगलोर की साड़ियाँ जो अँग्रेजी या जर्मन रगों से रँगी जाती हैं, सारे बाजारों मे छा गयी, जिनकी कम-से-कम कीमत ५०) होती है। इसकी वजह से ब्राह्मण गृहस्थों को बडी परेशानी है, क्योंकि घर के सभी परिवारो के पहनने के लिये यही लेना पडता है, और रोजाना यही पहनने के लिये तो कई एक साड़ियाँ खरीदनी पडती हैं। शादी के मौके पर भेंट करने के लिये उपयुक्त साडी का दाम कम-से-कम १००) तक पहुँच जाता है। खासकर इसी कारण बहुत से घर मिट जाते हैं। और यह विनाशकारी रोग, जो ब्राह्मणों तक ही सीमित था, अब और जातियों में भी फैल गया है।

खर्चे के अलावा दूसरा भी दृष्टिकोण है। आराम और तन्दुरुस्ती का सिल्क न सोखनेवाला और भारी कपड़ा है, पहनकर खाना बनाना या काम करना मौत का ही सामना है। यहाँ पर एक या दो महीनों को छोड़कर सदा गर्मी रहती है और कीमती साड़ियों को ज्यादा धोया भी नहीं जाता है, क्योंकि इससे उनका रंग खराब हो जाता है और वे सिकुड़ भी जाती हैं। पसीने और उसकी बदबू तो भयानक होती है।

बहुत से घर जो बर्बादी के करीब हैं, आपके बड़े अनुगृहीत होंगे, यदि आप लोगों को सादगी आराम और मितव्ययिता की ओर ले जायँ।

मैं संवाददाता से सहमत हूँ कि तामिल स्त्रियाँ अपनी सिल्क की साड़ी को जरूरत से ज्यादा चाहती हैं। मद्रास जैसा गर्म जलवायु वाले प्रांत के लिये सिल्क से अधिक हानिकारक कोई वस्त्र नहीं है, और भारतवर्ष जैसे गरीब देश के लिये १००) की साड़ी व्यय करना एक अपराध है। पुरुष उनके अच्छे नहीं। वे हाथ के बुने हुए कपड़ों (पगड़ी, धोती और उपरना) पर गर्व करते हैं और यह नहीं सोचते कि जो सूत इनमें लगता है, वह सारा-का सारा विदेशी होता है। लोगों को अजनबी मालूम होगा, पर खादी जो शोषक होता है, उन वस्त्रों की अपेक्षा जिसे लोग इतना पसन्द करते हैं, कहीं ठण्डी होती है। मेरी आशा है कि तामिल-नेताओं की उच्च धारणा स्वदेशी के कठिन विषय में भी फलीभूत होगी और लोग विदेशी वस्त्रों को पूर्ण बहिष्कार की नैतिक आवश्यकता को सम-

भेंगे और चरखे को अपनाएँगे। मद्रास और आन्ध्र के धूप से पिघलते हुए मैदानों में चरखा-संचालन से अधिक उपयुक्त कोई व्यवसाय की कल्पना नही की जा सकती। द्रविड प्रदेश से बहुत से लोगों को बाहर जाना पडता है और बहुत से लोग निर्धन भी हो गये हैं। चरखे के आ जाने से यह बन्द हो जायगा। यदि कुछ भी लागत न हो, तो भी भारत के गरीब किसानों का पालन केवल खेती नहीं कर सकती है।

एक सुन्दर सेविका इस संसार से उठ गयी

सन् १९२१ मे बेजवाडा की एक बडी स्त्रियो की सभा में मैंने अकेले खद्दर पहने एक लडकी देखी थी, जो सभा का संरक्षण कर रही थी, शान्ति स्थापित कर रही थी और बडी दृढतापूर्वक इधर उधर आ जा रही थी। सबसे पहले उसीने अपने जेवरात, कंकण, एक भारी सोने का हार दिये थे। "तुमने अपने माँ-बाप की आज्ञा ले ली है?" मैंने पूछा जब कि वह अपने जेवरात मुझे दे रही थी। उसने उत्तर दिया, "मेरे माता-पिता मुझे नहीं रोकते और मैं जैसा चाहती हूँ, वैसा करने देते है।" अन्नपूर्णा देवी अंग्रेजी खूब बोल लेती थीं। उसे बेथ्युन कालेज, कलकत्ता में शिक्षा मिली थी। स्त्रियों की उस बडी सभा में वह घूमती थी और चन्दे तथा जेवरात ले आती थी। उस समय से लगातार वह इस आन्दोलन में थी बल्कि उसने अपने को इसीलिए समर्पित

कर दिया था। कोकोनाडा की श्री स्वयं-सेविकाओं की वह कमांडर थी और उसके आश्चर्यजनक कार्यों को लोगों ने बड़े सम्मानपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है। अभाग्यवश वह इस समय अच्छे स्वास्थ्य में न थी। उसका विवाह श्रीयुत सगुन्ती वापी नाइडू बी० एस-सी० से हुई थी। कोयम्बटूर में एकाएक उसके देहान्त के कई दिनों बाद मुझे एक तार मिला कि वह इस संसार से चल बसी थी। और श्री नाइडू का एक पत्र भी मिला है जिससे ये उद्धरण मैं दे रहा हूँ —

"आखिर में जिसकी सम्भावना थी, वह घटना घटी ही। यह मेरा दुर्भाग्य है कि मेरा पहला पत्र आपके पास आपके विशेष . कार्यकर्ता और मेरे साथी अन्नपूर्णा की असामयिक मृत्यु का दुःखद समाचार लेकर पहुँच रहा है। आपके आखिरी मद्रास भ्रमण के दौरान में हम लोग जब श्रीनिवास ऐयंगर के घर पर आपसे मिलने गये थे, तो (मुझे अच्छी तरह याद है) आपने मुझसे उसके स्वास्थ्य के विषय में बताने गने को कहा था। और उसे दवा कराने के लिए अहमदाबाद भेजने की सलाह दी थी। लेकिन मैं उसके स्वास्थ्य के विषय में आपको चिन्तित करना नहीं चाहता था। आपने हम लोगों को जो सलाह दी थी। (मेरे लिए उसका सुन्दर सेवक होना, उसके लिये अपने स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना और साहस रखना) उसे हम निरन्तर पालन करते रहे। जो भी मनुष्य के लिये सम्भव है, मैंने सब किया, परन्तु व्यर्थ!

"उसके देहान्त से आपके असहयोग आन्दोलन का एक विशेष ह्रास है। उसने अपना सब कुछ देशदासिनी वस्तुएँ यहाँ तक कि यह

अँगूठी जो मैंने उसे विवाह से दी थी—शादी की सम्पत्ति सुन्दर वस्त्र, तडकीली-भडकीली आदतें, साहित्यिक रुचियाँ, स्वास्थ्य और अब अपना जीवन भी देश को समर्पित कर दिया।

"उसका आपमें जो अनन्त विश्वास था, उसीके कारण वह आपके स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमो का पालन करती रही। आपकी असतुलित फलों की खूराक से, जिसे वह ६ महीने धार्मिक रूप से सेवन करती रही, उसकी सुन्दर शारीरिक गठन गिरने लगी और फिर कभी ठीक न हो सकी।

"महात्माजी, मै इतना निर्दयी नहीं कि आपके ऊपर दोपारोपण कर रहा हूँ। मै तो एक बात कह रहा हूँ। एन० सी० ओ० आन्दोलन में प्रचार का कार्य करने में ही उसका ध्यान स्वास्थ्य को ओर से हट गया था। उसने अपनी गलती जानी, परन्तु तब काफी देर हो चुकी थी, जिससे उसे अपने प्राण देने पडे। आपने उसे एक खत मे लिखा था।" "मै सदा जानता था कि खद्दर प्रचार के लिये तुम बडे 'चाव से काम करोगी।" मेरे सयुक्त-राष्ट्र से वापस आने पर मेरे पैरो पडकर उसने सबसे पहली प्रार्थना मेरे खद्दर पहनने के लिए की। अपने सूट, कमीज, निकर तथा अन्य विदेशी वस्त्रों को मैं नहीं अपना सकता था। मुझे इतनी भी आज्ञा न थी कि उन्हें एलोर में अपने घर में रहने दूँ। अम-रीका के एक पत्र में उसने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार करने की तथा आजीवन खद्दर पहनने की प्रतिज्ञा का जिक्र किया था। उसे सफलता भी मिली। आधी प्रतिज्ञा का पालन अब मेरे लिये है। जब वह चमडे

और शरीर तक ही रह गयी थी और उसे मोटी खद्दर की साड़ी से बड़ा कष्ट हो रहा था, तब भी उसने खद्दर न छोड़ा। सौभाग्यवश उसकी अन्त्येष्टि क्रिया भी खद्दर में ही लपेटकर की गयी (जैसा कि हमारी जाति का रिवाज है)। सम्भवतः वह दूसरे लोक में भी इसका प्रचार करना चाहती थी।

"जब मैं अमेरिका जा रहा था, तब उसने मुझसे कहा था, आप चाहे मुझे भूल जायँ, लेकिन अपने देश को न भूलियेगा।" यदि वह अपने भयङ्कर रोग से अच्छा होना चाहती थी तो अपने देश की सेवा के लिये, अपने पति की सेवा के लिये नहीं। यही लक्ष्य था, जिसके बल पर हम लोगों के निराश हो जाने पर भी वह महीनों जीती रही। अन्त तक उसे आशा थी। आखिरी क्षण में भी ('इन्जेक्शन' से होश आने पर) वह डाक्टर को चुनौती देती रही कि वह बच जायगी, किसी भी दशा में न मरेगी। वह देश पर मरने के लिये जीवित रही और जीवित रहने के लिये मरी।

"हम चाहते हैं, उसने जो कुछ स्त्रियों पर लिखा है, रामकृष्ण के उपदेशों का बँगला से अनुवाद तथा उसके कुछ पत्रों को उचित प्रकाशन मिले।

"हमारा छोटा-सा कामो शहर ही, जो कोर्स की लम्बाई की याद दिलाता है, हमारी शेष आशा और आलाय का साधन है। वह सोचती थी वहां जाने से उसे विशेष स्वास्थ्य-परिवर्तन होगा, और हुआ भी पर उसके देहावसान के रूप में।

"आपकी ऐसी शिष्या न रही और मेरी ऐसी आदर्श संगिनी। मेरी अर्धाङ्गिनी ने मुझे शोक-ग्रसित निराश और वियोगी छोड़ दिया और उसकी कभी कभी पूर्ति नहीं हो सकती।"

इसमे सन्देह नही कि मेरा एक भक्त-शिष्या से कहीं बड़ा ह्रास हुआ है। मुझे भारतवर्ष भर में जिन पुत्रियों पर अधिकार का सौभाग्य प्राप्त है, उनमें से एक न रही, ऐसा मैं महसूस कर रहा हूँ। और वह इनमें से श्रेष्ठतम पुत्रियों मे से एक थी। वह कभी अपने विश्वास से न डिगी, और पारितोषिक अथवा प्रशंसा की आशा किये विना कार्य करती रही। मै चाहता हूँ कि बहुत सी पत्नियाँ अपनी पवित्रता और एकाग्र भक्ति से अपने पतियो पर वैसे ही अधिकार स्थापित करेंगी जैसी अन्नपूर्णा ने किया था। उन्होंने जो उलाहना, देश के लिए सेवा करने में अनपूर्णा के अपने प्राण अर्पण करने के वास्ते मुझे दी है, उसे मै पसन्द करता हूँ। मुझे सन्देह नहीं कि पूर्व इसके कि भारतवर्ष फिर पुरातन काल की भाँति, जैसा करोड़ो लोग विश्वास करते है, पवित्र और स्वतन्त्र हो। बहुत से युवक पुरुषो और स्त्रियों को इसका अनुकरण करना होगा और अपने प्राण समर्पित करना पड़ेंगे।

स्त्रियां और जवाहिरात

एक तामिल स्त्री डाक्टर ने एक पत्र और भेंट भेजी है, जिसका जिक्र इस खत में आया है। यह पत्र भेंट का महत्व बताता है और दूसरों के लिये उदाहरण का काम दे सकता है। मैं संक्षेप में नीचे इसे लिख रहा हूं, (समर्पण करने वाले, राज और स्थान का नाम छोड़ दे रहा हूँ।)

"कुछ पंक्तियां आपको यह बताने के लिए लिख रही हूं कि मैंने हीरे की अँगूठी और एक जोड़ी 'इयररिंग' जो १२ वर्ष पहले मुझे राजकुमार की उत्पत्ति के अवसर पर राज से मिली थी, का पार्सल भेजा है। मुझे यह जान कर बड़ा दुःख हुआ कि राजा का इसी स्थान से गुजरते होने पर भी आपको बुलाने का साहस न हुआ। मुझे पता चला कि ऐसा गवर्नमेंट के डर से हुआ। आप सोच सकते हैं, तब आपके जाने के बाद उन जवाहिरातों को जो मेरे साथ रहे थे, देखकर मेरे हृदय में कैसी भावनाएं उत्पन्न हुई होंगी। उन्हें देखकर मेरा जी गुस्से से भर गया और फिर यह गुस्सा लाखों भूखी जनता के प्रति सहानुभूति में परिवर्तित हो गया, जिनके विषय में यहां आप बोले थे। मैंने अपने से कहा, "क्या ये जवाहिरात गरीबों के पैसे से नहीं बने हैं? मुझे इन्हें अपने पास रखने का कौन अधिकार है? फिर मैंने इन्हें आपके पास भेज देने का निश्चय किया। आप इन्हें खादी के लिए प्रयोग कर सकते हैं, जो मेरे बक्स के कोने में पड़ रहने की अपेक्षा कहीं उत्तम उपयोग

है। एक मित्र ने उनका मूल्य २००) लगाया है, इसलिए उनकी उतने की बीमा की गयी है। मुझे आशा है कि परिस्थिति में ये आपके पास भेजे गए है, उन्हें जानकर कोई सज्जन और अधिक मूल्य देंगे। इस पत्र को आप जैसा चाहें, वैसा उपयोग करें।

जहाँ भय का कोई कारण न हो, वहाँ भी हमारे भीतर भय की कैसी कल्पना होती है, यह बडी विचित्रत बात है। बहुत से राजा ऐसे है, जिन्होंने खुलेआम और स्वेच्छा से खादी का समर्थन किया है। और इस प्रकार उन गरीबों के भी मसले पर भी जोर दिया है, जिनसे उन्हें अपनी सम्पति मिली है। इसमें सन्देह नहीं कि खादीका राजनैतिक महत्व है, परन्तु हम ऐसी दशा में कभी नही पहुँचे है कि गवर्नमेंट आसानी से उसे गैर-कानूनी घोषित कर दे। हर मनुष्य का भला चाहनेवाला आन्दोलन राजनैतिक रूप में लाया जा सकता है, लेकिन उस दशा मे भी भला चाहनेवाले रूप का बहिष्कार हो तो बड़े दु ख की बात होगी। यह भी सत्य है कि केवल यही ऐसे राजा नही, जो खादी का समर्थन करने और मेरे जैसे जनता के सेवक के प्रति उदारता प्रदर्शन करने से डरते हों। यह भी अच्छा है कि राजा द्वारा किये गये मेरे बहिष्कार से यह भेंट मिली। किन्तु मै चाहता हूँ कि जो बहनें मेरे इस लेख को पढ़ें, वे यह अनुभव करें कि दान करनेवाली इस स्त्री को अलग रखना जरूरी नही है, क्योंकि इससे उसको इस बात का मौका मिलता है कि भूखो मरनेवाले लाखो मनुष्यों के प्रति अपने कर्तव्य का वह अनुभव कर सके। बिलकुल साफ है कि जबतक बेकारी के कारण लाखों आदमी और औरते भूख से मरते रहेंगे, बहनों को कोई

अधिकार नहीं कि अपने शरीर के सजाने के लिए या सिर्फ अधिकार के ही लिए बहुमूल्य जवाहिरात का प्रयोग करें। यदि भारत की केवल सम्पन्न स्त्रियाँ ही सभी तड़कीली-भड़कीली सजावट छोड़कर खादी का प्रयोग करने लगें, तो उन्हीं से खादी आन्दोलन की धन की आवश्यकता पूर्ण हो सकती है। मैं उस नैतिक परिणाम की बात नहीं कह रहा हूं, जो भारत की धनी स्त्रियों का यह कदम राष्ट्र या भूखी जनता पर डालेगा।

स्त्री और आभूषण

एक अखबार में इस बात की कड़ी टीका की गयी है कि मैं जहां तहां स्त्रियों से जेवर इत्यादि भेंट करने की अपील करता हूँ और इस प्रकार दान में मिली चीजों को नीलाम कर देता हूं। वास्तव में, मैं तो यह पसन्द करूँगा, कि सभाओं में उपस्थित होनेवाली हजारों बहनें, अगर सारा नहीं तो अपना ज्यादा-से-ज्यादा जेवर उतार कर मुझे दे दें। इस देश में जहां करोड़ों आदमी पेट की ज्वाला से जल रहे हैं, अधभूखे रहते हैं, जहां लगभग ८० फी सैकड़ा लोगों को यथेष्ट पुष्टिकर भोजन नसीब नहीं होता, वहां आभूषणों का पहनना औरों को एक अपराध की तरह खटकता है। भारत में स्त्री के पास ऐसी नकद सम्पत्ति बहुत ही कम होती है, जिसे वह अपनी कह सके, जो आभूषण वह पहनती है उसके कहे तो जाते हैं पर उन्हें भी वह अपने स्वामी की अनुमति के बिना दे नहीं सकती, उसे देने का

साहस ही नहीं होता। एक उत्तम कार्य के निमित्त अपनी खास चीज का दान उसे ऊँचा उठा देता है। इसके अलावा अधिकतर यह आभूषण कलाविहीन ही होते है। कुछ तो निश्चय ही भद्दे और मैल भरनेवाले होते है। कडे, गले की भारी-भारी हँसलियाँ, सिरे के आभूषण और पहुँची से लेकर कुहनी तक चूडियो पर चूडियाँ, ऐसे ही गहनें हैं। सिर के आभूषण बालो को सँवारने के लिए नही, बल्कि उलझे-पुलझे बिना धुले और बहुधा बदबू मारते हुए बालो के शृगार के लिए ही वे पहने जाते है। मेरी राय में, कीमती गहने पहनने से देश को साफ ही नुकसान पहुँचता हैं। इन गहनो से मुल्क की भारी पूँजी रुक जाती है। या इससे भी खराब बात यह होती है कि यह पूँजी दिन-दिन कम होती चली जाती है। मेरा मत है कि आत्म-शुद्धि के इस आन्दोलन में स्त्री या पुरुष के आभूषण-दान से देश का स्पष्ट ही हित होता है। जो बहनें गहने देती है, वे राजी-खुशी से ही देती हैं। मेरी यह शर्त अवश्य रहती है कि जो आभूषण-दान कर दे वह फिर न बनवाया जाय। वास्तव मे बहनो ने मुझे आशीर्वाद दिया है कि मैंने उन्हें उन व्यर्थ की चीजों से छुटकारा दिला दिया, जिन्होने उन्हें गुलाम बना रखा था। और बहुत से पुरुषो ने भी मुझे धन्यवाद दिया है कि उनके घरो मे सादगी लाने का मैं एक साधन रहा हूँ।

सिंहाली स्त्रियों से

सिंहाली स्त्रियों की एक सभा में गांधीजी ने भारत के लाखों भूखे लोगों के विषय में कहा था —

'जब महेन्द्र लंका आये थे, तो आत्मिक या शारीरिक रूप से मातृ-भूमि की सन्तानें भूखी नहीं थीं। उस समय हमारा सितारा बुलन्दी पर था और तुम लोगों ने भी उस गौरव में भाग लिया था। आज वे भूखों मर रहे हैं और उन्हीं की ओर से मैं अपनी भिक्षा की झोली लेकर यहाँ आया हूँ। और अगर तुम अपने को उनसे अलग नहीं मानते, बल्कि उनसे सम्बन्ध स्थापित करने में गौरव अनुभव करते हो, तो तुम मुझे केवल अपना धन ही नहीं, बल्कि जेवरात भी दो जैसा कि और जगहों में बहनों ने किया है। जब मैं बहनों को जेवर से लदी हुई देखता हूँ, तो मेरी भूखी आँखें उनपर गौर से देखती हैं। और उनसे जेवरात माँगने में मेरा एक अलग उद्देश्य है कि उन्हें जेवरों के पीछे पागल होने के रोग से बचाऊँ। मैं जैसे आजादी के साथ और बहनों से व्यवहार करता हूँ, वैसे ही तुमसे पूछता हूँ, "वह कौन-सी चीज है जिसके लिए पुरुषों की अपेक्षा अपने को अधिक सजाती हो?" मेरा हृदय मुझसे ऐसा कहता है कि वे ऐसा पुरुषों को प्रसन्न करने के लिये करती हैं। तो मैं तुमसे कहता हूँ, यदि तुम संसार में कुछ करना चाहती हो तो पुरुषों को प्रसन्न करने के लिए अपने को सजाना छोड़ दो। अगर मैं स्त्री होता तो पुरुष के किसी भी ऐसे विचार के विरुद्ध जो स्त्री को अपना खिलौना

समझें, आवाज उठाता। बौद्धिक रूप से तुम्हारे दिलों में पहुँचने के लिए मैं स्त्री हो गया हूँ। अपनी स्त्री के प्रति मै जैसा व्यवहार करता रहा था, उसके विरुद्ध व्यवहार करने का जब तक निश्चय नही किया, मैं उसके दिल में नहीं पहुँच पाया। अतः मैने पति होने के कारण जो अधिकार अपने वश में कर रखे थे, छोड दिये और उसे उसके सारे अधिकार दे दिये। और आज तुम उसे वैसा ही सरल और सादा देखती हो जैसा मुझे। उसके शरीर पर कोई हार या बहुमूल्य वस्तु नहीं है। मैं तुम्हें भी उसी प्रकार करना चाहता हूँ। अपनी भक्त या भावनाओ के गुलाम मत बनो और न पुरुषों के ही। अपने को मत सजाओ और सुगन्धित वस्तुओं तथा 'लेवेंडर' इत्यादि का खरीदना छोड दो। यदि तुम्हें सच्ची सुगन्ध की चाह है तो अपने हृदय मे सुगन्ध उत्पन्न करो और फिर मनुष्य नही, मनुष्यता तुम से प्रसन्न होगी। वह तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। पुरुष स्त्री से उत्पन्न हुआ है। वह उसके मांस से अपना मांस, उसकी हड्डियों से अपनी हड्डियाँ पाता है। तुम अपनी स्थिति को पहचानो और फिर अपना सन्देश दो।

इसके पश्चात् गान्धीजी ने उनके सामने सीता की पतिव्रता का उदाहरण रखा और मिस श्लोसिन की कहानी बतायी, जिन्होंने अपनी पतिव्रता और निर्भीकता के बल से दक्षिणी अफ्रीका में (पठानों, डाकुओ और सदिग्ध चरित्रवाले लोगों को मिलाकर) हजारो को सुसज्जित और संगठित किया था और अन्त में यह बताया कि सच्चा सम्मान किसमें है।

तुम्हें सत्य है खेतो और बगीचों में काम करनेवाली तुम्हारी बहनों की कैसी भयानक अवस्था है? उन्हें अपनी बहन जान कर उनके बीच में जाओ और अपने स्वास्थ्य तथा सफाई के ज्ञान से उनकी सेवा करो। ऐसा समझो कि तुम्हारा गौरव उनकी सेवा में है और दया सेवा का कार्य तुम्हारे निकट नहीं है, ऐसे लोग हैं जो गुण्डे हैं, पीनेवाले जो समाज के लिए घातक हैं। उनके बीच में निर्भीकता-पूर्वक जाओ और उनकी बुरी आदतें दूर करो। जिस प्रकार 'मुक्ति-सेना' का कुछ लड़कियां चोरों, गुण्डों, जुआड़ियों और मद्यपों की गुफाओं में जाकर उनके पैरों पड़ती हैं और अपने नाना प्रकार के यत्नों से उन्हें ठीक रास्ते पर लाती हैं। इस प्रकार की सेवा तुम्हारे जेवरों और बहुमूल्य वस्त्रों की अपेक्षा अधिक सुसज्जित करेगा। फिर तुम जो रुपया बचाओगी और गरीबों में बांटोगी, मैं उसका सरपाक बनूंगा।

मेरी प्रार्थना है कि मेरा यह सन्देश तुम्हारे हृदय में अपना स्थान बनाये।

निश्चित त्याग करो

गांधीजी के हरिजन दौरे के दरमियान मद्रास मे उनके हस्ताक्षर के लिए एक लडकी ने ५) का नोट दिया ।

गांधीजी ने कहा, "नहीं एक कंकण ।" उस लडकी ने अपने दोनों कंकण उतार डाले और ५)का नोट भी दिया ।

गांधीजी ने पूछा, "क्या इसे देने के लिए तुमने अपने माँ-बाप की आज्ञा ले ली है ? अगर तुम चाहो, तो अपने कंकण ले लो ।" लडकी ने यह कह कर कि उसे वह निशानी के रूप में रखेगी, एक ले लिया ।

"क्या तुम अपने माँ-बाप से नया कंकण नही माँगोगी ?"

लडकी ने दृढतापूर्वक उत्तर दिया, 'नहीं' ।

'तो मुझे ले जाने दो' और लडकी मुस्कराती हुई चली गयी ।

एक दूसरी लडकी ने कहा 'बिना अपने पिता की आज्ञा के मै कोई वस्तु कैसे दूँ ?'

'नहीं देना चाहिए, परन्तु क्या तुम्हारे पिता स्वयं सारी स्वतन्त्रता का उपयोग करते है, तुम्हें नहीं देते ?'

एक नवविवाहिता लडकी ने कहा, "मै आपको रुपया दूँगी, परन्तु अपने जेवरात नही, क्योंकि यदि कोई जेवर दूँ तो निश्चय ही उसकी जगह दूसरा मिल जायगा जो कि आप न पसन्द करेंगे। मै अपने जेवरात तभी दूँगी, जब हमेशा के लिए उनसे अलग हो सकूँ ।"

"तुम ठीक कहती हो, मै तुम्हारा रुपया नही चाहता। रुपया तो

तुम्हारे बाप से पा सकता है, तुमसे तो जेवर ही लेना चाहता हूँ। और शर्त यह है कि उनकी जगह दूसरे न आयें। मैं शांतिपूर्वक उस दिन की प्रतीक्षा करूँगा, जब तुम स्वयं आकर मेरे हाथों में उन्हें रख दोगी ?"

विजगापट्टम में स्त्रियों से त्याग करने के लिये जो शब्द कहे थे, वे विशेष गम्भीर भावनाओं से पूर्ण थे। उन्होंने कहा —

'हरिजन का प्रश्न आग है। आग में जितना भी घी डालो, उतना ही और चाहती है। इसी प्रकार इस कार्य के लिए जितना ही दो, उतना ही और चाहिए। जो इसके लिए देते हैं, वे लाभ उठाते हैं, उनकी हानि नहीं होती। और जो नहीं देते वे, हारते हैं। देने से तुम्हें यश मिलता है। और न देने से तुम अपने को ही खोती हो। क्योंकि युगों से सवर्ण हिन्दू हरिजनों को दबाते चले आये हैं और अब यदि हमारे बुरे दिन आये हैं तो हरिजनों के प्रति किया गया व्यवहार इसके लिए छोटा कारण नहीं है, यह मेरा विश्वास है। इसलिए भारत की स्त्रियों से मैं इस अछूत के भूत को अपने हृदय से निकाल भगाने को कहता हूँ। यह गलत है। पाप है कि हम कुछ लोगों को अपने से नीचा समझें। भगवान की धरती पर कोई ऊँचा-नीचा नहीं है। हम सब उसी के प्राणी हैं, और जिस प्रकार मां-बाप की निगाह में सभी बच्चे समान होते हैं, उसी प्रकार ईश्वर की आंखों में सभी प्राणी अवश्य समान होंगे। इस-लिये मैं कहता हूँ कि मेरे कथन में विश्वास करो कि धर्म में छुआछूत के लिये कोई समर्थन नहीं। इसलिये मैं कहता हूँ, अपने पास के हरिजनों को अपने हृदय में जगह दो अपने घरों में हरिजन बच्चों का स्वागत

करो। हरिजनों के घर में जाओ, उनकी देखरेख करो और हरिजन स्त्रियों से अपनी बहनों की तरह बात चीत करो।

यह हरिजनों का प्रश्न विशेषकर भारत की स्त्रियों के लिए है। मुझे आशा है कि तुम इस स्थान की हिन्दू-स्त्रियाँ, अपना कर्तव्य करोगी। मैं आशा करता हूँ कि तुममें से जो अंशतः या पूर्णरूप से अपने जेवर देना चाहें, देंगी। अगर तुम कोई भी चीज दो, तो उसकी जगह दूसरी न लेना चाहिए। मैं चाहता हूँ, तुम स्वयं व्यक्तिगत रूप से अनुभव करो कि तुमने इस काम के लिए कुछ दिया है जो रुपया या नोट से नहीं कर सकती, क्योंकि वे तुम्हें माँ-बाप से या पति से मिलते हैं। परन्तु जेवर तुम्हारी अपनी सम्पत्ति है। जब तुम बिना दूसरा लेने की इच्छा के अपने जेवर मुझे देती हो तो यह निश्चित रूप से तुम्हारा निजी त्याग है। तुममें से जिन्होंने मेरे सन्देह का भाव समझ लिया है, मैं चाहता हूँ कि वे ऐसा निश्चित त्याग करें।'

स्त्रियों का सच्चा आभूषण

हरिजन दौरे में मैसूर की एक सभा में गांधीजी ने कहा :—

"स्त्री का सच्चा आभूषण उसका चरित्र है। धातु और पत्थर कभी सच्चे आभूषण नहीं हो सकते। अपने गुणों के कारण सीता और दमयन्ती हमारे लिये अभी तक पवित्र हैं, (यदि पहनती भी रही हों तो भी) अपने आभूषणों द्वारा नहीं। तुम्हारे जेवर माँगने में मेरा और भी उद्देश्य है। बहुत सी बहनों ने कहा है कि अपने जेवरों से अलग होने पर उन्हें और आनन्द मिलता है।" दूसरी सभा के पहले उन्होंने कहा, "मैंने इसे कई प्रकारसे सुन्दर कार्य समझा और कहा है। जबतक अपनी सम्पत्तिका पर्याप्त अंश गरीबों और असहायों को न दे दे, किसी भी स्त्री को धन रखने का अधिकार नहीं है। यह एक धार्मिक और सामाजिक अनुग्रह है, और भगवद्गीता में इसे त्याग कहा गया है। जो त्याग नहीं करता, वह चोर है। गीता ने कई प्रकार के त्याग कहे हैं, और गरीबों तथा असहायों की सहायता से बढ़कर कौन सा त्याग हो सकता है? हमारे लिए तो नीच-ऊँच का भेद भूल जाने से तथा सभी मनुष्यों को एक-सा समझने से बढ़कर कोई त्याग नहीं है। मैं भारत की स्त्रियों को बता देना चाहता हूँ कि शरीर को धातु और पत्थरों से लादने से सजावट नहीं होती बल्कि हृदय को पवित्र करने तथा आत्मा का सौंदर्य बढ़ाने में।"

एक अन्य अवसर पर उन्होंने अन्नपूर्णा देवी के त्याग का उदाहरण

दिया जो सेवा और त्याग की मिसाल अपनी बहनों के सामने रखने में सबसे प्रथम थीं, और बोले, "जिस दिन वे मुझसे मिलीं, उसी दिन अपने सारे जेवर उतार डाले। स्त्रियों ने यह दृश्य देखा, वे आश्चर्य में पड गयीं कि क्या हो रहा था और फिर जेवरों की वर्षा होने लगी। क्या तुम्हारा यह विचार है कि जेवरों के उतार डालने पर वे कम सुन्दर लगती थीं? मुझे तो और अधिक सुन्दर मालूम पडती थीं। अँग्रेजी में एक कहावत है, "सुन्दर वह है जो सुन्दर कार्य करे।"

कौमुदी का परित्याग

अपने अनुभव पूर्ण व्यस्त जीवन में मुझे कई हृदय द्रावक दृश्य देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। परन्तु यह लिखते समय मुझे हरिजनों के प्रश्न से अधिक करुण दृश्य नहीं याद आ रहा है। बादागारा में मैंने अभी अभी स्त्रियों से जेवरात भेंट करने के लिये अपील कर चुका था। उन भेंटों को व्याख्यान के बाद में बेंच रहा था, कि कौमुदी जो एक १६ साल की लड़की थी, धीरे से प्लेटफार्म तक आयी। उसने अपना एक कंकण उतारा और मेरा हस्ताक्षर माँगा। मैं उसके लिए तैयारी ही कर रहा था कि दूसरा कंकण भी निकल आया। हर हाथ में एक-ही-एक थे। मैंने कहा, "तुम्हें दोनों देने की आवश्यकता नहीं। मैं एक ही से हस्ताक्षर दे दूँगा।"

उसने अपने सोने के हार से मेरी बात का उत्तर दिया। यह कोई साधारण कार्य न था। इसे लम्बे बालों के प्लेट में अलग करना था। किन्तु मालदार लड़की जैसी होती है, कौमुदी को हजारों आदमियों और औरतों की आश्चर्य-भरी सभा में ऐसा करने में कोई झूठी लज्जा नहीं आयी। "परन्तु तुमने अपने माँ-बाप की आज्ञा ले ली है?" मैंने पूछा। कोई उत्तर नहीं मिला। उसने अभी तक अपना त्याग पूर्ण नहीं किया था। उनके हाथ स्वतः कानों पर पहुँचे और जनता की गूँजती हुई आवाज के बीच में उसने अपने बेशकीमती 'इयररिंग' कानों से निकाल लिये। (जनता की हर्षध्वनि अब रुक नहीं सकती थी।) मैंने पूछा

कि क्या उसे ऐसे त्याग के लिये माँ-बाप की सम्मति मिल गई थी। इसके पहले कि उस शर्मीली लड़की से मुझे कोई उत्तर मिले, मुझे किसी ने बताया कि उसके पिता उस सभा मे थे और नीलाम की चीजो के बेचने मे सहायता कर रहे थे और वे अच्छे कामो के लिए वैसे ही उदार थे जैसे उनकी लडकी। मैंने कौमुदी को याद दिलाया कि इनकी जगह नये जेवर न लिये जायँ और उसने दृढ़ता पूर्वक शर्त मान ली। उसे अपने हस्ताक्षर देते समय मै उस पर यह नोट देने से अपने को न रोक सका, "तुमने जो जेवरात उतारकर अलग कर दिये हैं, तुम्हारा त्याग उनसे कही सुन्दर आभूषण है।" ईश्वर करे उसका यह त्याग सच्ची हरिजन-सेविका होने का उद्गार हो।

कौमुदी का महत्त्वपूर्ण निर्णय

गांधीजी ने एक सोलह साल की मलाबारी लड़की, कौमुदी के त्याग के विषय में लिखा है। कालीकट में गांधीजी के ठहरने के आखिरी दिन वह अपने पिता के साथ उनसे मिलने आयी। मैं बागादारा न जाने के कारण, मैंने कौमुदी को प्रथम बार देखा। इसमें कोई दिखावा न था। वह सज्जनतापूर्वक बात करती थी और गम्भीर थी। उसने इंटरमीडिएट तक की शिक्षा पायी थी और वार्तालाप ठीक से समझ लेती थी। गांधीजी उसके त्याग के विषय में और जानना चाहते थे। वह यह जानना चाहते थे कि वह सभा में यह त्याग करने का निश्चय करके आयी थी, या वहीं सभा में ही ऐसा निश्चय किया था।

उसके पिता बोले, घर ही पर उसने ऐसा निर्णय किया था और उसे हम लोगों की सम्मति मिल गयी थी।

"परन्तु क्या उसकी माँ उसको बिना जेवरों के देखकर दुःखी न होगी।"

"वह दुःखी होगी पर मेरा विश्वास है कि फिर जेवर पहनने को विवश न करेंगी।"

"परन्तु कुछ समय बाद जब तुम्हारा विवाह होगा तो तुम्हारे पति तुम्हें बिना जेवर के देखना शायद ही पसन्द करें। तब तुम क्या करोगी? मेरे सामने नैतिक कठिनाई है। मैंने उस लेख में लिखा है कि तुम फिर

कभी जेवर न पहनोगी। अगर तुम इसके लिए प्रस्तुत नहीं हो तो मुझे लेख के इस अंश को बदलना पड़ेगा या तुम्हें अपने पति का घोर विरोध करना पड़ेगा। तुम एक मलाबारी लड़की कर सको या तुम्हें ऐसा पति चुनना होगा जो तुम्हें बिना जेवरों के ही देखने में सन्तुष्ट रहे। स्पष्ट करो, तुम क्या महसूस कर रही हो।"

कौमुदी ने गाँधीजी का पूर्ण उद्देश्य समझा। उसके सामने एक बड़ा पेचीदा प्रश्न था। उसे एक महत्वपूर्ण निर्णय करना था। कुछ समय तक विचार करने के पश्चात् उसने एक ही वाक्य कहा, "मैं ऐसा पति चुनूँगी, जो मुझे जेवर पहनने को विवश नहीं करेगा।"

गांधीजी की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। मैं अन्नपूर्णा को जानता हूँ। वह विवाहिता थी, फिर भी उसने सभी जेवरात छोड़ दिये थे। और उसने जीवन-भर अपने व्रत का पालन किया था। अब तुम मिली हो। उसके बाद स्त्रियों से कौमुदी के त्याग की चर्चा करते वे कभी नहीं थकते थे।

कौमुदी का त्याग

हरिजन-सेवक के गतांक में गांधीजी उसी मलाबारी पोरगी के आभूषण-संन्यास के विषय में एक सुन्दर लेख लिख चुके हैं। कालीकट से जिस दिन हम लोग चलनेवाले थे। उस दिन कौमुदी अपने पिता के साथ गांधीजी का दर्शन करने आयी, बड़गरा में बापू के साथ मैं नहीं था, इससे मैंने पहले ही बार कौमुदी बहन को देखा। छल-कपट तो वह जानती ही नहीं थी। उसने बड़ी नम्रता से बात की। वह मितभाषिणी थी। इन्टरमीडिएट तक वह अंग्रेजी पढ़ी है। बातचीत अच्छी तरह समझ लेती है। उसके त्याग के विषय में गांधीजी और अधिक जानना चाहते थे। उन्होंने उससे पूछा—क्या तू घर से ही आभूषण त्याग का निश्चय करके चली थी ? या उसी क्षण वहीं सभा में यह निर्णय कर लिया था ?"

कौमुदी के पिता ने जवाब दिया, "घर से ही यह निश्चय करके आयी थी। हम लोगों से इसने पूछ लिया था।"

"पर यह तो बता, तेरी मां तुझे इस प्रकार आभूषण-विहीन देखकर नाराज तो नहीं हुई ?"

"नाराज भले हों, पर मुझे विश्वास है कि मेरी माता गहने पहनने के लिए मुझे कभी नहीं बाध्य करेंगी।"

"लेकिन विवाह तो अब होगा ही, तब तेरे पति को शायद तेरा यह आभूषण-संन्यास अच्छा न लगे। उस अवस्था में तू क्या करेगी ? मेरे

सामने एक नैतिक कठिनाई है। तेरे इस आभूषण-त्याग पर मैंने "हरिजन" के लिए एक लेख लिखा है। मैंने उसमें लिखा है कि अब कौमुदी कभी आभूषण न पहनेगी। अगर तू ऐसा करने को तैयार नहीं है, तो उस लेख का वह अंश मैं बदल दूँगा। दो बातें हैं—या तो अपने भावी पति की इस इच्छा का तुझे सामना करना पड़ेगा। एक मलाबारी बाला के लिये यह कठिन नहीं है। या फिर तुझे अपने लिए ऐसा वर ढूँढना होगा, जो तेरे आभूषण-संन्यास का विरोधी न हो। स्पष्ट बात जो हो, मुझसे कह दे।"

कौमुदी ने कुछ देर तक गांधीजी के शब्दो को सुन कर मन में गुना। बात बड़ी थी। उसे उसी क्षण निश्चय करना था थोड़ी देर सोच-विचार कर उसने केवल एक वाक्य कहा—हाँ, मैं ऐसे ही वर को पसंद करूँगी जो मुझे गहने पहनने के लिए बाध्य न करेगा।"

गांधीजी की आँखें डबडबा आयीं। उन्होंने कहा—"अबतक अन्न-पूर्णा को ही मैंने ऐसा पाया था। उसका विवाह हो चुका था, फिर भी उसने अपने त्याग के अनन्तर आभूषणों का कभी स्पर्श तक नही किया। अन्तकाल तक उसने अपना वचन निभाया। आज मैंने कौमुदी तुझे पाया।" उस दिन से जिस किसी महिला सभा में गांधीजी जाते हैं, वहाँ कौमुदी बहन के आभूषण-संन्यास का बखान करते वह कभी थकते ही नहीं।

महिलाएँ और अस्पृश्यता

गांधीजी के हरिजन दौरे के दर्मियान कई सभाओं के व्याख्यानों से उद्धृत किये गये टुकड़े —

बिलासपुर में

बहनो, मैं चाहता हूँ कि बिलासपुर में हरिजनों के लिए जितना दे सको दो। तुमने अपने मान-पत्र में पूछा है कि तुम हरिजनों की सेवा किस प्रकार कर सकती हो? सबसे पहले मैं चाहता हूँ कि अपने दिल से अस्पृश्यता को जड़ से मिटा डालो और हरिजन-लड़कों और लड़कियों की वैसी ही सेवा करो जैसी अपनों की। तुम्हें चाहिये कि उन्हें अपने सम्बन्धियों, भाइयों, बहनों एवं एक ही भारत माँ की सन्तानों की भाँति स्नेह करो। मैंने त्याग और सेवा की सजीव मूर्ति की भाँति स्त्री-उपासना की है। प्रकृति ने तुम्हें जो निस्वार्थ त्याग की भावना दी है उसमें पुरुष कभी तुम्हारी समता नहीं कर सकता। स्त्री का हृदय बहुत नम्र होता है, जो दुःख को देख कर पिघल जाता है। यदि तुम्हारा हृदय हरिजनों का दुःख देखकर द्रवित हो जाता है और तुम उसे छोटे-बड़े के भेद-भाव के साथ मिटा दो, तो हिन्दुत्व पवित्र हो जाय और आत्मिक विकास का जोर काफी बढ़ जाय। अन्त में इसका अर्थ सारे भारत वासी ३५ करोड़ जनता का भला होगा। और सारी मनुष्य जाति के पाचवें हिस्से के पवित्र होने से सारी मानवता पर बहुत उत्तम प्रतिक्रिया होगी। इस आन्दोलन में ऐसे दूर ले जाने वाले परिणाम हैं। यह एक बड़ा आन्दोलन है

आत्म-पवित्रता का। मैं आशा करता हूँ कि तुम पूर्णरूप से इसमें अपना भाग लोगी।

दिल्ली में

ईश्वर जो सभी प्राणियों का कर्ता है, सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है। यदि उसे नीच-ऊँच में कोई भेद-भाव होता तो उनमें बाह्य अन्तर होता। उदाहरण के लिए जैसे हाथी और चींटी में होती है। परन्तु उसने सभी मनुष्यो को एकता-रूप और एक सी ही स्वाभाविक आवश्यकताएँ दी है। यदि तुम हरिजनो को स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवा के कारण अछूत समझते हो, तो कौन माँ अपने बच्चे के लिए ऐसा नही करती? हरिजनों को, जो समाज के सबसे उपयोगी सेवक है, अछूत और जाति से वहिष्कृत समझना अन्याय की हद है। मैं हिन्दू-बहनो के भीतर इस पाप के विषय में चेतना जाग्रत करने के लिए भ्रमण कर रहा हूँ। हम किसी भी मनुष्य को अपनेसे छोटा समझें, यह तो कभी अच्छा काम नहीं हो सकता। हम सब उस ईश्वर के उपासक हैं, जिसे विभिन्न नामो से हम पूजते हैं। अतएव हम अपनी एकता का अनुभव करें और अछूत के साथ-साथ मनुष्यो के बीच ऊँच-नीच का भेद-भाव भी छोड दें।

मद्रास में

यहाँ मैं तुमसे एक माँग करने आया हूँ। यह बिलकुल भूल जाओ कुछ लोग छोटे और कुछ बडे हैं। यह भी भूल जाओ कि कुछ स्पृश्य

और कुछ अस्पृश्य हैं। मैं जानता हूँ कि मेरी ही भाँति तुम सब ईश्वर में विश्वास करते हो और पुरुष-पुरुष और स्त्री-स्त्री के बीच में भेदभाव करने तक की क्रूरता भगवान् में नहीं हो सकती। यह अनृत हिन्दुत्व पर सबसे बड़ा धब्बा है और मैं यह कहने से नहीं हिचकता कि यदि यह रह गया, तो हिन्दुत्व समाप्त हो जायगा। यदि कोई ईश्वर के लिए मनुष्य की भाषा का उपयोग करे तो ईश्वर हमारे साथ बहुत शान्त रहा है। परन्तु मुझे यह मानने में हिचक नहीं कि भारत में हिन्दू लोग जो यह अत्याचार करते रहे हैं, उसे देखकर उसका धैर्य भी टूट जायगा।

बङ्गलोर में

जब हम किसी मनुष्य को अपने से नीचा समझें, तो हमारे भीतर बहुत बड़ी बुराई है। अगर यह बुराई रह गई, तो हमें ही खा डालेगी। एक भी हिन्दू तपस्या करने तक को नहीं रह जायगा और यह हमारे लिए उचित होगा। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक यही चेतावनी देने के लिए दौरा कर रहा हूँ। इसलिए तुम हरिजनों को सगा भाई बहन समझने लगो, तो बहुत बड़ा कार्य होगा।

कुछ हरिजन बस्तियां देखने के बाद, जो मैसूर की अपेक्षा यहाँ बुरी हालत में थीं, उन्होंने दूसरी सभा में कहा —

मेरा इस कहावत में विश्वास है कि हमें दूसरों के प्रति ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा हम उनसे अपने प्रति आशा करते हैं। जिन आवासों को हमने अभी देखा है, वे मनुष्यों के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त [illegible]

है। रहने का एक ऐसा भी धरातल है, जहाँ मनुष्यता को धक्का पहुँचाये विना हम आ सकते। ये वस्तियाँ उससे भी नीची कोटि की है। मैं चाहता हूँ कि उस स्थान पर एक सुन्दर स्थान कहा जाता है, यह धब्बा सबसे पहले मिटाया जाय। मैने सुना है कि इन भाइयों और बहनों को रहने को अच्छी जगह देने का प्रवन्ध पहले से हो रहा है। परन्तु तुम मुझसे सहमत होगे कि ऐसा करने में समय का बहुत बड़ा हाथ है। लोगो को ऐसा कहने का अवसर न हो कि ये वस्तियाँ (जो तुम बनवा रहे हो) देर से बनीं।

महिलाओं से दो बातें

बनारस की स्त्री-सभा में, जो गांधीजी के हरिजन दौरे का आखिरी व्याख्यान था, उन्होंने अस्पृश्यता के विषय में अपनी स्थिति इस प्रकार प्रकट की :—

"यह बड़ी दु:खद बात है कि आज हमारे लिए धर्म का अर्थ यही है कि हम किसी को ऊँचा नीचा समझें और उनके खाने-पीने पर रोक थाम करें। मैं कहना चाहता हूँ कि इससे बड़ी कोई भूल नहीं हो सकती। जन्म और कुछ रीति रिवाज किसी को ऊँचा या नीचा नहीं बनाते, बल्कि चरित्र ही के बल से कोई ऊँचा या नीचा हो सकता है। ईश्वर ने किसी को ऊँच नीच के निशान के साथ नहीं पैदा किया है और कोई भी धार्मिक ग्रन्थ जो जन्म से किसी मनुष्य की ऊँचाई-निचाई का निर्णय करता हो, उसमें हम विश्वास नहीं कर सकते। वह तो ईश्वर और सत्य का जो ईश्वर है, अविश्वास है। ईश्वर जो सत्य और न्याय का अवतार है, ऐसे किसी भी धर्म या नियम को कभी स्वीकार नहीं कर सकता जो हमारी पाँचवीं आबादी को अछूत माने। अतएव मैं चाहता हूँ कि आप अस्पृश्यता को छोड़ दो। वैसे गन्दे काम करने से अस्पृश्यता हो [illegible] ही। यह हम सभी के लिए लागू है। लेकिन जैसे ही हम नहाकर अपनी सफाई कर डालें, वैसे ही हम से अस्पृश्यता नहीं रह जाती। परन्तु कोई कर्म या व्यवहार किसी मनुष्य को सदा के लिए अस्पृश्य नहीं कर सकता।

हममें से सभी कुछ कमवेश पापी है। और सभी धार्मिक पुस्तकें (गीता, भागवत, तुलसी-रामायण इत्यादि) कहती है कि जो भी उस भगवान की शरण में जाता है, उसका नाम लेता है वह पाप से मुक्ति पा जाता है। यह नियम सभी के लिए है।

इस प्रश्न के लिए एक और परख मैं बता रहा हूँ। हर मनुष्य या उससे छोटी जाति मे कुछ विभाजक चिह्न हैं, जिससे मनुष्य को पशु से और कुत्ते को गाय से भिन्न माना जाता है। क्या अछूतो में भी कोई इस प्रकार का चिह्न है कि वे अछूत समझे जॉय ? वे उतने ही मानवी है, जितने हम में से काई और। मनुष्यो से निम्न-कोटि के सभी प्राणियों को हम अछूत नहीं मानते। फिर यह पैशाचिक अन्याय कहाँ से और कैसे आता है ? यह धर्म नहीं है, बल्कि घोर अधर्म है। मैं चाहता हूँ कि तुम पाप छोड दो (यदि तुम्हारे भीतर यह हो)।

सदियो के इस पाप को मिटाने का एक ही मार्ग है। तुम हरिजनों की बस्तियो में जाओ, उनके बच्चो को अपने बच्चों की तरह अपनी छाती से लगाओ, उनकी भलाई में दिलचस्पी लो। यह मालूम करो कि उन्हें खाने-भर को भोजन, पीने को स्वच्छ पानी मिलता है या नही, उन्हें रोशनी और हवा जिसे तुम अपना अधिकार समझकर उपयोग करते हो, उन्हें भी मिलता है या नहीं। दूसरा तरीका है, कातने का काम शुरू करो और खादी की प्रतिज्ञा लो, जिससे इन लाखो दवाये गये लोगो को सहायता मिलती है। कातने के काम से तुममे और उनमे कुछ समता आयेगी और जो खादी का हर गज तुम पहनोगे, उससे इन हरिजनो

और गरीबों को कुछ पैसा मिलेगा। आखिरी बात यह है कि हरिजन फण्ड को चन्दा दो, जिसका उद्देश्य इन हरिजनों की भलाई से है।

पर्दे को फाड़ फेंको

जब कभी मैं बंगाल, बिहार और संयुक्त-प्रान्त में गया हूं मैंने वहाँ पर्दे की प्रथा का और जगहों से अधिक कड़ा पालन देखा है। मगर जब कि मैंने दरभंगे में, रात के समय, शोरगुल से दूर और असंख्य भीड़ से अलग, एक सभा में भाषण किया तो मेरे सामने पुरुष थे और मेरे पीछे पर्दे की आड़ में औरतें थीं, जिनका पता मुझे तबतक नहीं चला जबतक कि मुझे बतलाया नहीं गया। यह समारोह था एक अनाथालय को खोलने के सम्बन्ध में, मगर मुझे पर्दे के भीतर की महिलाओं से भाषण करने को कहा गया। उस पर्दे को देखकर जिसके पीछे मेरी श्रोता-मण्डली थी, जिनकी संख्या का मुझे कुछ पता न था, मुझे शोक हुआ। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ और मेरी जिल्लत हुई। मैंने पुरुषों की ओर से पर्दे को बचाये रखकर हिन्दुस्तान की स्त्रियों पर किये जाते हुए अत्याचार पर विचार किया। चाहे किसी जमाने में इसका कुछ भी मतलब न रहा

हो, मगर अब तो यह पाशविक प्रथा बिल्कुल बेकार है। इससे देश को असंख्य हानि हो रही है। आखिरी १० वर्षों में हमने जो कुछ शिक्षा पायी है, हम पर उसका कुछ भी असर न पड़ा-सा मालूम होता है, क्योंकि मैं देखता हूँ कि शिक्षित परिवारों में भी पर्दा बचा हुआ है और इस लिए नहीं कि वे शिक्षित पुरुष इसमें विश्वास करते हैं, किन्तु वे इसकी मर्दानगी से विरोध न करेंगे और इसे एकबारगी ही मार न भगावेंगे। स्त्रियों की सैकड़ों सभाओं में हजारों स्त्रियों से मुझे बोलने का सुअवसर मिला है, मगर वहाँ के शोर-गुल के कारण सभा में आयी हुई स्त्रियों से बोल कर कुछ प्रभाव डालना असम्भव हो जाता है। जब तक वे अपने आँगन और घर के पिंजड़े में बन्द हैं, उनसे और किसी अच्छी बात की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए जब वे अपने को एक बड़े कमरे में जमा पाती हैं, उनसे आशा की जाती है कि वे व्याख्याता का भाषण सुनें। जब शान्ति छा जाती है, तब भी रोजमर्रे की साधारण बातों में भी उनकी रुचि पैदा करना कठिन मालूम पड़ता है, क्योंकि उन्हें कभी स्वतन्त्रता की ताजी हवा का साँस लेने तो दिया नहीं गया। मैं जानता हूँ कि यह चित्र कुछ बढ़ा कर खींचा गया है। इन हजारों बहनों की जिनसे मुझे बोलने का अवसर दिया जाता है, बहुत ऊँची सुसंस्कृति को मैं खूब जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि पुरुषों की स्थिति तक वे चढ़ आ सकती हैं। मुझे यह भी मालूम है कि उन्हें बाहर आने का भी अवसर मिलता है। मगर यह पुरुषों के लिए तारीफ की बात नहीं है। सवाल यह है कि वे और बाहर क्यों

नहीं आया है ? हमारी स्त्रियों को भी वह स्वतन्त्रता क्यों नहीं प्राप्त है, जो पुरुष भोगते हैं।

पवित्रता कुछ पर्दे की आड़ में रखने से ही नहीं पनपती बाहर से यह लादी नहीं जा सकती। पर्दे की दीवार से उनकी रक्षा नहीं की जा सकती। उसे तो भीतर से ही पैदा होना होगा। और अगर उसका कुछ मूल्य होना है, वह सभी प्रकार के बिना बुलाये आकर्षणों का सामना करने योग्य होनी चाहिये। वह तो सीता की पवित्रता सी उन्नत होगी। अगर वह पुरुषों की नजर को सहन न कर सके, तो उसे बहुत ही साधारण चीज कहना होगा। मर्दों को अगर मर्द होना है, तो उन्हें इस लायक बनाना होगा कि अपनी औरतों का वे वैसा ही विश्वास कर सकें जैसा कि औरतों को उनका करना पड़ता है। हमारे एक अंग में पूरा या अधूरा ही सही, मगर लकवा मारे हुए न होना चाहिए। राम का कहीं ठिकाना न लगता, अगर सीता भी उन्हीं जैसी स्वतन्त्र और स्वाधीन नहीं होतीं मगर स्वतन्त्रता के लिहाज से द्रौपदी का उदाहरण शायद ज्यादे माकूल होगा। सीता कोमलता का अवतार थीं, वह नाजुक फूल थीं, द्रौपदी थीं विशाल वट वृक्ष, अपनी अदम्य इच्छा के आगे भीम को उसने झुका दिया। उसके लिए भीम भयंकर थे, मगर द्रौपदी के सामने वह भी शान्त गाय बन जाते थे, पाण्डवों में से किसी की भी रक्षा की उसे जरूरत न थी। हिन्दुस्तान के स्त्रीत्व के विकास का आज हम विरोध करके हिन्दुस्तान के पुरुषत्व के विकास को रोक रहे हैं। अपनी स्त्रियों और अछूतों के प्रति हम जो कमाई करते हैं, वही

हजार गुना बढ़कर हमारे आगे आती है। हमारी निर्बलता, अनिश्चयता, संकीर्णता और बेबस का यह एक कारण है। इसलिए हम एक बार महान प्रयत्न करके इस पर्दे को फाड फेकें।

पर्दे की कुप्रथा

बिहार के बहुत से प्रभावशाली पुरुषों और लगभग उतनी ही स्त्रियों द्वारा हस्ताक्षर की गयी एक अपील, पर्दे को बिलकुल समाप्त कर देने के लिए अभी अभी निकाली गयी है। पचास से अधिक स्त्रियों ने उसपर हस्ताक्षर किये हैं। यही प्रकट करता है कि यदि जोरदार काम किया गया, तो बिहार से पर्दा भूतकाल की चीज हो जायगी। यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि जिन स्त्रियों ने उस पर हस्ताक्षर किये हैं वे पश्चिमी रोशनी से प्रभावित नहीं हैं, बल्कि कट्टर हिन्दू। यह निश्चित रूप से तय करता है —

"हम लोग चाहती है कि इस प्रान्त में स्त्रियाँ घूमने फिरने और

जाति के जीवन में अपना उचित काम लेने के लिए उतनी ही स्वतन्त्र हों, जितनी कर्नाटक, महाराष्ट्र और मद्रास में भारतीय बहनें बिना

न रङ्ग में रगा करती हैं, क्योंकि हमारा विश्वास है कि आरोपित

परतन्त्रता को छोड़कर पाश्चात्य ढङ्ग का लाना जलती कड़ाही में से निकल कर आग में कूदना होगा और साथ ही पर्दा को अवश्य ही समाप्त करना है, बशर्ते कि इन स्त्रियों को भारतीय आदर्शों के ढङ्ग से विकसित होना है। अगर हम चाहते हैं कि वे जीवन को गति और सौंदर्य तथा जीवन दें और इसका नैतिक स्तर ऊँचा करें, अपने पति की सहायक संगिनी बनें, घर की सुन्दर प्रबन्धक और जाति की उपयोगी सदस्या हों तो जिस रूप में हैं, अवश्य ही मिट जाना चाहिए। असल में जब तक घूँघट न हटाया जायगा, कोई भी खास कदम उनकी भलाई के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता। और हमारा विश्वास है कि यदि एक बार हमारी आधी आबादी को जो कैद है, आजाद कर दिया गया, तो ऐसी शक्ति उत्पन्न होगी, जो ठीक पथ-प्रदर्शन करने पर हमारे प्रान्त के लिए अपरिमित उपयोगी होगी।"

मैं जानता हूँ, बिहार में पर्दे ने कितनी हानि की है। और यह आन्दोलन ठीक ही समय पर प्रारम्भ किया गया है।

इस आन्दोलन का प्रारम्भ बड़ा अजीब हुआ है। बाबू रामानन्द मिश्र जो एक खादी के काम करनेवाले हैं अपनी स्त्री को पर्दे से बचाना चाहते थे। चूँकि लोग लड़की को आश्रम (साबरमती) जाने नहीं दे रहे थे, उन्होंने आश्रम से दो लड़कियाँ अपनी स्त्री की संगिनी के रूप में लीं। उनमें से एक राधाबहन, मगनलाल गांधी की लड़की उनकी शिक्षिका होनेवाली थी और उनके साथ स्वर्गीय ब्रजकिशोर गिरि की लड़की दुर्गा देवी थी। विवाहित लड़की के माता-पिता यह नहीं चाहते

थे कि श्रीमती मिश्रा को पर्दे से अलग किया जाय। उन लड़कियों ने सभी कठिनाइयाँ झेली। इस बीच मगनलाल गांधी अपनी लड़की को देखने तथा उससे, चाहे वह कितना ही हठ करे, वहाँ से छिपाकर हटा ले आये। वे उसी गाँव में जहाँ राधाबहन काम कर रही थी, बीमार हुए और पटना में उनका देहान्त हो गया। अतएव विहार के लोगों ने पर्दे के विरुद्ध लड़ने के लिए (यह उसके सम्मान की रक्षा थी) तैयार हो गये। राधाबहन अपना सन्देश आश्रम लायी उनके वहाँ आने से खलबली मच गयी और उनके पति विवश हो गये कि और भी जोश के साथ इस युद्ध में भाग लें, वैसे तो वे पहले से ही तैयार थे। इस प्रकार यह आन्दोलन व्यक्तिगत आधार पर स्थित होने के कारण बहुत आशापूर्ण दिखाई पड़ता है इसके आगे विहार का वह सैनिक, राजेन्द्र बाबू हैं, जो कई संग्रामो में नेता रह चुके हैं। मुझे एक भी ऐसा आन्दोलन याद नही आता जिसका उन्होने नेतृत्व किया हो और वह बुझ गया हो।

अपील से दूसरी आठ जुलाई तारीख निश्चित की गई है जब इस प्रथा को दूर करने के लिए प्रभावशाली सग्राम छिड़ेगा जिसके कारण विहार की आधी आबादी पर सामाजिक सेवा में योग देने के लिए प्रतिबन्ध है और जिसके कारण उन्हें बहुत-सी स्वतन्त्रता जैसे प्रकाश और वायु तक की नहीं मिलती। जितनी ही जल्द यह महसूस किया जायगा कि ये सामाजिक प्रथाएँ हमारे स्वराज की ओर के विकास को रोके हैं, अपने उद्देश्य की ओर हमारी उतनी ही उन्नति होगी, और स्वराज मिलने तक के लिए समाज-

सुधार रोक रखने का अर्थ 'स्वराज' का अर्थ न जानना है। यदि हम अपनी आधी आबादी को इसी प्रकार शक्तिहीन बनाये रहें, तो किसी भी जाति से अपनी रक्षा या उससे प्रतियोगिता नहीं कर सकते।

इस लिए बिहार के नेताओं को पर्दे के विरुद्ध संग्राम में भाग लेने के लिए बधाई देता हूं। आम तौर से सुधारों की सफलता वैसे तो सभी सुधारों का काम करनेवालों की पवित्रता पर निर्भर है। बहुत कुछ तो उन स्त्रियों पर निर्भर होगा जिन्होंने अपील पर हस्ताक्षर किए हैं। यदि वे पर्दे को हटा देने पर भी भारतीय शील को सुरक्षित रखेंगी और सभी कठिनाइयों का साहसपूर्वक मुकाबला करेंगी, तो सफलता बहुत शीघ्र मिलेगी। यदि पर्दे का आन्दोलन ठीक से चलाया जाय, तो बिहार की स्त्रियों और पुरुषों को दोनों प्रकार की उचित शिक्षा भी मिलेगी।

बिहार में पर्दा

एक मित्र ने अपने पत्र में लिखा है कि पर्दे के विरोध में जो प्रदर्शन बिहार के बड़े-बड़े केन्द्रों में इसी माह की आठवीं तारीख को किया गया था, उसका आशातीत परिणाम हुआ। पटना की 'सर्चलाइट' की रिपोर्ट इस प्रकार है :—

"इसी ८ जुलाई रविवार को राधिका सिनहा इन्स्टीट्यूट में स्त्रियों और पुरुषों का बड़ा सुन्दर सम्मिलित दृश्य देखने में आया। घनघोर वर्षा होने पर भी जो सभा के ठीक समय पर बन्द हो गयी, भीड़ आशा से अधिक थी। उस बड़े हाल का आधा हिस्सा स्त्रियों से भरा था, जिनमें से ¾ ऐसी थीं, जो एक दिन पहले नहीं, एक घण्टे पहले पर्दे में थीं।"

वहाँ निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया :—

"हम पटना के पुरुष और स्त्री, जो यहाँ एकत्र हैं, उस पर्दा की घातक कुप्रथा को बहिष्कृत कर चुके हैं, जिससे देश की विशेषकर स्त्रियों को अपरिमित हानि हुई है और हो रही है, और अन्य प्रान्तों की स्त्रियों से जो सुविधे में हैं, हमारी अपील है कि वे शीघ्रातिशीघ्र इसे समाप्त कर दें, और इस तरह अपना स्वास्थ्य और शिक्षा विकसित करें।"

पर्दे के विरुद्ध जोरदार प्रचार करने के लिए एक अस्थायी कमेटी बनाई गयी थी। स्त्री-शिक्षा-प्रसार के लिए भी एक कमेटी बनी थी। एक तीसरे प्रस्ताव द्वारा हर नगर और गाँव में महिला-समितियाँ बनायी

गई थीं। और एक चौथे प्रस्ताव में पास किया गया था कि विभिन्न स्थानों पर महिला स्कूल खुलें, जहां कुछ समय स्त्रियां रहें और उन्हें अच्छी पत्नी, योग्य माताएँ, और देश की उपयोग सेविकाएँ बनने की शिक्षा दी जाय। उसी स्थान पर ৮০০০) देने के वादे हो गये, और मैं देखता हूँ कि स्त्रियों में से बहुत-सी ऐसी चन्दा देनेवाली थीं, जिन्होंने २५०) और २५) के बीच में कुछ धन भी दिया था। इस पत्र ने बिहार के कई स्थानों की ऐसी सभाओं की रीपोर्ट छापा है। यदि यह आन्दोलन सुसङ्गठित है और दिलचस्पी से किया गया तो पर्दा भूत की चीज हो जायगा। यह कोई अंगरेजी सांचे में ढला आन्दोलन नहीं है। यह ऐसे कट्टर लोगों का हार्दिक आन्दोलन है, जो स्वभावत कट्टर हैं, फिर भी हिन्दू समाज की बुराइयों को जानते हैं। बाबू बृजकिशोरप्रसाद और बाबू राजेन्द्रप्रसाद जो दूर लन्दन से ध्यानपूर्वक इसे देख रहे हैं, और इसका समर्थन कर रहे हैं, भारतीय मनुष्यता के पाश्चात्य माननेवाले नहीं। वे कट्टर हिन्दू और भारतीय सभ्यता और परिपाटी के माननेवाले हैं। वे पश्चिम के अन्ध अनुकरण करनेवाले नहीं है, फिर भी उनमें जो अच्छाई है, उसे लेने में सकोच नहीं करते। इसलिए बाहर और भीतर कट्टर हिन्दुओं को इस बात से डरने की जरूरत नहीं कि यह आन्दोलन उनकी हिन्दुस्तानी संस्कृति, विशेषकर स्त्रियों के माधुर्य और शील के लिए किसी प्रकार हानिकारक सिद्ध होगा।

बर्मा की महिलाओं से

गांधीजी ने मौलमीन की एक सभा बर्मा के लोगों को सुझाया कि वे यदि स्वावलम्बी तथा सुखी होना चाहें, तो चरखा चलायें और औरतों से उन्होंने कहा, इस समय तुम जिस प्रकार स्वतन्त्रता से रह रही हो, वैसी कहीं की भी स्त्रियाँ नहीं रह रही है। अपनी कुशलता और व्यवसाय के लिए तुम प्रसिद्ध हो। तुम्हारे भीतर संगठन की बड़ी शक्ति है और यदि तुम अपनी विदेशी बहुमूल्य वस्तुओं की रुचि में सुधार कर लो और सादगी को अपना लो, जैसा करने के लिए मैंने अभी कहा है, तो तुम्हारे जीवन में क्रान्ति हो जाय।

धूम्रपान के भयानक रोग के विषय में कहने का मुझमें साहस ही नहीं। परन्तु मैं समझता हूँ, बर्मा में मुझे कोई स्त्री या पुरुष इससे बचा न मिलेगा। हम लोग जो भारतवर्ष से आये हैं, सुन्दर बर्मा की सुन्दर स्त्रियों को चुरुट और सिगरेट से अपने मुँह खराब करते देखकर दुःखपूर्ण आश्चर्य करते हैं। किन्तु मै जानता हूँ कि ऐसी बुराई के विषय में कुछ कहना ही कठिन है, जो सारी दुनिया में छाई हुई है। अगर तुमने टॉलस-टाय का नाम सुना है, तो मैं उन्हीं का शब्द दुहराता हूँ, जो एक बड़े धूम्रपानी थे, और उन्होंने अनुभव किया कि तम्बाकू से लोगों का दिमाग भद्दा हो जाता है और दूसरी शक्तियाँ भी क्षीण हो जाती हैं। सचमुच उन्होंने उदाहरण के साथ सिद्ध किया है कि कुछ बड़े बड़े जुर्म धूम्रपान के

भावों में पड़कर किये गये हैं और अपनी एक कहानी में एक मनुष्य को उन्होंने खून करते हुए दिखाया है और ऐसा मद्यपान करके उसने नहीं किया, बल्कि धूम्रपान करके जो कि धूम्रपान के कुछ बड़े बुद्धिशाली लोग हैं। इसके विरोध में भी एक शक्ति लड़ रही है और उसमें पश्चिम के बहुत उच्चकोटि के नैतिक व्यक्ति हैं।

पुरुष और स्त्रियां

प्रश्न—मैं जाना चाहता हूँ कि क्या आप पुरुष या स्त्री-सत्याग्रहियों का स्वच्छन्दता पूर्वक मिलना जुलना और उनका एक साथ काम करना पसन्द करेंगे अथवा अलग इकाइयों के रूप में उनका संगठन करना और हरेक के कार्य-क्षेत्र की स्पष्ट सीमा निर्धारित कर देना अच्छा होगा? मेरा अनुभव तो यह है कि पहले ढङ्ग से निश्चित रूप से पर्याप्त परिमाण में अनुशासन हीनता तथा भ्रष्टता पैदा होगी, और ऐसा हुआ भी है। अगर आप मुझसे सहमत हैं, तो इस सम्भवनीय बुराई का मुकाबला करने के लिए आप कौन सा नियम सुझायेंगे?

उत्तर—मैं तो अलग इकाइयां रखना ही पसन्द करूँगा। औरतों के पास औरतों के बीच करने के लिए काफी से ज्यादा काम है। हमारा स्त्री वर्ग बुरी तरह अपेक्षित है, और उनके बीच काम करने के लिये विशुद्ध सचाई वाली सैकड़ों बुद्धिमती स्त्री कार्यकर्त्रियों की जरूरत है सिद्धान्त की दृष्टि से भी मैं स्त्री-पुरुष दोनों को अलग-अलग अपना

काम करने में विश्वास रखता हूँ। लेकिन इसके लिए कोई कठोर नियम नही बन सकता। दोनो के बीच में सम्बन्ध पर विवेक का नियन्त्रण होना चाहिये। दोनो के बीच कोई अन्तराय न होना चाहिये। उनका परस्पर का व्यवहार प्राकृतिक और स्वेच्छा-पूर्ण होना चाहिये।

स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है

प्रश्न—क्या अविरोध अपने से शक्तिशाली व्यक्ति के सम्मुख हार मानना नही है ?

उत्तर—निष्क्रिय प्रतिरोध दुर्बलो के लिए है, परन्तु जिस प्रकार के प्रतिरोध के लिए मुझे बिलकुल नया नाम निकालना पडा था, वह शक्तिशालियो के लिये है। इसका उद्देश्य समझाने के लिये मुझे नया नाम निकालना पडा था। परन्तु इसका अनुपम सौन्दर्य इसी मे है कि जो कि यह शक्तिशाली व्यक्ति के लिये है, फिर भी शारीरिक रूप से दुर्बल अवस्था के कारण शक्तिहीन यहां तक कि बच्चो के भी प्रयोग के लिये है, बशर्ते कि उसका हृदय शक्तिशाली हो। और चूँकि सत्याग्रह मे प्रतिरोध स्वयं कष्ट सहन करके किया जाता है, स्त्रियो के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है। गत वर्ष यह देखा गया कि स्त्रियाँ कई जगहों पर शहन-शक्ति में अपने भाइयो से कहीं अधिक सफल रहीं। और दोनो ने उस आन्दोलन मे बडा उत्तम कार्य किया, क्योकि स्वयं सहन करने की भावना औरों में भी फैली और लोगों ने आत्म-निराकरणके आश्चर्य-जनक कार्य किये। मान लीजिये कि योरोप की स्त्री और बच्चे मानव के

प्रति प्रेम की भावना से भर जायँ तो वे पुरुषों को तूफान की तरह अपने में समेट लेंगे और बहुत थोड़े समय में सैनिकवाद को नष्ट कर देंगे। इसका रहस्य यह है कि स्त्रियां बच्चे और दूसरे लोगों में एक आत्मा समान शक्ति के साथ काम करती है। प्रश्न केवल स्त्री की अन्तर्गत शक्ति को बाहर लाने का है।

स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता

प्रश्न—जायदाद पर विवाहित स्त्रियों के अधिकार-सम्बन्धी कानूनों के सुधार का चन्द लोग इस बिना पर विरोध करते हैं कि स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता से उनमें दुराचार फैलेगा, और गृहस्थ जीवन टूटकर बिखर जायगा, इस सवाल पर आपका क्या रुख है?

उत्तर—मैं इस सवाल का जवाब एक दूसरा सवाल पूछकर दूंगा? क्या पुरुषों की स्वतन्त्रता और मिल्कियत पर उनके कब्जे ने पुरुषों में दुराचार का प्रचार नहीं किया है? अगर तुम इसका जवाब 'हां' में देते हो, तो फिर औरतों के साथ यही घटित होने दो और जब औरतों को भी मिल्कियत के अधिकार तथा बातों में भी उनको पुरुषों जैसे हक मिल जायेंगे, तब यह पता चलेगा कि ऐसे अधिकारों के उपभोग पर उनके पाप-पुण्य की जिम्मेदारी नहीं है। जो सदाचरण किसी पुरुष या स्त्री की निस्सहायता पर निर्भर है, उसमें प्रशंसा के योग्य कोई बात नहीं है। सदाचरण तो हमारे हृदयों की शुद्धता एवं निर्मलता से उत्पन्न होता है।

समाज में स्त्रियों की स्थिति

प्रश्न—भारतीय स्त्रियों की राजनैतिक तथा नागरिक जागृति के कारण उनके अबतक के घरेलू कर्तव्यों के बीच संघर्ष उपस्थित हो गया है। अगर कोई स्त्री जनता की सेवा में व्यस्त रहे, तो सम्भव है कि वह अपने बच्चों की ओर तथा घरेलू धन्धों की ओर ध्यान न दे सके। यह गुत्थी कैसे सुलझाई जाय ?

उत्तर—अक्सर स्त्रियों का बहुत-सा समय आवश्यक घरेलू कार्यों में नही, बल्कि अपने अपने मालिक तथा अपने पति के अहम्पूर्ण सुख की तृप्ति करने में ही बीतता है। मेरे विचार से स्त्रियों की यह गुलामी हमारी असभ्यता का अवशेष है। यही समय है कि हमारा स्त्री-समाज इस बन्धन से मुक्त हो जाय। स्त्री का सारा समय घरेलू कार्यों में नही लगना चाहिये।

एक विधवा की कठिनाई

प्रश्न—मैं एक बङ्गाली विधवा हूँ। अपने रँडापे के दिन से—२४ सालों में—अपने भोजन के बारे में कठोर नियमों का पालन करने का मुझे अभ्यास है। अपने ही कुटुम्ब के बीच थी। मुझ विधवा का एक अलग चौका है और बर्तन भी मेरे अलग अलग हैं। मैं आप के सत्य वा अहिंसा के आदर्श में विश्वास रखती हूँ। सन् १९३० से आदतन खादी पहनती हूँ। ढाका के एक हरिजन गाँव में हमारे महिला समाज ने एक हरिजन-स्कूल खोल रखा है। मैं वहाँ जाती और हरिजनों में शरीक होती हूँ। मैं अपनी मुसलमान बहनों से भी खुले तौर पर मिलती-जुलती हूँ, जिनके लिये मेरे हृदय में शुभेच्छा है। लेकिन मैं हरिजनों या दूसरे अब्राह्मण जातियों के साथ खा पी नहीं सकती, क्या मेरी जैसी कट्टर विधवाएँ सत्याग्रहियों, निष्क्रिय या सक्रिय में नही भरती हो सकतीं ?